

**THE BOOK WAS  
DRENCHED**

**TEXT PROBLEM  
WITHIN THE  
BOOK ONLY**

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_196220**

UNIVERSAL  
LIBRARY

M360

M1465

K14J

कालेकर, काका

जिवंत प्रगोराव

OUP—881—5-8-74—15,000.

**OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY**

Call No. **M360** Accession No. **M 1415**

Author **K14 J**

Title **काकेलकर, काका.**

**जिवन-गोपब.**

This book should be returned on or before the date last marked below.

|  |  |  |  |
|--|--|--|--|
|  |  |  |  |
|--|--|--|--|





सुलभ राष्ट्रीय ग्रन्थमाला : पुष्प २२ वें

# जिवंत व्रतोत्सव

लेखक

आचार्य काका कलिलकर

अनुवादक

भाऊ धर्मोधिकारी



विद्ययादात्मबुधे

द्वितीयावृत्ति : १९४७ ]

[ मूल्य ३।।। रुपये

प्रकाशक

रघुनाथ गणेश जोशी

सुलभ राष्ट्रीय ग्रंथमालेच्या

विश्वस्त मंडळाकरिता.

१२ टिळक रोड, पुणे २

संपादक

आचार्य शं. द. जावडेकर

आचार्य स. ज. भागवत

**Post Graduate Library**  
**College of Arts & Commerce**

मुद्रक

ह. मो. जोशी,

विश्वास प्रेस,

२९१ शनिवार पेठ, पुणे.

## आमचें प्रकाशन

—०५०८००—

( शिल्क नसलेल्या पुस्तकांची किंमत दिलेली नाही. )

- \* १-२ सत्याचे प्रयोग ( द्वितीयावृत्ति ) : म. गांधी
- \* ३ खादी-मीमांसा ( द्वितीयावृत्ति ) : बाळूभाई मेहता
- ४ स्वराज्य-शिष्टाई : म. गांधी
- ५ संयम कीं स्वैराचार ? ( खंड १ ला ) : म. गांधी
- ६ हिंडलग्याचा प्रसाद : काका कालेलकर
- \* ७ हिंदुधर्माचीं मूलतत्त्वे व पुनर्घटना ( द्वितीयावृत्ति )  
लेखक : एस. राधाकृष्णन् २-८-०
- \* ८ उपनिषदांतील दहा गोष्टी ( तृतीयावृत्ति )  
लेखक : शंकरराव देव ०-१२-०
- \* ९ विद्यार्थी-जीवन ( द्वितीयावृत्ति )  
लेखक : श्री. स. महाजन
- \* १० फिलिपाइन्सच्या स्वातंत्र्याचा इतिहास  
लेखक : ज्यं. र. देवगिरीकर १-४-०
- ११ काँग्रेसचा इतिहास ( द्वितीयावृत्ति )  
लेखक : डॉ. पट्टाभिषीतारामय्या
- १२ समाजवादच कां ? ( द्वितीयावृत्ति )  
लेखक : जयप्रकाश नारायण २-०-०
- १३ खानबंदू : महादेवभाई देसाई
- १४ जवाहरलाल नेहरू:आत्मचरित्र (द्वितीयावृत्ति):पं. नेहरू १२-८-०
- \* १५ विश्राम ( चतुर्थावृत्ति ) : साने गुरुजी १-४-०
- \* १६ भारतीय संस्कृति ( चतुर्थावृत्ति ) : साने गुरुजी ३-०-०
- १७ प्रसाददीक्षा : म. गांधी
- १८ भिल्ल साधु गुलामहाराज : शं. वि. ठकार
- \* १९ आधुनिक भारत : आचार्य जावडेकर
- \* २० हिमालयांतील प्रवास ( तृतीयावृत्ति )  
लेखक : काका कालेलकर २-४-०

|   |        |
|---|--------|
| २१ गांधीजींचें विविध दर्शन ( द्वितीयावृत्ति )         |        |
| संकलनकार : एस्. राधाकृष्णन्                           | २-८-०  |
| *२२ जिवंत व्रतोत्सव ( द्वितीयावृत्ति ) : काका कालेलकर | ३-१२-० |
| २३ गांधी-विचार-दोहन : किशोरलाल मश्रूवाला              |        |
| २४ सत्याग्रही महाराष्ट्र : प्रेमा कंटक                | ३-०-०  |
| *२५ अर्थशास्त्र कीं अनर्थशास्त्र ? ( द्वितीयावृत्ति ) |        |
| लेखक : जॉन रस्किन                                     | २-०-०  |
| *२६ जीवन-दर्शन ( तृतीयावृत्ति )                       |        |
| लेखक : महाकवि खलिल जिब्रान                            | १-१२-० |
| २७ ग्रामोद्योगाचें अर्थशास्त्र : जे. सी. कुमारअप्पा   |        |
| २८ वापू : धनदयामदास बिडला                             | १-८-०  |
| २९ संस्कृतीचें भवितव्य : एस्. राधाकृष्णन्             | १-४-०  |
| ३० महात्मा गौतमबुद्ध : „ „                            | १-०-०  |
| ३१ जीवन आणि साहित्य : आचार्य स. ज. भागवत              | २-८-०  |
| ३२ प्राचीन साहित्य : कविसम्राट् रवींद्रनाथ ठाकुर      | १-८-०  |
| ३३ संयम कीं स्वैराचार ? ( खंड २ रा ) : म. गांधी       | १-१२-० |
| ३४ हिंदु-मुसलमान-ऐक्य : आचार्य जावडेकर                | ३-०-०  |
| ३५ गीता-हृदय ( तृतीयावृत्ति ) : साने गुरुजी           | ०-१२-० |
| ३६ हिंदूंचें समाजकारण : काका कालेलकर                  | २-४-०  |
| ३७ द्विखंड हिंदुस्थान : डॉ. बाबू राजेंद्रप्रसाद       | ११-०-० |
| ३८ काँग्रेस-कथा ( द्वितीयावृत्ति ) : गो. आ. देशपांडे  | ४-८-०  |
| ३९ भगवान् बुद्धासाठीं : शंकरराव देव                   | ३-८-०  |
| ४० आचार्य कृपलानी : निवडक लेख व भाषणें                | ३-०-०  |
| ४१ वाल्मिकी-आश्रमांतील प्रवचनै : आचार्य जावडेकर       | १-०-०  |
| ४२ संपूर्ण स्वदेशी : म. गांधी                         | २-४-०  |

\* हीं पुस्तकें मुंबई, मध्यप्रांत व वऱ्हाड यांतील सरकारी विद्यालयांनीं शाळांतील वाचनालयांकरितां व बक्षिसांकरितां मंजूर केली आहेत.

## वाचकमित्र —

लोकशिक्षक काकासाहेबांचें हें पुस्तक आपल्या हातीं देतांना मला आनंद होत आहे. काकासाहेब कसलेले आणि अनुभवी समाजशिक्षक आहेत. निर्जीव समाजजीवन चैतन्यमय करण्याचे प्रसंग शोधून काढून, त्यांची व्यवस्थित आंखणी करून, त्यांच्याविषयीं अुद्बोधक माहिती देऊन संस्थांच्या व विद्यापीठांच्या द्वारा ते प्रकट व्हावेत म्हणून 'जिवंत वरतोत्सवा' च्या रूपाने त्यांनीं ते आपल्या हातीं दिले आहेत.

मूळ गुजराती पुस्तकाचा हा अनुवाद आहे. तथापि स्वतः काकासाहेबांनी या मराठी आवृत्तीकरितां म्हणून लिहिलेलीं कांहीं स्वतंत्र प्रकरणेहि यांत आहेत. यांत महाराष्ट्रीय संतांवरील सर्व प्रकरणे त्यांनींच स्वतः लिहिलीं आहेत. काकासाहेबांचा अनुभव दांडगा, अध्ययन विस्तृत, रसिकता मार्मिक. तीं सर्व या पुस्तकांत प्रकट झालीं आहेत.

मूळची गोडी जशीच्या तशी अनुवादांत अुतरणें कठीण आहे. तथापि काकासाहेबांच्या गुजराती भाषेची बैठक मराठीच असल्यासारखी आहे. त्यामुळे तसा प्रयत्न करणे थोडे सोपें झालें आहे अेवढेंच.

मूळ गुजराती पुस्तकाला नसलेली 'टीपा व स्पष्टीकरण'ची पुस्ती या पुस्तकाला जोडली आहे, ती आपणांला अुपयुक्त वाटेल.

हें पुस्तक मराठींत आणण्यासाठीं केलेली पाहिली निवड आचार्य श्री. भागवत यांची आहे. हें पुस्तक शिक्षणक्षेत्रांत अुत्कृष्ट कार्य बजावील असे त्यांना दिसून आलें आणि म्हणून त्यांनीं तें मराठींत आणविण्याचा प्रयत्न केला. निरनिराळ्या शिक्षणसंस्थांतील शिक्षकांनीं आणि विद्यार्थ्यांनीं यांत दिशासूचन केल्याप्रमाणें नर्तें आणि अुत्सव साजरे करण्याचा अुपक्रम केला, तर अुभयतांनाहि सामाजिक शिक्षणाचें अेक मोठें द्वार खुलें झाल्याचा व प्राणदायी वातावरण निर्माण झाल्याचा अनुभव येतील अशी आचार्यांना व मला खात्री वाटते, आणि तसें झालें तरच या पुस्तकाचें सार्थक होतील.

सर्षाचा नम्र,  
भाअू धर्माधिकारी

## दुसऱ्या आवृत्तीसंबंधी

या पुस्तकाची दुसरी आवृत्ति काढण्याचा योग येत आहे, यावरून मराठी वाचकवर्गाला हे पुस्तक आवडले व उपयुक्त वाटले असे समजण्यास हरकत नाही.

या आवृत्तीत पूर्वीची सर्व प्रकरणे ठेवली आहेत. आणि शिवाय 'स्वातंत्र्यदिन' ( २६ जानेवारी ), ' सौ. कस्तुरबादिन ' ( महाशिवरात्र ) ' क्रांति-दिन ' ( ९ ऑगस्ट ) ही प्रकरणे नवी घातली आहेत. या मराठी आवृत्तीसाठीच स्वतः काकासाहेबांनी ती लिहिली आहेत. ' चरखाद्वादशी 'चा कार्यक्रम व प्रकरण पूर्वीचे ( उपप्रकरण २ रे ) काढून टाकून नवीन घातले आहे, ' धनत्रयोदशी 'वर पूर्वीच्या आवृत्तीत लेख नव्हता तो या आवृत्तीत काकासाहेबांनी घातला आहे.

स्वतंत्र भारतातील नागरिकांना आणि शिक्षणसंस्थांना—शिक्षकांना आणि विद्यार्थ्यांना—या पुस्तकाचा आतां अधिक लाभ घेतां येतील, अशी अपेक्षा आहे.

—प्रकाशक

## अनुक्रमणिका

|    |                               |     | पृष्ठ |
|----|-------------------------------|-----|-------|
| १  | जिवन व्रतोत्सव                | ... | १     |
| २  | आवश्यक वाचन                   | ... | ५     |
| ३  | अुत्मवांतील अुपवास            | ... | ९     |
| ४  | जयन्ती                        | ... | १०    |
| ५  | सणांची यादी                   | ... | १२    |
| ६  | गुढीपाडवा                     | ... | १५    |
| ७  | रामनवमी                       | ... | १९    |
| ८  | महावीर--जयन्ती                | ... | २३    |
| ९  | लोकांचा हनुमान                | ... | ३१    |
| १० | परशुराम आणि युद्ध             | ... | ३५    |
| ११ | धर्मणि शंकराचार्य             | ... | ३८    |
| १२ | बोधिजयन्ती                    | ... | ४२    |
| १३ | चोखा डोंगा परी भाव नोहे डोंगा | ... | ५६    |
| १४ | मृत्यु विरुद्ध प्रेम          | ... | ५८    |
| १५ | महाअेकादशी                    | ... | ७२    |
| १६ | आचार्यदेवो भव                 | ... | ७३    |
| १७ | मराठी मीरा                    | ... | ७५    |
| १८ | नागपंचमी                      | ... | ७६    |
| १९ | श्रावण सोमवार                 | ... | ७८    |
| २० | श्रावण पूर्णिमा               | ... | ७९    |
| २१ | गोकुळाष्टमीचा उत्सव           | ... | ८०    |
| २२ | गणपतिअुपासना                  | ... | ९९    |
| २३ | अृषिपंचमी                     | ... | १०५   |
| २४ | चरखाद्वादशी अथवा गांधीजयंती   | ... | १०६   |
| २५ | नवरात्र                       | ... | ११२   |
| २६ | शारदंचे अुद्बोधन              | ... | ११४   |
| २७ | विजयादशमी                     | ... | ११६   |
| २८ | सावित्रीधर्म                  | ... | १२५   |



|    |                            |     |     |     |
|----|----------------------------|-----|-----|-----|
| २९ | धनत्रयोदशी                 | ... | ... | १२७ |
| ३० | दिवाळी                     | ... | ... | १२९ |
| ३१ | विक्रम वर्षारंभ            | ... | ... | १३८ |
| ३२ | कुठें आहे भाऊबीज ?         | ... | ... | १३९ |
| ३३ | महाअेकादशी                 | ... | ... | १४३ |
| ३४ | स्वातंत्र्याचा आद्यप्रणेता | ... | ... | १४४ |
| ३५ | युद्धगीतेची जयंती          | ... | ... | १४७ |
| ३६ | दत्तजयन्ती                 | ... | ... | १५१ |
| ३७ | संक्रान्ति                 | ... | ... | १५२ |
| ३८ | वसंत                       | ... | ... | १५६ |
| ३९ | मंगलमूर्ति भीष्म           | ... | ... | १५९ |
| ४० | समर्थ संत                  | ... | ... | १६३ |
| ४१ | महाशिवरात्र                | ... | ... | १६६ |
| ४२ | राष्ट्रमाता कस्तुरबा       | ... | ... | १७२ |
| ४३ | गुलामांचा सण               | ... | ... | १७८ |
| ४४ | संतशिरोमणि                 | ... | ... | १८३ |
| ४५ | धर्मरक्षक शिवाजी           | ... | ... | १८९ |
| ४६ | परमभागवत अेका              | ... | ... | १९७ |
| ४७ | प्रेमवीर ब्रह्मचारी        | ... | ... | २०० |
| ४८ | मोहरम                      | ... | ... | २०२ |
| ४९ | अैक्याचा सण                | ... | ... | २०३ |
| ५० | स्वातंत्र्यदिन             | ... | ... | २०७ |
| ५१ | मोखल्यांना श्रद्धांजलि     | ... | ... | २०९ |
| ५२ | स्वराज्यमहान्वत            | ... | ... | २१९ |
| ५३ | त्यागी देशबंधु             | ... | ... | २२२ |
| ५४ | दादाभाभी नवसेजी            | ... | ... | २२४ |
| ५५ | स्व. लोकमान्य टिळक         | ... | ... | २२५ |
| ५६ | क्रांतिदिन                 | ... | ... | २३७ |
| ५७ | जिवंत इतिहास               | ... | ... | २३९ |

## ग्रंथकर्त्यांचे निवेदन

म्हातारीं माणसें मरतात, नवीं जन्माला येतात. गेलेल्या लोकांसाठीं आपण हळहळतो आणि नव्यांचें स्वागत करतो; आणि नव्या लोकांना जुन्या लोकांची थोडी माहिती देऊन त्यांचेसंबंधानें आदर उत्पन्न करून जरी ते शरीरानें गेले असले, तरी स्मरणरूपी शरीरांत त्यांना जिवंत ठेवण्याचा प्रयत्न करतो. अेका शरीरांत राहण्यापेक्षां अनेकांच्या हृदयांत राहण्याचें काव्य अेकपरी अधिक महत्त्वाचें आणि कल्पनेमध्ये अधिक सुखदायी असतें.

व्यक्तीपेक्षां कुटुंब दीर्घजीवी असतें. कुटुंबधर्माची जीवनशक्ति फारच चिबट असतें. समाजांची किंवा प्रजांची जीवनशक्ति त्यांच्या संस्कृतीमधून व्यक्त होत असते. या जीवनशक्तीची ज्या निरनिराळ्या संस्थांतून आपण जोपासना करतो त्यापैकीच सण, उत्सव, उपवास आणि ऋतें ही अेक मंस्था आहे. सणदेखील नवीन जन्माला येतात, लहानांचे मोठे होतात, राज्यां मिळवितान, साम्राज्यवैभव भोगतात आणि शेवटीं लयाला जातात. या सणांची माहिती होणें, त्यांचा बांध समजून घेणें उपयोगी आहेच, पण त्यांचें काव्य अनुभवणें हें त्याहूनहि अधिक महत्त्वाचें आहे. सण जुने झाले म्हणजे त्यांच्यामध्ये अेक प्रकारचें सौम्य सौंदर्य आणि प्रसन्न गांभीर्य येत असतें. अशा सणांचा पौष्टिक अहार ज्या जीवनाला मिळाला आहे तें जीवन सुट्ट आणि समृद्ध व्हावयाचेंच. आपला समज अशा संस्कृतिसात्त्विक आहारावरच आजवर जगलेला आहे. पण आतां तो अहार कमी होऊं लागला आहे. हा तुटवडा भरून काढण्यासाठीं जो कांहीं नवीन पुरुषार्थ समाजाकडून झाला पाहिजे तो सध्यां होत नाही. समाजहितचिंतकांना याबद्दल वाळीट वाटलेलें दिसतें. पण दुःख करण्यानें श्राद्ध होत नसतें. आणि लोकांवर चिडल्यानें ते जागे होत नसतात. यापेक्षां स्मरणांजलि अर्पण करून श्राद्ध करणें हेंच समाजाला हितकर आणि स्वतःला प्रतोषदायक आहे.

गुजरातमध्ये असतांना ज्या निरनिराळ्या संस्थांतून मीं माझें जीवन अनुभवलें तेथें त्या त्या प्रसंगां आपल्या अनेक सणांचें स्मरण घडलें; तेंच स्मरण त्या त्या काळच्या वृत्तीप्रमाणें लिहून काढलें. पुढें त्यांचा संग्रह करणें मित्तमंड-ळींना योग्य वाटल्यावरून 'जिवता नडेवारो' या नांवाखाली त्यांना अेकत्र आणण्यांत आलें. हीं सर्व स्मरणें अेकाच पैक्तीला बसविण्याच्या अुद्देशानें केलीं नव्हतीं. यांचा सुरंगी हार होअील अशी कल्पनाहि नव्हती. यामुळे हा संग्रह कोणत्याहि योजने-कल्पनेवरहुकूम झालेला नाही.

याचे मराठी करण्यांत यानंतर दुसरी अडचण उत्पन्न झाली आहे. गुजरातला अद्देशून लिहिलेली ही इरधोजलि महाराष्ट्रीय कानांना कशी लागेल हा अेक मोठा प्रश्न आहे हे सर्व लिखाण स्वतःला अद्देशून लिहिलेलें नाहीं, पण लेखक दुसऱ्या कोणाशीं तरी अगदीं आत्मीयतेने बोलत आहे आणि आपण बाजूला बसून ऐकत आहों, असें वाचकांना वाटल्यास त्यांचा विरस होतीलच पण लेखकालाहि चमत्कारिक वाटेल.

ही अडचण ओळखून अनुवादकर्त्यांनी आपलेकडून हें सर्व सुधारून घेण्याचा विचार केला, पण हें काम सोपें नाहीं हें त्यांच्या लक्षांत सहज आलें. मीच तें काम करावें अशी त्यांची अुत्कट अिच्छा होती; पण तेहिशक्य झालें नाहीं.

प्रत्येक प्रांतांतील संस्कृति निराळी असें मानणारे लोक आजकाल बरेच वाढूं लागले आहेत. पण प्रांताप्रांतांमधील भेदाचीं तत्त्वे परिमित, अुथळ आणि अल्पजीवी आहेत, आणि या क्षणजीवी तरंगांच्या खाली वैक्याचा—समानतेचा विशाल गंभीर आणि सनातन महासागर भरलेला आहे, हे सत्य भेदातीत बुद्धीला सहज पटेल. गुजरातसाठीं जें लिहिलें तेंच थोडासा फरक करून महाराष्ट्रासाठीं बोलवें लागणार. तेन्हां सरळ भाषांतर करून आहे तसेच महाराष्ट्र—वाचकां पुढें हें सर्व लिखाण ठेवल्यास विशेषशी हानि होणार नाहीं असें वाटल्यावरून तसेंच करण्याचा येथे प्रयत्न केला आहे.

आणि माझ्या मतें यांत अेक मोठा फायदाहि आहे. अेक स्वजन शेजारच्या प्रांतांतील लोकांशीं आत्मीयतेनें काय बोलतो, कसा बोलतो आणि तेथील लोकांशीं तद्रूप कसा होतो याचें दृश्य महाराष्ट्रीयंपुढें व्यक्त झाल्यास तें निरुपयोगी ठरणार नाहीं. अेकच गोष्ट निरनिराळ्या दृष्टिकोनांनीं पाहण्याची संवय असणें हें कोणत्याहि समाजाला फायदेशीर आणि अुद्बोधक असतें. तेन्हां सगळीं ठेवण बदलण्याचें श्रमहि वांचवावेत आणि परोक्ष शैलीचें दर्शनहि वाचकांना घडवावें हेंच अुचित आहे, असें येथें ठरविलें आहे. वाचकांना हे कितपत रुचतें हें पहावयाचें आहे.

येथवर ठरल्यानंतर निदान मला जास्त कांहीं करावें लागणार नाहीं अशी आशा होती. पण भाऊंनीं आपल्या आग्रहाने मजकडून या मराठी आवृत्तीसाठीं थोडेसें लिहून घेतलेंच. त्यामुळे मधूनमधून वाचकांना आपली तटस्थता नष्ट झाल्याची जाणीव होऊन थोडेसें आश्चर्य वाटेल. जें होणार असेल तें होवो; भाऊंनीं वाचकांच्या हातीं 'जिवंत व्रतोत्सवां'चा हा गुच्छ दिला आहे, आणि त्यामुळे मला बरें वाटलें आहे. वाचकांना जर तो आवडला तर आम्ही दोघे कृतार्थता अनुभवं.

‘अत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः’



## जिवंत वरतोत्सव

: : १

लांडग्यासारखे खावें, मांजरासारख्या जांभया घाब्या, आणि अजगरासारखे पडून राहावें हें सणांचें मुख्य लक्षण कांहीं कांहीं टिकाणीं होऊन बसलें आहे. अेक सण म्हणजे तीन दिवस विघाड अेवढें तरी निदान ठरलेलेच. अशा अवस्थेंतून सणांना वांचविणें हे आपलें मुख्य काम आहे.

‘ सण काढूनच टाकले तर कसें ? ’ या दृष्टीचाहि आम्ही विचार केला. रोजची आवश्यक आणि स्फूर्तिदायक प्रवृत्ति शिथिल करायची, आपल्या परिस्थितीला नेहमीं झेपणार नाहीत असे कपडे घालायचे, निरनिराळ्या प्रकारचीं मिश्रांनें अुडवून अिद्रियांना लोलुपतेची चटक लावायची, आणि पत्ते, बुद्धिबळ, सोंगळ्या वगैरे निरर्थक बैऱ्या खेळांत वेळेचा नाश करण्याला अेकमेकांना अुत्तेजन द्यायचें, अेवढाच जर सणांचा अर्थ असला तर सण काढून टाकावेत हेंच योग्य आहे.

पण आमच्या कल्पनेप्रमाणें सणांना आणि अुत्सवांना जीवनांत अेक विशिष्ट आणि महत्त्वाचें स्थान आहे. सणांच्या द्वाराच आपल्याला संस्कृतीचीं कित्येक अंगे चांगल्या प्रकारे टिकवितां येतात आणि वाढवितां येतात; विशिष्ट प्रसंग आणि त्यांचें महत्त्व स्मरणांत ठेवतां येतें; अतूंतच्या फेरफाराप्रमाणें जीवनांत विशिष्ट फेरफार यथाकाले संकल्पपूर्वक सुरू करतां येतात; आणि सामाजिक जीवनांत परस्परसहकाराबरोबरच अैक्य आणतां येतें.

कित्येक वृत्ती मनुष्यहृदयाला अितक्या स्वाभाविक आहेत कीं, त्यांचें जर नियमन केलें नाही तर, त्या अमर्याद वाढून सगळ्या जीवनाचा नाश करून टाकतात. त्यांना सरळ विरोध करणें किंवा त्यांचा बाह्य निरोध करणें शक्य किंवा सुरक्षित असत नाही. दडपणानें त्या विकृत बनतात आणि मग लपून छपून अथवा अस्वाभाविक रीतीनें त्या स्वतःची तृप्ति करून घ्यायला पाहतात. यांपैकीं कित्येक वृत्ती मर्यादित स्वरूपांत क्षम्य असतात, अितकेंच नव्हे तर हितकरहि असतात. त्यांचा नाश करण्याअेवजीं त्यांना विशुद्ध बनवून जर उन्नतीच्या मार्गाकडे वळविण्यांत आले तर संपूर्ण शिक्षणाच्या वावर्तीत त्यांची पुष्कळच मदत होते. हें कार्य कांहीं

कांहीं वेळां सामाजिक रीत्याच चांगले माधतें. याला सणांची मदत पुष्कळ होण्या-जोगी आहे.

सणांच्यासंबंधीं आम्ही असा दृष्टिबिंदु ठेवला आहे कीं, सणाचा दिवस हा वाटेला तसा वेळ अधळण्याचा किंवा आराम घेण्याचा सुटीचा दिवस नाही. सण आणि उत्सव हे शिक्षणाचें अेक नैमित्तिक आणि मोलाचें अंग आहे. आणि याच कारणानें, जुनी रूढी शक्य तितकी लक्षांत ठेवून सणांचे कार्यक्रम असे सुचविले आहेत कीं, त्या त्या दिवसाचें वैशिष्ट्य तर त्यांतून लक्षांत यावें आणि तरीसुद्धां प्रत्येक कार्यक्रम अतिका कांहीं सुटसुटीत राहावा कीं, सणामुळें आलेला थकवा अुतरण्यासाठीं सणानंतरचा दिवस नासावा लागूं नये, अेक रात्रीं जागरण तर दुसऱ्या दिवशीं दिवानिद्रा अशी अनिष्ट स्थिति येऊं नये.

कित्येक सणच असे आहेत कीं, जे महत्वाचे असूनहि त्यांच्यामागे विशेष कार्यक्रम असणार नाही. यांना आम्ही अर्ध्या दिवसाचे सण गणले आहेत.

याच्यापुढें जाऊन आम्ही कित्येक प्रसंग असे कल्पिले आहेत कीं, जे आज उत्सव म्हणून किंवा सण म्हणून धरतां येणार नाहींत आणि तरीहि त्यांचें महत्त्व विद्यार्थ्यांच्या दृष्टीपुढें दरसाल ठेवावेंच लागेल. अशा प्रसंगांकरितां दिवसाच्या कार्यक्रमांमधून एखादा तास दिला तरी पुरे होण्याजोगा आहे. ४० मिनिटें, पाऊण तास किंवा तास—जसा समयविभाग असेल त्याप्रमाणें एक विभाग अशा प्रसंगासाठीं राखून ठेवावा, अशी आमची शिफारस आहे.

उत्साहा संस्थांना दरवर्षी नवे नवे सण शोधून काढतां येतील आणि सणांच्या मोठ्या संख्येन अधिक भर टाकतां येतील. पण त्यांत जर योग्य संयम नसेल तर अल्पजीवि कुपुल्लक सण वाढण्याचा संभव जास्त. कित्येक सणांनीं जीवनधर्मीला अनुसरून विस्मृतीच्या पोटांत लुप्त व्हावें आणि नव्या सणांना जागा करून द्यावी. सण हे मानवजीवनासाठीं आहेत. मानवजीवनावरावर त्यांच्यांतहि परिवर्तन झालेंच पाहिजे.

कांहीं सण महावृक्षाप्रमाणें शेकडो वा हजारों वर्षे जगतात, कांहीं सामान्य वन-स्पतींप्रमाणें थोडा वेळ जगून आपलें कार्य समाप्त करतात. पुराणप्रिय सनातन धर्मीत जे कित्येक दीर्घजीवी नण आहेत त्यांची आमच्या योजनेन कदर केलेली दिसून येतील. कित्येक नवीन सणांची त्यांत भर घातली आहे. तींहि संयमपूर्वकच घातलेली आहे.

या नव्या भरण्यांतील एकूण एक सण दीर्घजीवी व्हावे अशी कांहीं आमची अपेक्षा नाही, अिच्छाहि नाही. आज त्यांचें महत्त्व आहे. हें महत्त्व जोंवर कायम आहे तोंवर हे सण टिकले तरी पुष्कळ झाले.

‘श्रीविष्णूच्या आज्ञेने प्रवर्तित असलेल्या’ अतिहासकत्वाच्या योगाने हिंदुस्थानांत जगांतील बहुतेक सर्व धर्म गोळा झाले आहेत. हिंदुमानेच्या अमृतदृष्टीमुळे हे सर्व धर्म एका कुटुंबांतील मुलांप्रमाणे या ठिकाणी राहातील. हा कुटुंबधर्म स्वीकारून प्रत्येक धर्माने अंतर धर्मांतील सणांना आपल्या मताप्रमाणे स्वतःच्या जीवनांत स्थान देणे योग्य आहे. हें तत्त्व लक्षांत ठेवून कित्येक सण आम्ही आमच्या योजनेत घातले आहेत. या तत्त्वाचा स्वीकार केला असूनसुद्धां आम्ही त्याचा नियम असा बनविलेला नाही. आपल्या जीवनांत जी जी वस्तु स्वाभाविकपणे दाखल होतील तिचे विचारपूर्वक स्वागत करणे हाच क्रम योग्य होतील. आमच्या या योजनेत पारशी सणांना स्थान दिले गेलेले नाही याचें कारण त्या धर्माचें महत्त्व आम्ही कमी समजतो हें नाही तर आपल्या संस्थांमध्ये अजून असा सहकार वाढलेला नाही हेंच त्याचें कारण आहे.

आम्हांला निश्चितपणे असे वाटते की, हिंदुस्थानांत वसलेल्या सर्व धर्मांमार्गे हिंदु-मानेचा एक सर्वसंग्राहक विश्वप्रेमी प्रेमधर्म आहे. या उदार आणि सर्वसहिष्णु धर्माचा प्रभाव जसजसा प्रत्येक धर्मावर पडेल तसतसा सर्व धर्मांमध्ये कौटुंबिक भाव वाढत जातील. आमच्या योजनेत या गोष्टीचा स्वीकार केला गेला आहे. तरी भविष्यकाळाच्या प्रवाहाने अमुक मार्गानेच वाहावे असा मुद्दाम प्रयत्न आम्ही केलेला नाही. जुन्यांतील जे कांहीं सार्वभौम धर्मतत्त्वाला विरोधी किंवा दंशकालाला अनुचित वाटले तें आम्हीं सोडून दिले आहे. जें निर्दोष असूनहि क्षीणसत्त्व आणि कालग्रस्त झाले आहे तें कृत्रिमपणे टिकविण्याचा आम्ही प्रयत्न केला नाही. आमच्या योजनेत भविष्यकाळासाठीं करावयाच्या तयारीची दृष्टि आहे. तरी त्या दृष्टीची विशेष छाप योजनेवर पडू दिलेली नाही, कारण भविष्यकाळाच्या दिशेचें निश्चित दर्शन होण्यास अजून थोडा अवकाश आहे. वर्तमानकाळांतील आकांक्षपा आणि भूतकाळाकडून मिळालेला रंख वारसा याचाच आम्ही विशेष विचार केला आहे.

निरुत्साही, निर्जीव शाखावत्याची शिक्षणप्रथा सर्वत्र फैलावली असल्यामुळे शाळां-मार्फत सण साजरे करण्याचें काम हणें अवघड आहे असें जाणून, आणि निरुद्यमी समाजाच्या उद्यमी होण्याच्या प्रयत्नांत सण वाध्यास न व्हावेत पण द्यासाठी प्रत्येक



मणाचा कार्यक्रम खूपच हलका ठेवला आहे. तरी त्यांत उत्पादनात्मक अथवा विधायक शिक्षणाच्या विक्रमाचे बीजारोपण स्पष्ट आहे. शाळांतील जीवन जसजसे समृद्ध होत जाव्हाल तसतसा या बीजाचा विकास आपोआप होईल—पण हे सारे शिक्षकांच्या प्रतिभेवर आणि विद्यार्थ्यांच्या उत्साहावरच अवलंबून आहे.

कांहा नाही तरी निदान शिक्षक, विद्यार्थी आणि आजीबाप यांना परस्पर परिस्थितीत अंतर आणण्याचे प्रसंग या दृष्टीने तरी हे सण महत्त्वाचे आहेतच. समाज—सुस्थितीचे चिंतन करणारे चतुर शिक्षक अशा उत्सवांचा लाभ घेऊन अनायासे सामाजिक प्रश्नांविषयी लोकमान्य जागृत करतील आणि लोकशिक्षणाला लहानसा प्रारंभ करतील. दुसऱ्या बाजूने, वाढत जाणाऱ्या आपल्या सामाजिक जीवनांत एकाच दिशेने पण भिन्न भिन्न मार्गांनी जाणाऱ्या संस्थांचा परस्पर—परिचय वाढविण्याच्या कामांतहि आपले उत्सव मोठी कामगिरी बजावू शकतील. स्नेहसंमेलनापेक्षां समाजमान्य अशा उत्सवांचे प्रसंग असा परिचय नम्रतेच्या वातावरणांत अधिक स्वाभाविक रीतीने करून देतात. तात्पर्य—विद्यार्थ्यांचा सर्वांगीण विकास व्हावा, हृदयातील अुच्च भावना विशिष्ट रीतीने खुलाव्या आणि तद्द्वारा मुख्यतः धार्मिक आणि सामाजिक शिक्षणाचे आह्लाददायक साधन उपलब्ध व्हावे या अुद्देशाने हे सणांचे टांचण आम्ही तयार केले आहे.

मुख्य अुद्देश आपली आश्रमाची शाळा आणि आपले आश्रमजीवन अेवढ्यापुरताच आहे. तरी अितर ठिकाणच्या अनेक शाळांनाहि यांतून थोडेफार सूचन मिळेल अशी आशा मनांत नाही असे नाही.

## आवश्यक वाचन

: ३२

पुढें सणांचीं जीं टांचणें दिलीं आहेत तीं कांहीं मगांचें निबंधन (corle) नयार करण्या-साठीं म्हणून नाहींत, तर सणांच्या पाठीमागे असलेले परंपरागत रहस्य आणि त्यांत घालतां येतील अशीं नवीं तत्त्ये यांफळे वाढत्या पिढीचें लक्ष घ्यावें म्हणून तीं दिलीं आहेत. याच्या संबंधीं वाचण्यालायक साहित्य पुष्कळ आहे आणि नाहीं. सणांचेंच महत्त्वं प्रतिपादन करणारीं अशीं पुस्तके मराठीत फारतर दोन तीनच असतील. श्री. अण्वेदी यांचें 'आर्यांच्या सणांचा इतिहास' हें अेकच पुस्तक या क्षेत्राला ज्यापणारे आहे. श्री. अण्वेदी यांनीं नव्या माहितीची भर घालून त्याची नवी आवृत्तीहि काढली आहे. सणांचें स्वतंत्र संशोधन करून, त्याचप्रमाणें हिंदी भाषांत या विषयावर जीं दोन पुस्तके लिहिलीं गेलीं आहेत त्यांचा उपयोग करून घेऊन त्याची नवी आवृत्ति काढण्याची आवश्यकता आहे. 'Hindu Fasts and Feasts' या सारखी पुस्तकेहि नवी इस्पट देऊ शकतील. प्रजाजीवनाचा आणि समाजशास्त्राचा अभ्यास करणारे कित्येक गोरे लोक वेगवेगळ्या सणांवर कांहीसे महानुभूतिपूर्वक आणि कांहींशी गंमत किंवा कैतुक म्हणून लिहितात, त्यांतूनहि तुलनेला उपयोगी असा काहीं भाग सांपडतो. बंगालीं लेखकांनींहि अंगरेजीत तशींच बंगालीत पुष्कळ माहिती गोळा केल्ली आहे. जामनगरचें मणिशंकर शास्त्री यांचें पुस्तक अगदीं जुन्या धर्तीचें आहे, पण शोधकाला त्यांतूनहि कांहीं मिळवितां येतील. याच धर्तीचें मराठी पुस्तक 'आर्यो-त्सव प्रकाश' (खानापूर) म्हणून आहे. लोकमान्य टिळकांच्या 'ओरायन' (मृगशीर्ष) वरून सुचलेल्या होळीच्या सणावरील 'शिमगा' नांवाचें एक मराठी पुस्तक आहे. ते संशोधनाच्या दृष्टीने मोलाचें आहे म्हणनात. सुरतेला भाभी काजी यांनी सणां-वर एक व्याख्यान दिलें होतें तेही पाहून टाकण्यासारखें आहे. आपल्या देशाच्या वाता-वरणाचें अतुचकर, व्यापारी आणि प्रवासी यांच्या गरजा आणि खेडूतांचें जीवन या सर्वांचा आपल्या सणांशीं संबंध आहे. परदेशी लोकांत हिंदू जीवनाचा पुष्कळ खोल अभ्यास भगिनी निवेदिता यांनीं केला आहे. त्यांचें कित्येक लेखहि बहुमोल सूचना देतील.

आजलें प्राचीन राष्ट्रीय जीवन मुख्यत्वे रामायण, महाभारत आणि भागवत यांमध्ये प्रतिबिंबित झालें आहे. देवी-उपासकाचें वैशिष्ट्य देवभगवतांमध्ये मिळण्याजोगे

आहे. या महाग्रंथांचा परिचय सर्वांनाच असला पाहिजे. किशोरलालभाभींच्या अवतारमल्लेतील 'राम अने कृष्ण', 'बुद्ध अने महावीर', आणि 'सहजानंद' ही पुस्तके मुलांना उपयुक्त आहेत. 'सीताहरण' हेहि मुलांना उपयोगी आहे. कृष्ण-चरित्रासाठी चिंतामणराव वैद्यांचे 'कृष्णचरित्र' आणि बंकिमवाबूंचे 'कृष्णचरित्र' ही दोन विशेष उपयोगी आहेत.

याच विषयासंबंधी जैन साहित्य मुद्दाम पाहण्यासारखे आहे. 'त्रिशष्टिशलाकापुरुष' या ग्रंथांत तीर्थंकरांची माहिती तर मिळेलच. पण जसजसा जैन आगमांचा सुलभ सारानुवाद आजच्या वाचक वर्गांपुढे रुजू होत जातील तसतशी जैन जीवनपद्धति अधिकाधिक समजू लागेल. जैन हा केवळ संप्रदाय नाही, ती विश्वव्यापी होऊ शकेल अशी जीवन दृष्टि आहे हे समजून येतील तेव्हा त्याची छाप सर्वच सणांवर कमीजास्त पडेल.

आपल्या येथे बौद्ध साहित्य थोडे फार तयार झाले आहे. 'बुद्धलीलासारसंग्रह' 'धम्मपद', 'सुत्तनिपात', 'बौद्ध संघाचा परिचय', 'समाधिमार्ग' 'बुद्ध, धर्म आणि संघ', 'बौद्धपर्व' अितक्या पुस्तकांच्या द्वारा तो धर्म आणि त्याचा 'अवेरा' चा महान संदेश याचे वातावरण सहज लक्षांत येतील. शान्तिदेवाचार्यांच्या 'बोधिचर्या-वतारा' मधून उत्तम श्लोक धर्मानंदजींनी आपल्याला काढून दिले आहेत ते पारायण करण्यालायक आहेत. जगातील मुर्शिद्दन प्रजेला बौद्धधर्म आणि ब्राह्मधर्म (प्रार्थना-समाज) जास्तीत जास्त आकर्षण करतो, कारण त्यांत समजुतीचे आणि वादाचे साम्राज्य कमीत कमी आहे. सदाचाराची साधना याचाच यांत मुख्य भाग आहे.

सदाचाराच्या साधनेवर अग्रगण्ये जोर देणारा एक मोठा धर्म म्हणजे इस्लाम होय. तरी त्यांत मनुष्यस्वभावावर फार अंकुश ठेवला जाऊ नये ही दृष्टि मुद्दाम ठेवलेली आहे. इस्लामधर्मात सण फार नाहीत. दोन आदि-तर अब्राहिमाच्या धर्मातून घेतलेल्या आहेत. मोहरम हा अतिहासिक सण म्हणता येतील. महंमद पैगंबरांच्या वफात (मृत्यु) चा दिवस कांहीं कांहीं ठिकाणी साजरा केला जातो. इस्लामी संस्कृतीत विलासितेला कितपत अवकाश आहे हा प्रश्न स्वतंत्र आहे. इस्लामीधर्म मात्र संयम-धर्मी (puritan) च आहे. कुराने गरीब, महंमदसाहेबांचे जीवनचरित्र आणि हदिस भेवढे वाचल्याने त्या संस्कृतीची कल्पना येऊ शकेल. अमीरअलीचे 'spirit of-Islam' आणि आर्नेल्डचे 'Preaching of Islam' ही दोन पुस्तके शिष्याकांनी वाचलेली असली पाहिजेत. 'क्रस-अल्-अंबिया' चे मराठी भाषांतर जर कोणी

करून देतील तर मोठी सोय होतील. अस्लामधर्मात प्रतिष्ठा पावलेल्या पैगंबरांचे चरित्रे त्यांत आपल्याला मिळतील. 'मुस्लीम महात्माओ' हे गुजराती पुस्तक गुजरातेत बरेच लोकप्रिय झाले आहे.

ख्रिस्ती धर्मासाठी 'नवा करार', डीन फेरारचे 'ख्रिस्ताचे चरित्र', केम्पीसचे 'अभिमेशन ऑफ क्रायिस्ट', आणि वॉनयनचे 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस', अेवढे तर वाचलेलेच असले पाहिजे. सेंट पॉल, अग्नेशियम लॉयला, मार्टिन लूथर यांच्या-विषयी मराठीत लिहिण्याची आवश्यकता आहे. टॉल्स्टॉयनी वाचून परिच्छेदांत मुलांसाठी अीशूचे चरित्र लिहून ठेवले आहे तेहि चांगले आहे.

शिक्षकांना ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज, रामकृष्ण मिशन यांसारख्या व्यापक आणि आधुनिक धर्मसंस्करणाच्या प्रयोगांविषयी पुष्कळ ज्ञान असले पाहिजे, कारण भविष्यकाळाची दिशा यांतूनच आपल्याला मिळून आली आहे. थिऑसफीनेही अनेक धर्मांच्या अभ्यासाविषयीचे अपयुक्त साहित्य प्रसिद्ध केले आहे. आचार्य श्री आनंदशंकर ध्रुव यांनी तयार केलेली गुजराती पुस्तके वाचण्याजोगी आहेत. विशेषतः त्यांच्या 'धर्मशिक्षण या पुस्तकांत सर्व धर्मांविषयी थोडी थोडी माहिती दिलेली आहे.

शाख धर्माची कामगिरी बहुमोल आहे. त्या धर्माविषयी अधिक ज्ञान करून घेणे इष्ट आहे. मगनभाई देसाई यांच्या 'सुखमनी' आणि 'जपजी' या गुजराती पुस्तकांच्या प्रस्तावना बऱ्याच उपयोगी पडतील. ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास यांच्यासारख्या महाराष्ट्रीय संतांविषयी जे मुबलक साहित्य आहे त्याविषयी महाराष्ट्रीयाना सांगण्याची आवश्यकता नाही. तुलसीदास, सूरदास आणि कबीर यांच्यासंबंधी माहिती हिंदीतून घ्यावी.

हिंदुस्तानातील मुख्य मुख्य संत-कवींचे अध्ययन प्रत्येक संस्थेत नेहमी चालले पाहिजे.

सणांची योजना तयार करणे हे एकप्रकारे हिंदुस्तानच्या विविधरंगी संपूर्ण संस्कृतीचे प्रतिबिंब पाडण्यासारखे आहे, आणि नेहिल साहित्याच्या द्वारा नव्हे तर जीवनातील अनुत्सवांच्या द्वारा हे मोठे काम प्रस्तुत कार्यक्रमाच्या वाहरेचे आहे आणि हे काम अकसमयावच्छेदाने होण्यापेक्षा हळूहळू ते वाढावे हच ठीक आहे.

व्यापक दृष्टीने अभ्यास करावयाचा असेल तर आवश्यक वाचनाची यादी हवी तेवढी वाढविता येतील. फ्रेझरचे Golden Bough हे पुस्तक नास्तिक दृष्टीने

लिहिलें असलें तरी अत्यंत वाचनीय आहे. मूळ ग्रंथाचे १०११२ भाग वाचण्याची जरूर नाही. ग्रंथकारानेच केलेला सारांशाचा एक भाग मिळतो तो पुरेसा आहे.

प्रस्तुत पुस्तकांत प्रत्येक सणाच्या म्हणजे व्रताच्या व उत्सवाच्या शेवटी तो कसा साजरा करावा याविषयी त्रोटक सूचना दिल्या आहेत. पण महाराष्ट्रांत हे सण अगदीं परवां परवांपर्यंत मोठ्या उत्साहाने आणि भक्तीने साजरे केले जात असत; त्यांचीं वर्णनें अजून कोणी लिहून ठेवलेलीं नाहीत. सीमोल्लघन, काकडआरती, गोपाळकाला, गोप, गौर, वसंतपूजा, वेदपाठ, गोकुळपूजा, हदगा, वटसावित्री, दिंड्या, श्रावणी, समुद्रपूजा गणपतीउत्सव, खंडेपूजा, भाजुबीज, तिळगुळ, शिमगा वगैरे सणांचे जे लोकप्रिय प्रकार आपल्याकडे चालत असत ते आजही कोठे कोठे दिसून येतात. यांची सविस्तर वर्णनें व त्यांतून घेण्याजोगें काय आहे, काढण्याजोगें काय आहे, आणि त्यांत वाढविण्याजोगें काय आहे या सर्व बाबींचा झुहापोह करणारे लेख अथवा ग्रंथ तयार झाले पाहिजेत. राष्ट्रीय जीवन अगदीं सुतत्रयासारखें नीरस, अथवा असंस्कारी, विलासी लोकांप्रमाणे अथळ केल्यानें समाजाची प्रगति होणार नाही. आपल्या देशातील शिखि, जैन, बौद्धप्रभृती हिंदू, आणि मुसलमान, यहूदी, ख्रिस्ती आदि अन्य धर्मी या सर्वांचा घोरोबा जोपर्यंत वाढला नाही तोपर्यंत राष्ट्रीय ऐक्य साधावयाचें नाही आणि भारतीय संस्कृति सिद्ध होणार नाही. दंगे आणि मारामाऱ्या करून व एकमेकांच्या सुखाळ्या-पाखाळ्या काढून अथवा राजकीय करारनाम्याच्या द्वारा देवाणघेवाण करून हा प्राशन कायमचा सुटणारा नव्हे. एकमेकांला ओळखून, एकमेकांविषयीं प्रेमादर उत्पन्न करून ओतपोत झाल्यानंतर—अर्थात् व्यापक आणि उदार, खरी आणि खोल धार्मिकता वाढविल्यानंतर—तें सिद्ध होणार आहे.

या दृष्टीनें यहूदी आणि ख्रिस्ती, शिखि आणि सुन्नी, पार्शी आणि सीरियन वगैरे सर्व समाजांच्या व्रतांचा आणि उत्सवांचा प्रत्यक्ष प्रकार पाहिला पाहिजे आणि शक्य असेल तेव्हा त्यांत भाग घेतली पाहिजे.

## अुत्सवांतील अुपवास

: : ३

एक मित्र विचारतात, “ जन्माष्टमी किंवा रामनवमी यासारखे दिवस वास्तविक अुत्सवाचे आणि आनंदाचे मानले पाहिजेत त्या दिवशीं निष्टान्न-भोजन करण्या-अेवजीं अुपवास करण्याची चाल कां बरें पडली ? ”

पुच्छक असें समजत असलेले दिनतात कीं अुपवास हा दुःखाच्या किंवा शोकाच्या प्रसंगांच करावा. तमेंच असेल तर खूडीभयत लोक मोठमोठ्या जेवणावळी कां बरें घालतात ? अुपवास हा कांहीं दुःखाचें किंवा संकटाचें चिह्न नाहीं. वित्तामध्ये ग्लानि असेल, दुःखाचें दडपण पडलें असेल त्यावेळीं आरोग्याच्या नियमाप्रमाणें न खाणें हें योग्य आहे. हृदयांतल त्वाभाविक भावनासुद्धां तशीच सूचना देते. आरोग्याच्या नियमाच्या दृष्टीने पाहिलें तर जेव्हां मनाला हर्ष झाला असेल त्यावेळीं देखील आपण कांहींहि खातां कामा नये; निष्टान्नभोजन किंवा अतिआहार हा तर करतांच कामा नये. ज्याप्रमाणें दुःखाच्या वेळीं पचनशक्ति कमी झालेली असते त्याचप्रमाणें आनंदाच्या अुत्तेजनांत आणि क्रोधाच्या वेळीं सुद्धां ती तशीच असते. म्हणून कोणत्याहि कारणानें जर चित्ताचें स्वास्थ्य नाहीं झालें असलें तरी त्यावेळीं अनशन किंवा अल्पाहार हाच विदित आहे.

जन्माष्टमीसारख्या उत्सवप्रसंगां आपण जो अुपवास करतो त्याचा अुद्देश याहूनहि विशेष आहे. जन्माष्टमी हा कृष्णजन्माचा अुत्सव नाहीं, तर ती अंक साधना आहे. द्वापरयुगांत किंवा त्रेतायुगांत कृष्णजन्म झाला असेल, त्याच आपल्यास काय होय ? जेव्हां आपल्या हृदयांत कृष्णजन्म होईल तेव्हांच आपण धन्य होई. लहानपणीं आम्हांला असे अुपवास करण्याचा आधकार नव्हता; अुपवास हा घरांतल्या प्रौढ माणसांनीच करायचा. आम्ही पडलों मुलें. आम्ही दोन वेळां यथास्थित जेवावें आणि पूजेंत मदत करावी, अेवढाच आमचा धर्म. मोठीं माणसें अुपवास करतात हें बघून आम्हांलाहि अुपवास करायचा आहे असा आम्ही हट्ट धरून वसावें, आणि रडून रडून, आणि क्वचितप्रसंगां मार खाऊन, न खाण्याचा हक्क मिळवावा, अशी स्थिति होते. कारण अुपवास ही एक साधना आहे.

आधोळ केल्याने जसा पवित्रतेचा अनुभव येतो, मौन धारण केल्याने जसे आध्यात्मिक वातावरण मिळवितां येते, तसेंच उपवासाने अंतर्मुख होतां येते आणि सात्विक वृत्तीहि विकसित करतां येते. भोजन करतांच प्रत्येक वंळीं शरीरांत एक प्रकारची जडता येते. ती टाळून शरीराचा वाजा हलका करण्याने ध्यानाला किंवा उपासनेला अनुकूल परिस्थिति मिळते. उपनयन, उपनिषद, उपवास आणि उपासना हे चारी शब्द सारखेच आहेत. उपवासाचा मूळ अर्थ अनशन नव्हे, जसा ब्रह्मचर्याचा मूळ अर्थ वीर्यरक्षण नव्हे. ब्रह्मचर्य म्हणजे आश्वरप्राप्त्यर्थ वेदशास्त्रांच्या अध्ययनांत तन्मय होणे. वीर्यरक्षणेनेच हे शक्य होत असल्यामुळे त्यालाच विशेषेकरून ब्रह्मचर्य हे नांव दिले गेले. उपवास या शब्दांतहि असाच भाव आहे. उप-वास म्हणजे परमात्म्याच्या जवळ राहणे, त्याचे सान्निध्य अनुभवणे. इंद्रियांची तृप्ति करण्यामागे जो लागतो तो आश्वराचे नाम घेत असला तरी आश्वराचे सान्निध्य अनुभवू शकत नाही. आहार तेवढा त्यागून अथवा शरीरप्रकृतीचे साम्य संभाळण्यासाठी अल्प प्रमाणांत सात्विक आहार करून परमात्म्याचे स्मरण करणे, त्याची भांजन करणे, त्याचा निकटवास अनुभवणे, याचे नांव उपवास; हीच उपासना. उपासकाला आहार कमी करण्यावांचून गत्यंतर नाही, असे पाहून धार्मिक साधनेंपरीत्यर्थ केलेल्या अन्नत्यागालाच उपवास म्हणू लागले. कृष्णजन्माच्या किंवा रामजन्माच्या दिवशी ही आध्यात्मिकता, ही साधक वृत्ति अंगी आणण्यासाठी उपवास ठेवलेला आहे.

## जयन्ती

: : ४

आश्वराच्या सृष्टीत असंख्य माणसे जन्माला येतात. त्या सर्वांची जयंती कांही आपण साजरी करीत नाही. ज्यांच्या जीवनरहस्याचा आपल्या हृदयांत पुण्यपावन अुदय झाला असेल त्यांचीच जयंती आपण साजरी करतो. कोट्यवधि लोकांचे जीवन हे आला दिवस कसावसा पुरा करण्यांतच संपते. माणसाला त्राम देणारे—त्याला पामर बनविणारे जे असंख्य शत्रू आहेत त्यांच्याविरुद्ध झुंजणाऱ्यांची संख्या अत्यंत अल्प असते. शत्रूला कांहीहि करून टाळवे, किंवा नामदर्पणा पत्करून त्याच्याशी

चालढकल करावी आणि युद्धाच्या त्रासांतून सुटवें हाच सामान्य लोकांचा जीवन-  
कर्म असतो. पण या रीतीनें काहीं शत्रू टळत नाही. तो आपला पुनः पुनः समोर  
येऊन अुभा राहातोच आणि प्रत्येक वेळीं चालढकलीची किंमत अधिकाधिक मागत  
जातो. ही किंमत फक्त पैशाचीच नसते; ही किंमत प्राणाची, तेजस्वितेची आणि  
स्वतंत्रतेची असते. प्रत्येक मनुष्यांत या तिन्ही गोष्टींची विच्छा तर असतेच; पण  
होण्याची किंमत देऊन आपली तेजस्विता आणि स्वतंत्रता संभाळण्याचा किंवा  
मिळविण्याचा प्राण ज्याच्यांत असतो त्यालाच वीर पुरुष म्हणायचें—त्याचीच आपण  
जयंती साजरी करतों. जयंतीचा अर्थच मुळीं हा आहे.

पण जयंती आपण साजरी करतों तरी कशासाठी ?

दोन प्रकारचे लोक जयंत्या साजऱ्या करतात. ज्यांना वीर पुरुषांकडून प्रेरणा  
मिळविण्याची विच्छा असते ते, आणि वीर पुरुषांकडून रक्षण विच्छित्तान ते. अेक वर्ग  
वीरांचा अुपासक असतो आणि दुसरा वर्ग त्यांचा आश्रित असतो. प्रथम वर्गीला  
वीरांच्या वीरकर्मानीं प्रेरणा, अुत्साह आणि प्राण मिळता, वीरांची अुपासना करून ते स्वतः  
वीर बनतात. दुसरा वर्ग पामर असतो. हे लोक नेहमीं भयभीत अवस्थेंत राहतात, ते  
त्यागाला भिनात. ते म्हणतात, ' या भयभीत दर्शतून जो आम्हांला सोडवील,  
आम्हांला आश्रासन देतील, तोच आमचा नाथ. त्याचाच आम्ही जयजयकार करूं  
त्याची परसन्नता मिळवूं आणि त्याच्या वीरकर्म्याच्या आश्रयाखालीं मुखानें राहूं. तो जर  
गेला तर श्रीश्वरापाशीं प्रार्थना करूं कीं हे प्रभो ! आम्हांला दुसरा कोणा नाथ दे,  
आम्हांला सनाथ कर. '

अनाथ लोक जेव्हां वीरपूजा करतात तेव्हां त्या पूजपाठीमागे अशाच प्रकारची  
याचनावृत्ति असते.

मांजरीचें पिलूं म्हणतें; ' माझे आजी, ये आणि मला अुचलून सुरक्षित स्थळीं  
ठव. ' पक्ष्यांचे पिलें म्हणतात, ' आमची आजी आम्हांला आपली पंखे फडफडायचीं  
कशीं तें दाखवील तर आम्हीहि तसेंच करूं. ' अशा प्रकारें जयंत्या दोन तऱ्हांनीं  
साजऱ्या होत असतात.

हिंदुस्थानांत जेव्हा अनाथवृत्तीनें जयंत्या चालू राहतील तेव्हा देशांत पुरुषार्थ  
येणार नाही. जशी श्रद्धा तसे फळ. ' विश्वंभर प्रभूच्या मनांत जेव्हां दया स्फुरले  
जेव्हां तो आपल्याला अलौकिक पुरुष देखील आणि आपण त्याला पिळून काढून—त्याला



बाजारांत विकून-सुखी होऊं; अशा वृत्तीमध्ये जितकी सुरक्षितता आहे तितकेंच अधःपतनहि आहे. पुण्यपुरुषांचें बलिदान करून अिहलोकीचें वैभव प्राप्त करून घेण्यांत पुण्यवषय आहे, प्राणवषय आहे. पुण्यपुरुषाच्या बलिदानानें जेव्हां आपल्यांतहि वलिदानाची वृत्ति जागी होईल तेव्हांच आपण त्या पुरुषाची खरी अुपासना केली असें म्हणतां येईल आणि तेव्हांच आपला खरा अुत्कर्ष होईल.

आज आपण अीश्वराजवळ ' आम्ही आपले पामरच राहाणार. तूं अवतार धारण करून आमचें दुःख निवारण कर ' अशी प्रार्थना करतां कामा नये. आपण परमात्म्याला सांगितलें पाहिजे कीं, ' हे जनार्दना, तुझा अवतार आमच्या हृदयांत होवो. बानरांचे सुद्धां वीरपुरुष करून सोडणारे अवतार आम्हांला पाहिजेत; जो आम्हांला स्वावलंबन शिकवील असा अवतार आम्हांला पाहिजे; कारण स्वावलंबनांतच आमचा कायमचा अुद्धार आहे; परावलंबनांतच आमची अवनति आहे, आमचा अपमान आहे. '

स्वावलंबनाच्या वीरवृत्तीनें महात्म्यांची जयंती साजरी करण्यानें आपण त्यांच्या महात्म्याचे अधिकारी बनत असतो. परावलंबी वैश्यवृत्तीनें जयंती साजरी करण्यानें आपण महात्म्यांकडून कींव करून घेण्याला पात्र होत असतो.

आणें कींव म्हणजे तिरस्काराचें सज्जन स्वरूप.

## सणांची यादी

: : ५

येत्

|       |    |              |          |
|-------|----|--------------|----------|
| शुद्ध | १  | ध्वजारोपण    | अेक संमय |
| ”     | ९  | रामनवमी      | १ दिवस   |
| ”     | १३ | महावीर जयंती | १ ”      |
| ”     | १५ | हनुमान जयंती | १        |

**वैशाख**

|         |                    |      |   |
|---------|--------------------|------|---|
| शुद्ध ३ | अक्षय्यतृतीया      | -११- | „ |
| „ १०    | शंकरजयंती          | -११- | ; |
| „ १५    | बोधिजयंती          | -११- | „ |
| वद्य १३ | चोखामेळा पुण्यतिथि | १    | „ |

**ज्येष्ठ**

|          |            |   |   |
|----------|------------|---|---|
| शुद्ध १५ | वटसावित्री | १ | „ |
|----------|------------|---|---|

**आषाढ**

|          |                  |      |   |
|----------|------------------|------|---|
| शुद्ध ११ | महा अेकादशी      | -११- | „ |
| „ १५     | गुरुपूर्णिमा     | १    | „ |
| वद्य १३  | जनाबाई पुण्यतिथि | १    | „ |

**श्रावण**

|             |                 |      |   |
|-------------|-----------------|------|---|
| शुद्ध ५     | नागपंचमी        | १    | „ |
| सर्व सोमवार | श्रावणी सोमवार  | -११- | ! |
| शुद्ध १५    | श्रावण पूर्णिमा | १    | „ |
| वद्य ८      | गोकुळाष्टमी     | १    | „ |

**भाद्रपद**

|         |                                    |   |      |
|---------|------------------------------------|---|------|
| शुद्ध ४ | गणेशचतुर्थी                        | १ | दिवस |
| „ ५     | अृषिपंचमी आणि<br>पजुसण ( पर्युषण ) | १ | „    |

**भाश्विन**

|           |              |   |   |
|-----------|--------------|---|---|
| शुद्ध ८-९ | सरस्वतीपूजन  | २ | „ |
| „ १०      | दसरा         | १ | „ |
| „ १५      | शरत्पूर्णिमा | १ | „ |
| वद्य १३   | धनत्रयोदशी   | १ | „ |
| „ १४      | नरकचतुर्दशी  | १ | „ |
| „ ३०      | दिवाळी       | १ | „ |

### कार्तिक

|         |                      |      |   |
|---------|----------------------|------|---|
| शुद्ध १ | विक्रमवर्षारंभ       | १    | „ |
| „ २     | भाऊबीज               | १    | „ |
| „ ११    | महा अेकादशी          | -११- | „ |
| वद्य १३ | ज्ञानेश्वर पुण्यतिथि | १    | „ |

### मार्गशीर्ष

|          |              |      |   |
|----------|--------------|------|---|
| शुद्ध ११ | गीताजयंती    | -११- | „ |
| „ १५     | दत्तजयंती    | १    | „ |
|          | मकरसंक्रांति | १    | „ |

### पौष

### माघ

|         |                  |               |      |
|---------|------------------|---------------|------|
| शुद्ध ५ | वसंतपंचमी        | १             | „    |
| „ ८     | भीष्माष्टमी      | अेक समय-विभाग |      |
| वद्य ९  | रामदास पुण्यतिथि | १             | दिवस |
| „ १४    | महाशिवरात्र      | -११-          | „    |

### फाल्गुन

|          |                   |         |      |
|----------|-------------------|---------|------|
| शुद्ध १५ | होळी              | १       | दिवस |
| वद्य २   | तुकाराम पुण्यतिथि | अेक समय |      |
| „ ३      | शिवाजी जयंती      | १       | दिवस |
| „ ६      | अेकनाथ पुण्यतिथि  | १       | „    |

### अन्यधर्मीय सण

|          |        |   |   |
|----------|--------|---|---|
| डिसे. २५ | नाताळ  | १ | „ |
|          | मोहरम  | १ | „ |
|          | बकर-ओद | १ | „ |

### राष्ट्रीय उत्सव

|               |                 |         |   |
|---------------|-----------------|---------|---|
| जानेवारी २६   | स्वातंत्र्यदिन  | १       | „ |
| फेब्रुवारी १९ | गोखले पुण्यतिथि | अेक समय |   |

|   |                           |        |
|---|---------------------------|--------|
| फेब्रुवारी २२                           | सौ. कस्तुरबा पुण्यतिथि    | „ „    |
| ( अथवा महाशिवरात्र )                    |                           | „ „    |
| एप्रिल ६ ते १३                          | राष्ट्रीय सप्ताह          | ८ दिवस |
| जून १६                                  | देशबंधु पुण्यतिथि         | एक समय |
| जून ३०                                  | दादाभायी नवरोजी पुण्यतिथि | „ „    |
| ऑगस्ट १                                 | टिळक पुण्यतिथि            | १ दिवस |
| ऑगस्ट ९                                 | क्रांतिदिन                | १ „    |
| ऑक्टोबर २                               | चरखाद्वादशी               | १ दिवस |
| ( अथवा भाद्रपद वद्य १२ ) ( गांधीजयंती ) |                           | „ „    |

## गुढीपाडवा

: : ६

( चैत्र शुद्ध १ )

एक पत्र

“...आज आमचा वर्षारंभ आहे. वानरराज वालीच्या त्रासांतून दक्षिणेकडील भूमि सुटली या आनंदांत घोषर अत्सव करून लोकांनी त्यावेळी गुढ्या अमुन्या केल्या होत्या, तो रिवाज अजूनहि चालू आहे. वर्षारंभाला गुढी पाडवा म्हणतात.

वर्षारंभी नवा संकल्प करायचा असतो, कारण वर्षारंभाचा दिवस म्हणजे एक प्रकारची सकाळ आहे. सकाळ झाली म्हणजे जसा थकवा नाहीसा होऊन नवी स्फूर्ति येते तसे वर्षारंभाच्या दिवशीं नवे पान खुडायचे असते. आतांपर्यंत झाले तें झाले, आजपासून नवीन आरंभ, असे स्वतःशीं समजून मनुष्य नवा संकल्प करतो. नवा संकल्प करण्यापूर्वी सिंहावलोकन करणे हाहि एक माणसाचा स्वभाव आहे. सिंहावलोकन म्हणजे सिंहाप्रमाणे मोगे वळून पाहणे. असे म्हणतात की, अडव्या टाकीत धांवतां धांवतां सिंह मध्ये मध्ये थबकून आपण कोठपर्यंत आलों, किती रस्ता कापला, याचे निरीक्षण करतो. प्रगतिशील मनुष्याला सुद्धां ही संवय अपयोगाची आहे. आतांपर्यंत

आपण काय काय संकल्प केले, त्यांतले किती पार पडले, किती संकल्पांत दुसऱ्या कराव्या लागल्या, कोणते संकल्प काढून टाकावे लागले, याचें सार काढल्या-नंतरच नवा संकल्प करतां येतो. प्रथम प्रथम अत्साहाच्या भरांत येऊन मनुष्य आपला संकल्प बोलून टाकतो. जणू बोललें म्हणजे केलेंच. बोलण्यानें बुद्धि दृढ होते, स्नेही मंडळींच्या सहानुभूतीनें संकल्प पार पाडण्याकरितां अनुकूलता उत्पन्न होते; बोलतांना विचार स्पष्ट होतात; कार्यांत अकारता येते; आणि स्वतःच्या बाबतींत स्वतःच्या वाणीचेंच बंधन उत्पन्न होतें. पण बोलण्यांत संयम पाहिजे, नाहीपेक्षां जुने लोक म्हणतात तसें—बोलण्यानें तोंडची वाफ दवडली जाते, लक्ष्म विथिल होतें, आणि संकल्पाचें आयुष्य वाणीपुरतेंच राहतें. अशासारखा विचार करूनच पुढील श्लोक रचला गेला आहे:

**मनसा चिंतितं कार्यं वचसा न प्रकाशयेत् ।  
अन्यलक्षितकार्यस्य यतः सिद्धिर्न जायते ॥**

[ मनानें चिंतिलें कार्य बोलून प्रकट करूं नये. कारण दुसऱ्यांचें लक्ष असलेल्या कार्याला कधीं सिद्धि मिळत नाही. ]

हा श्लोक रचणारा कोणी व्यवहारी मनुष्य असला पाहिजे. त्याचा युक्तिवाद आपल्या गळीं अंतरला नाही तरी त्याची शिकवण मात्र बरोबर आहे.

वर्षारंभाच्या दिवशीं संकल्पसिद्ध्यर्थ अखादें व्रत ध्यायचें असते. उत्तम व्रत म्हणजे चित्तरक्षायव्रत.

**चित्तरक्षायव्रतं मुक्त्वा बहुभिः किं मम वरतैः**

[ अेक चित्तरक्षायव्रत सोडून अितर भाराभर व्रतें घेऊन मला काय करायचीं ? ]

तरी या महाव्रताच्या मदतीला म्हणून अेक लहानसें व्रत आपणां सर्वांना घेतां येतील. आणि त्यासाठीं वर्षारंभाची किंवा अितर मुहूर्ताची आवश्यकताहि नाही.

आपला अनुभव जर आपण तपासून पाहिला तर असें दिसून येतील कीं पुष्कळ वेळां अहे त्याच्या अलट वस्तुस्थिति डोक्यांत घेऊन आपण आजूबाजूच्या लोकांना अन्याय केलेला असतो. जितक्या वेळां आपण केलेला अन्याय आपल्या लक्षांत येतील तितक्या वेळां जर आपण दुसऱ्या माणसाची माफी मागायला गेलो तर

गैरसमज करून घेण्याची आपल्यांत किती शक्ति आहे हे आपल्याला समजून येईल. पावलोपावला माफी मागण्याचे अितके काहीं प्रसंग येतील की आपली आपल्यालाच लाज वाटायला लागेल. तें सोडून दिलें तरी दुसऱ्या मनुष्याला-सुद्धा आपली चंचलवृत्ति बघून कंटाळा येईल. माफी मागितली तर आपली किंमत कमी होईल अशी भीति असते. आणि ही भीति गिळून टाकली तरी माफीची किंमत कमी होईल ही भीति तर खरीच आहे. तेव्हां मग माफीची किंमत कमी न्हावी हे चांगलें की परस्परांविषयी गैरसमज चालूं ठेवावा हे चांगलें? व्यवहारकुशल समाजाला माफीच्या निखालमपणापेक्षां प्रतिष्ठेची स्थिरताच अधिक बरी वाटते. पण यायोगें समाजानें काय मिळविलें आहे ?

जितके गैरसमज आपल्या लक्षांत आले त्यांची ही गोष्ट झाली. पण जेथें आपल्याला असें वाटतें की अमुक गोष्ट निश्चित आहे, त्यांत गैरसमजाला जागाच नाही अशा ठिकाणांसुद्धा काहीं काहीं वेळां घोर गैरसमज असतो. त्याला काय करावे ?

अपाय एकच आहे. तो असा की, कोणाविषयीहि मत पांघण्याची घाभीच करूं नये; दोन हेतूंच जिये विकल्प संभवता तें चांगल्या हेतूचीच कल्पना करावी. मनुष्याचा चांगला परिचय अमूनसुद्धा त्याचें वाह्य स्वरूपच आपल्यापुढें उघडें राहतें, अंतर जाणणें कठीण असतें. कित्येक लोकांना आपलें अंतःकरण उघडें करतांच येत नाही. विचार किंवा कल्पना व्यक्त करण्याची भाषा माणसानें तयार केली आहे. पण हृदय व्यक्त करण्याची भाषा अजून तयार झालेली नाही. त्यामुळ मनुष्य प्रगट करतो अंक आणि लोक समजताना दुसरेच. ही स्थिति सर्वत्र आहे. अवघे आपण लक्षांत ठेवलें तरी पुष्कळ झालें. जे लोक पुष्कळ बोलतात, पुष्कळ गप्पा मारतात, गोष्टी-वेव्हाळ किंवा विनोदाप्रिय म्हणून ओळखले जातात ते आंतून किती दुःखा असतात हे कोणाला समजतच नाही. बहुभाषी मनुष्य पुष्कळ वेळां अंतःकरणाचा ओकाकी असतो हे आपण जाणलें तरी पुष्कळ झालें. न्याय करणारे आपण कोण !

अितका किंचार केला तरीसुद्धा अितर लोकांविषयी कांहीसे तीव्र मत आपल्या मनांत असणारच. त्यावेळीं तोच दोष आपणां स्वतःमध्ये किती आहे हे तपासून पाहतां आलें तर किती बरें चांगलें ! आपण जर स्वतःला स्वतःच्या कितीहि दोषांची क्षमा करूं शकतो तर अितरांच्या आपल्यापुरत्या अखाद्या दोषाकडे आपण दुर्लक्ष करूं शकणार नाही का ?

अितकें करुनहि जर अनुक मनुष्याविषयी आपल्या मनांत सद्भाव उत्पन्न झालाच नाही तर कडवटपणाचे प्रसंग उत्पन्न करण्यापेक्षा त्याच्याबरोबरच्या संबंधाचा संकोच कारणेच योग्य होय. जेथे सद्भाव नाही तेथे सहकार करण्याचा आपल्याला हक्कच नाही. जगांत श्रमविभागाच्या नांवाने जो जगदुव्यापी सहकार चालू आहे त्या योगे श्रेयच झाले आहे असे कांहीं नाही. आपल्या हृदयाचा जितका विकास झाला असेल तितकाच आपण व्याप राखावा हे अुचित. सत्य हे हृदयानेच कळते असे अृषी सांगतात.

मिळून काम करण्यासाठी ' महामनाःस्यात् ' हे न्त आवश्यक आहे.

फेब्रुवारी १९२६

## ध्वजारोपण

चैत्र शु.१

१ समय

ज्योतिःशास्त्राचें वर्ष चैत्रापासून सुरू होतें. शालिवाहन शकाचीसुद्धा चैत्री पाडव्यापासून सुरुवात होते. याच दिवशीं श्रीरामचंद्रांनी दक्षिण भूमीला वालीच्य जुलमांतून सोडविलें होतें अशी समजूत असल्यामुळे या दिवशीं ध्वजा उभारण्यांत येते, कारण हा स्वानंत्र्याचा दिवस आहे. या सणाविषयींच्या पौराणिक कथा विद्यार्थ्यांना समजावून सांगण्याव्यतिरिक्त आणि ध्वजा ( गुढी ) कशासाठी असते हें समजावून देण्याव्यतिरिक्त या दिवशीं विशेष कांहीं करण्याजोगें नाहीं.

या अतूंत लिंबाचा पाला खाण्याची चाल वैद्यकीच्या दृष्टीने चांगली आहे. लिंबाची कोवळी पाने मिरें, िहंग, मीठ, जिरे, यांच्यासह सकाळीं उठून खावयाची हा चैत्री पाडव्याचा विशिष्ट विधि आहे. आपण आपलें कोवळी पाने आणि मीठ अेवढेंच खावें.

या दिवशीं जर आपण पुष्परचना करूं शकलों तर वसंताचा खरा अत्सव होअील आणि पुष्परचना करणें शक्य झालें तर तो अर्ध्या दिवसाचा उत्सव समजला जावा.

तिरंगी राष्ट्रीय झेंड्याचें अभिवादन या दिवशीं ठेवावेंच. त्याच्याबरोबर झेंडागीत आणि राष्ट्रगीत दोन्हीं गावीत.

# रामनवमी

: : ७

( चैत्र शुद्ध ९ )

रामजन्माचा आनंद अपूर्व आहे. रामजन्माच्या अगोदरची स्थिति आदिकवि-  
वाल्मीकीने वर्णन केली आहे. विश्वामित्र जेव्हा धर्मरक्षणार्थ दोन विद्यार्थ्यांची दशरथापुढे  
याचना करतो तेव्हा राजा प्रथम मोहवश होऊन नाही म्हणतो, पण लगेच कर्तव्याची  
जणवि होताच आपल्या प्राणामारख्या प्रिय पुत्रांना ऋषींच्या हवाली करतो.

आतां रामलक्ष्मणांचे रोजचे शिक्षण बंद पडते. राजपुत्रांचे शिक्षण बहुविध असते.  
अनेक विषय त्यांना शिकवावे लागतात. सर्व इंद्रियांचा विकास व्हावा या हेतूने  
कुलपती वसिष्ठाने त्यांना शिक्षण देण्याचा विचार केला होता, पण विश्वामित्रांनी ते  
सारे बदलून टाकले. विश्वामित्र राजपुत्रांना प्रवासाला घेऊन गेले. निकडे त्यांनी  
त्यांची निसर्गाशी ओळख करून दिली. देशाची स्थिति प्रत्यक्ष पाहून रामचंद्र विचारतात:  
' या प्रदेशांत अितक्या नद्या वाहतात आहेत, अितकी नैसर्गिक विपुलता आहे, तरी या  
ठिकाणी लोकवस्ति कां नाही ? आणि जी थोडीशी आहे ती अशी भयंकरस्त कां ? '

विश्वामित्र मग त्यांना त्या प्रदेशाचा अतिहास सांगू लागतात की, अकेकाळी हा  
प्रदेश सुखी होता, समृद्ध होता; पण नंतर प्रजाभक्क अमुरांचे येथे राज्य झाले, त्या-  
मुळे लोकांचा अशी दशा झाली आहे; आणि आपल्या तजेस्वी नेत्रांनी रामलक्ष्मणांकडे  
पाहून ते राजर्षि म्हणतात, ' युवकांनो, हा सगळा त्रास दूर करण्याचा भार  
तुमच्या माथ्यावर आहे ! ' संध्याकाळ झाली म्हणजे विश्वामित्र या राजपुत्रांना रवु-  
कुळाची अज्जल कीर्ति सांगतात; राजा दिलीपाचा दिग्विजय, भगीरथाचे महान तप, हे  
सर्व ते सांगतात. सकाळीं उठून, स्नान करून रामलक्ष्मण जेव्हा वंदन करण्यासाठी  
येतात तेव्हा देशांत सुरू असलेला त्रास दूर करण्याच्या युक्त्याप्रयुक्त्या, अपाय, मंत्र  
आणि अस्त्रे ते त्यांना शिकवितात

हीच यथार्थ स्थिति काव्यमय भाषेन दुसऱ्या एका ठिकाणी वाल्मीकीने वर्णन केली  
आहे. प्रसंग रामजन्मापूर्वीचा आहे. अमुर अनुमत्त झाले आहेत. शर्पणखा आपल्या



तीक्ष्ण नखांनीं साऱ्या देशाच्या ओरवाडने आहे; खर आणि दूषण देशभर अनीतीचा फैलाव करीत आहेत; कुंभकर्ण प्रजेतील मोठ्यामोठ्या वर्गीना तशाचा तसाच खाऊन टाकून आहे. सात्विक बुद्ध्याचा विभीषण रावणाच्या दरबारांत धर्माच्या नांवाने अरण्य-रुदन करीत आहे; त्याच्या उपदेशाचा साम्राज्यमदाने अनुमत्त झालेले राक्षस अपह्रास करीत आहेत; आपल्या भावाशी सहकार करावा कीं असहकार करावा याचा त्याला निर्णय करतां येत नाही; आणि रावण आपल्या राज्यांतील दशविध खात्यांच्या द्वारा अंकमुखी सत्ता चालवून आहे. नैसर्गिक शक्ती विचाऱ्या काय-नवग्रह मुद्धां त्याच्या घरा पाणी भरतात. जगताचा प्रभु अश्वर कीं रावण यात्रिपर्यं हि लोकांत शंका उत्पन्न होत. आपल्या वटांत राहिल्या राहिल्या त्याला देशांतल्या कोनाकोपऱ्यांतले दिसते, रावणापासून गुप्त असें कांहीं मुद्धां राहू शकत नाहीं.

रावणाच्या आभमानाला सीमा राहिलेली नाही. रावण आपल्या मनांत आणि आपल्या दरबारांत मुद्धां उघडपणे असं मांगतो: 'हा अंक शत्रू मी मारला. असेच दुसरेहि मारून. मी सर्वां थेट आहे. मीच मुखोपभोग घेऊन. साऱ्या सिद्धी माझ्या दासी आहेत. माझे वळ सर्वथेट आहे. माझी जात सर्वांहून श्रेष्ठ माझीच संस्कृति सर्वोच्च. जगाचे हिन करण्याचा भार माझ्याच माथ्यावर आहे. मीच दानी आहे. सर्व प्रकारचीं सुखे माझ्यासाठीच आहेत.' अशी गर्वेक्ति करूनच रावणाला संतोष वाटत नाही. सर्वांच्या तोंडूनहि आपले हेच गुणगान तो बंदवितो. सर्वजण त्याचे बंदीजन झाले आहेत. पंडित त्याच्या अच्युतप्रमाणे शास्त्रार्थ करून सांगतात. पुराणवस्तुसंशोधक त्याचे यश अति-ह्रास, भगर्भ अत्यादींनून शोधून काढतात. प्रत्येक गुणी मनुष्य आपली शक्ति या मद्धांच्या चरणीं अर्पण करण्यांतच स्वतःला धन्य समजण्याजितका पामर होऊन गेला आहे !

अशा स्थितीत दीनहीन झालेली पृथ्वी विधात्याकडे जाते आणि म्हणते: 'प्रभो, आतां हा भार असह्य झाला आहे. मानवाची मांगल्यावरील शरद्धा उडून गेली आहे. तपस्या सोडून लेक सुरापान करूं लागले आहेत. लंकेचा साम्राज्यदेवी रोज असंख्य प्राण्यांचा बळी घेत आहे. दारूच्या कोठ्याच्या कोठ्या रोज रित्या होत आहेत. देवांचे सर्व व्यवहार बंद पडले आहेत. ही स्थिति कुठवर चालायची ?' विधाता म्हणतो 'हे पृथ्वी ! तू शरद्धा सोडू नकोस. चराचरांत व्यापून राहिलेल्या अश्वरतत्त्वाला शरण गेल्यानें सर्व दुःखांचे निवारण होतें. राक्षस

आणि मनुष्ये ज्यांना जंगली-वानर म्हणतात, अडाणी म्हणतात, राक्षसी संस्कृतीचा ज्यांना स्पर्श झालेला नाही, जे मनुष्य आहेत की नाहीत अशा शेकेंने 'वा-नर' म्हटले जात आहेत अशा भेड्या लोकांत ही औश्वरी शक्ति प्रगट होईल. त्यांच्या हातींच या रावणाचा पराभव होईल. आर्यावर्तातील माना पर्वतावर बसून जी तपश्चर्या करीत आहेत ती अवश्य सफल होईल आणि वज्रकाय, वज्रकौपीन बालकें देशांत उत्पन्न होतील, धर्माची पुनः जागृति होईल आणि परमात्मा स्वतः अवतार घेईल. ' परमात्म्याचा अवतार झाला हे कसे समजायचें अशी पृथ्वीला ङका उत्पन्न होते तेव्हां विधाता सांगतो: ' देशांत ज्यावेळीं ब्रह्मचारी उत्पन्न होतील, गृहस्थ जेव्हां ऐकपत्नीव्रताचें पालन करताल, विद्यार्थी जेव्हां धर्मरक्पक गुरुंच्या आश्रित राहतील, आर्त्तावाप आपला मोह सोडून देऊन आपल्या मुलांना जेव्हां मख (यज्ञ) - वषणार्थ स्वाधीन करतील, जेव्हां भाऊभाऊ अपूर्व प्रेमाने परस्पराशी संबंध होतात, रजेव्हां शुच कुळांतील लोक पतित स्त्रियांचाहि अर्थधार करताल, जेव्हां राजपुत्र मिलल आणि गृहक यांसारख्या लोकांशी समानभावानें भेरी करताल, जेव्हां ब्राह्मण आपल्या अभिमानाची अट सोडून देतील, जेव्हां ब्रह्मचर्याचें तेज सत्याची आणि धर्माची सेवा अंगीकरील आणि जेव्हां प्रजेमध्ये श्रद्धा जागृत होईल, जेव्हां शुच कुळांतील तरुण शहरी जीवनाचा विलास सोडून खेड्यापाड्यांतून आणि रानावनांतून फिरतील, तेव्हां औश्वराचा अवतार झाला आहे असे समजावें. ' पृथ्वीला संतोष झाला, तिला आश्वासन मिळालें आणि ती स्वस्थानां शांत झाली.

दशरथानें तपश्चर्या आरंभून धर्माचा अग्नि चेतविला. यज्ञपुरुषानें पायसरूपी चैननय दिलें. जग वाट पाहूं लागलें. सारे संयोग अनुकूल होऊ लागले. ग्रह आणि उपग्रह ऐकमेकांला अनुकूल झाले. पापाची घटका भरली, पुण्याचा अदय झाला. आणि रामजन्म झाला.

त्या दिवशीं प्रजेनें उत्सव केला. अजून कांहीं रावणराज्य नष्ट झालें नव्हतें. अजून नाटकेचा वध झाला नव्हता. अजून कांचनमृग मारीचाची माया अडबड झाली नव्हती. तरीहि लोकांनीं उत्सव केला, कारण रामजन्म होऊन चुकला होता. खेळाचा खेडनाला जसें आकाशांतील मेघांत सोळा आणे पीक दिसून यावें, तसें लोकांनीं मेघश्याम रामचंद्रामध्ये स्वातंत्र्य पाहिलें, धर्मराज्य पाहिलें, मुक्ति पाहिली. त्या दिवसापासून आनापर्थेन लोकांनीं चैत्र शुक्ल नवमीला उत्सव केला आहे, कारण त्या दिवशीं माणसांमध्ये सत्यावर, ब्रह्मचर्यावर, धर्मावर श्रद्धा जागृत झाली.

# रामनवमी

शुद्ध ९

१ दिवस

रामनवमी आणि गोकुळाष्टमी हे दोन्ही सण भक्तीचेच सण आहेत. राम-कृष्णांच्या अुपासनेने हिंदुधर्म जितका रंगला आहे तितका दुसऱ्या कशानेहि रंगलेला नाही. म्हणून रामनवमीचा आपल्याला जास्तीत जास्त अुपयोग करून घेतां आला पाहिजे. रामनवमीच्या दिवशां अुपवास करण्याची चाल सुंदर आहे. लहान मुलांनासुद्धां शक्य तर बारा वाजेपर्यंत कांहीं खाअूं नये.

हृदयांत आणि समाजांत कशा कशा प्रकारचे राक्षस मातलेले आहेत ते शोधण्यांत सकाळचा वेळ घालवितां आला तर चांगलें. दहा वाजतां मुक्ताकोपनिषदांतून चांगले चांगले अुतारे विद्यार्थ्यांना वाचून दाखवावेन; सर्व मंडळींना अेकर जमा होअून रामजन्माची कथा वरोवर बारा वाजतां संपेल अशा रीतीने अेकावी. त्यानंतर भजन-कीर्तन. दुपारीं गायनाचा कार्यक्रम ठेवून त्यानंतर रामचरित्राच्या वेगळ्या वेगळ्या प्रसंगांचें विवेचन करावें. रामराज्याविषयांचा आपले कल्पना अनेक रीतीना विस्तारून त्याचा चर्चा करावी. मनुष्यजातेला आदर्श राजा कसा असावा याचें जें अुदाहरण श्रीरामचंद्रांना घालून दिलें त्याचें रहस्य समजावून द्यावें. रामनवमीच्या सणाबरोबर आपला राष्ट्रीय ग्रंथ रामायण याचें अध्ययन नव्या नव्या पद्धतीनें हे दिल असें केलें पाहिजे. पञ्चतन्त्रा ( लोकशाही ) ची कल्पना या दिवशां गांवागांवीं स्पष्ट केली जावी.

रामनवमीच्या दिवशां सर्वांना मिळून सकाळीं अेकर स्नानाला जावे, तऱ्हेतऱ्हेचीं फुलें गोळा करावीं, रामचंद्रांची पूजा करावी, पूजेच्या खोलींत रांगाळ्या काढाव्या, अुदवत्ती, घूप, चंन्न अित्यादांच्या मुगंधानें पूजेची खोली पवित्र करावी, आणि लहानमोठ्या सर्वांना आनंदी ठेवून हा दिवस प्रसन्नतेत घालवावा. या दिवशां सीतासतीच्या चरित्रावर काव्ये रचावी आणि स्वराज्यप्राप्त्यर्थे जीवन अर्पण केल्याची प्रतिज्ञा करावी.

# महावीर जयंती

: : ८

( चैत्र शु. १३ )

## १ महावीर स्वामी

हिंदुधर्मे आणि त्यांनील समजुनी अतः स्या कांही जुन्या होअन गेल्या हांत्या कीं, कांही संस्कार केल्यावांचून लोकांना त्यांतून आश्वामन मिळेल अशें त्यांच्यांत कांही राहिलें नव्हतें. असा संस्कार करणारा अक महापुरुष गौतममुन्य होअन गेला. पण संस्कार करणारे असे ते अकटेव नव्हते. त्यांच्या काळा अशा पांचमहा संस्कारकांची नांवे मिळनात. त्यांत गौतमबुद्धाअतिकांच परिमंड्य पावलेले वर्धमान महावीर हेच होत. वर्धमान महावीर हे जैन धर्माचे संस्थापक म्हणले जातात.

तसें म्हणलें तर जैनमत पुष्कळच प्रचलित आहे. भगवान् उपमंदेवापासून त्या धर्माचे २४ तीर्थंकर होअन गेले. वर्धमान महावीर हे शेवटचे तीर्थंकर होत. गौतमबुद्धाप्रमाणें महावीरमुखां विहार प्रांतांतच जन्माला आल होत. वैशाली नगरीजवळच्या अका लहानशा गांवांत ज्ञातु नांवाच्या कुळांत वर्धमानांचा जन्म झाला होता. त्यांची आजी ही लिच्छवी राजा कटक याची वहीण होती. लहानपणापासूनच त्यांच्या मनांत वैराग्य उत्पन्न झालें, पण वर्धमान हे अकनिष्ठ मातृपितृभक्त असल्यामुळें वृद्धांना संतुष्ट ठेवण्यासाठी यशोदा नांवाच्या अका राजपुत्राबरोबर विवाह करून ते पुढसंसार चालू लागले. त्यांना प्रियदर्शना नांवाची अक कन्याहो झाली होती. तिसाच्या वर्षा मातापिता विदेह झाले आणि वर्धमान हे गृहमंमारांतून सुटले. त्यांनी घोर तप आरंभिलें आणि पार्श्वनाथाच्या पंथांत शिरून शक्ति मिळविली.

महावीरांमध्ये अहिंसाधर्माचा अगमामन्य उत्कर्ष झालेला आपल्याला दिसून येतो. जवळजवळ चागीस वर्षांच्या वयापासून त्यांनी उपदेश करायला मुखान केली आणि हें काम वतीस वर्षेपर्यंत केलें. बुद्ध भगवान् मध्यम मार्गाचा उपदेश करीत होतें तर महावीर विषयमुखाचा आत्यंतिक त्याग पसंत करीत होत. तपश्चर्या करून अिद्रियनिग्रह करण्याची जुनी परंपरा महावीरानें चालविली, आणि ~~देवदेव~~ महत्त्व

वाडवेलें. हिंदुस्थानांत बौद्ध संप्रदाय अनेककाळीं पुष्कळ पसरला होता, पण आज तो नष्टप्राय झाला आहे. जैनधर्महि. बौद्ध धर्माभिनकाच पसरलेला दिसतो, पण बौद्ध-धर्माप्रमाणें त्याचा नाश झाला नाही. अज बंगालकडे, गुजराथमध्ये आणि दुसऱ्या अनेक ठिकाणीं जैन लोकांची वस्ती पुष्कळ प्रमाणांत आहे.

बौद्ध धर्माप्रमाणें जैनधर्माचा प्रचार करण्याकरितां अखाद्या समर्थ राजाकडून (गुजराथमधील राजा कुमारपाळ सोडून) किंवा अंतर रीतींनीं प्रयत्न झालेला नाही.

अहिंसाधर्माचा विचार करतां करतां मूळस जीव कुठें कुठें असतात याचा जैन लोकांनीं चांगला शोध केला आहे. वनस्पतींत किती जीव असतो, हवेंत आणि पाण्यांत जीव कशा प्रकारें राहतात वगैरे बाबींचें त्यांनीं अक मोठें शास्त्र रचलें आहे. जैन पंडितांनीं साहित्याची पुष्कळ सेवा केली आहे. संस्कृतांत अनेक शास्त्रांवर जैन लोकांनीं लिहिलेले ग्रंथ आहेत. जैन लोकसुद्धां मूर्तिपूजक असल्यामुळें त्यांनीं स्थापत्यकलेन आणि शिल्पकलेन चांगलीच अुन्नति केली आहे. गुजरातेंत जैन लोकांनीं बांधलेलीं कित्येक देवळें हिंदुस्थानांत अनामान्य समजलीं जातात. आबू-देल्वाडा येथील जैनमंदिरांची कारागिरी पाहून सर्व देशांतील प्रवासी आश्चर्यचकित होतात. कठीण दगडांत मेणाची किंवा फुलांची कोमलता आणण्याची शक्ति हिंदुस्थानांतील कारागिरांत आहे हें या जैनमंदिरांवरून सिद्ध होतें.

जैनांत श्वेतांवर आणि दिशांवर असे भेद पडलेले आहेत. महावीरांनीं केवलय-प्राप्तीनंतर वस्त्राचाही त्याग केला होता, म्हणून त्यांची पूजा वस्त्रानिशी करावी कीं वस्त्रविरहित करावी या मतभेदांमुळें दोन पंथ उत्पन्न झाले आणि आतां तर त्यांच्यांत पूजाविधि आणि कलेवा आदर्श यांचाहि भेद पडला आहे.

जैनधर्माचे पहिले तीर्थंकर अृषभदेव यांचा उल्लेख श्रीमद्भागवतांत आला आहे. त्यांत त्यांच्या त्याग—वैराग्याचें आदरपूर्वक वर्णन केलेलें आहे. हिंदू समाजाला संस्कारी वनविण्याच्या कामीं अृषभदेवांचा हिस्सा मोठा होता असें दिसतें. लग्न-व्यवस्था, पाकशास्त्र, गणित, लेखन अित्यादि संस्कृतीचीं मूळ बीजे अृषभदेवांची समाजांत टाकलीं असें म्हणतात. हें सर्व करून शेवटीं या सर्वांचा त्याग करून अृषभदेवांनीं प्रवृत्ति आणि निवृत्ति हे दोन्ही मार्ग लोकांना आचरून दाखविले असें म्हटलें तरी चालेल.

अृषभदेवानंतर आणि महावीरांच्या अगोदर दुसरे बावीस तीर्थंकर झाले. त्यांतील शेवटचे जे पार्श्वनाथ त्यांच्या पंधाची छाप महावीरावर पुष्कळ पडली. महावीरांनी आपल्या अनुभवाने पार्श्वनाथांच्या उपदेशांत भर घातली आणि संयमधर्म अधिक स्पष्ट व संपूर्ण केला. सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आणि अस्तेयरूपी यमाला संपूर्ण वन-विण्यामार्ग त्यांनी अपरिग्रहाचे व्रत त्यांत अधिक घातले. पार्श्वनाथांच्या मताप्रमाणे पापाची कवूली देण्याचा विधि व्यक्तीच्या मर्जीवर सोंपविलेला होता. महावीरांनी तो आवश्यक केला.

महावीरस्वामी हे शेवटचे तीर्थंकर समजले जातात. तीर्थंकर म्हणजे स्वतः तरून दुसऱ्या असंख्य जीवांना भवसागरांतून तारणारा. तीर्थ म्हणजे मार्ग. सच्छास्त्ररूपी मार्ग वांधून देणारा तो तीर्थंकर.

बौद्धधर्मात जशी बोधिसत्त्वाची कल्पना आहे तशी जैन धर्मात तीर्थंकराची कल्पना आहे. बौद्धधर्माने जैन धर्माची आणि बौद्धधर्माची नकल करून तशीच अवताराची कल्पना उभी केली आहे असे कित्येकांचे मत आहे. विष्णूचे दहा अवतार मानले जातात. दुसऱ्या हिशेबाप्रमाणे चौवीस अवतार समजतात. दहा अवतारांत बुद्धावतार मानला आहे आणि चौवीस अवतारांत अृषभदेव आहेत हे लक्षांत ठेवण्या-मारखे आहे.

गौतमबुद्धाच्या तपश्चर्येप्रमाणे महावीराची तपश्चर्यासुद्धा अतिशय उग्र होती. नितिवेषेची त्यांनी कमाल करून दाखविली. लाट देशांत\* वीरंप्रभूला पुष्कळ उपसर्ग सहन करावा लागला. प्रवास करीत असनांना कुत्री येऊन त्यांच्या अंगावर पडत आणि त्यांना चावीत तेव्हां तेथील लोक कुत्र्यांना हुसकून लावीत नसत, अिनकेंच नव्हे तर भगवानांना ते मारीत आणि कुत्र्यांना लूः करून त्यांच्या अंगावर मोडीत. पण महावीरांनी ते सर्व सहन केले आणि विजय मिळविला. आज त्याच देशांत त्यांची आदरपूर्वक पूजा होत आहे.

पापाची जबाबदारी फक्त पाप न केल्याने संपत नाही; पाप करायचे नाही, करवायचे नाही आणि त्याला अनुमोदनही द्यायचे नाही, म्हणजेच पापांतून मुक्ति

\* भडोचच्या आसपामच्या प्रदेशाचे प्राचीन नांव.

मिळते, असा उपदेश महावीर स्वामींनी केला आहे. महावीर स्वामींनी पापाशीं संपूर्ण असहकार उपदेशिला आहे.

जैन तत्त्वज्ञान आणि जैनविधी यांत अेकच वस्तु सर्वत्र दिसून येते आणि ती ही की, माणसाला संयमी बनवून त्याला आत्मप्राप्तीकडे नेणे. जैन परिभाषेन वाह्य प्रवृत्तीला 'आस्व' म्हणतात. या आस्वचांतून परावृत्त होऊन आत्माभिमुख होणे याचें नांव 'संवर.'

जैनधर्मात आणि योगदर्शनांत पुष्कळ साम्य आहे. अहिंसा, मनुत, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आणि अपरिग्रह हीं पंचमहाव्रते; मैत्री, करुणा, मुदिता आणि उपेक्षा या चार भावना; धर्माचें दशाविध लक्षण; अित्यादि गोष्टी वैदिक, बौद्ध आणि जैनधर्मांत समानच आहेत. यात्रा आणि व्रते यांचें माहात्म्य तीन्हीं सारखेंच आहे. भेद फक्त परिभाषेचा आहे.

जैनधर्मात दिगंबर आणि श्वेतांबर या पंथांमध्यतिरिक्त स्थानकवामी नांवाचा नवीन अेक पंथ निघाला आहे. या पंथांत मूर्तिपूजा नाही.

जैनधर्मात पुराणेंहि पुष्कळ आहेत. त्यांतील कित्येक कथा वैदिक पुराणांतील कथांशी कांहीं अंशांनीं जुळत्या आहेत. जैनपुराणें, शाक्य पुराणें आणि वैदिक पुराणें यांचा तुलना केल्यानें पुराणात ऐतिहासिक भाग किती असावा आणि त्याचें स्वरूप कसे असावे याविषयी अटकळ करतां येव्हाजोगी आहे. या दृष्टीनें जुन्यां साहित्याचा अजून पुरता उपयोग केला गेलेला नाही.

बौद्ध आणि जैनधर्मांत वाटेत त्या माणसाना प्रवेश होवूं शकतो आणि वाटेत त्या जानीचा मनुष्य भिक्खु किंवा वानि होवूं शकतो. जैन आणि बौद्ध या धर्मांत जातिभेदाविषयी अुदासीनता आहे, कदाचित् विरोधहि असेल. मग जातिभेदातील घाण जी अस्पृश्यता तिला जैनधर्मांत स्थान केंटून असणार !

## २. विश्वधर्म ( स्फुट विचार )

‘ महावीर ’ हें नांव श्रीविष्णूला लावण्यांत आलें आहे. त्याचें वाहन गरुड त्यालाहि महावीर म्हणतात. श्रीरामचंद्रांनामुद्ग्रां महावीर म्हणतात. श्रीरामचंद्रांचा एकनिष्ठ सेवक हनुमान हाहि महावीर म्हटला जातो. आज आपण श्रीपार्श्वनाथांचे अनुगामी वर्धमान यांना महावीर म्हणून ओळखीन असतो.

‘ महावीर ’ या शब्दानें काय अर्थबोध होतो ? सर्वेतर व्यापून, आमुरी शक्तीचा पराजय करून विश्वाचें पालन करता तो विष्णु महावीर आहे. अमृत मिळविण्याची शक्ति ज्याच्यान आहे असा शक्तिसंपन्न मातृभक्त गरुड हा महावीर. पित्याचें वचन पाळण्याकरितां, प्रजेचें हित करण्याकरितां आणि धर्मेनप्रेचा आदर्श स्थापण्याकरितां राज्य, मुख आणि पत्नी यांचा त्याग करणारे श्रीरामचंद्र हे महावीर. कांहींहि मोबदल्याची अिच्छा न धरतां सेवा करणारा आणि शक्तीचा उपयोग शिवाच्या सेवेतच करणारा ब्रह्मचारी सेवानंद हनुमान हा महावीर. मातृभक्ति, सुखोपभोगाचा त्याग, भूतमात्राविषयी अपार दया आणि अिंद्रियजयाचा शुत्कर्ष दाखविणारे ज्ञानुत्तर वर्धमान हेहि महावीर. आर्थजातेनें सर्वांच्व सद्गुणांची जी मनामय मूर्ति कल्पिलेली आहे, जो आदर्श बनविला आहे त्या आदर्शाला पोचणारी व्यक्ति म्हणजे महावीर. विजय मिळवितो तो वीर. अंतर्वाञ्छा जगावर विजय मिळविता तो महावीर. वीर म्हणजे आर्य, महावीर म्हणजे अर्हत्.

×

×

×

×

हिंदुधर्म हा राष्ट्रीय धर्म आहे, अंका महान् राष्ट्राचा तो धर्म असल्यामुळे त्याला महाराष्ट्रीय धर्महि म्हणतां येईल. पण हिंदुधर्माची तत्त्वे सार्वभौम आहेत, विश्वधर्माची आहेत, त्याचा प्रसार सर्वेतर होण्याजोगा आहे. हिंदुधर्मांन मनुष्यजातीचा जीवनधर्म शोधून काढला आहे. काय केलें असतां मानव समाज शांतीनें राहू शकेल, शुत्कर्ष पावेल, परमतत्त्वाला ओळखू शकेल, हें हिंदुधर्मांन केव्हांच नक्की करून टाकलें आहे. ‘ स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् । ’ ( जोडा स्वल्पहि हा धर्म तारी मोठ्या भयानुनी, ) ‘ न हि कल्याणकृत्कथिदुर्गतिं तात गच्छति ’



( कल्याणकारी कोणीहि दुर्गतीस न जातसे, ) ' धर्मो रक्षति रक्षितः । ' ( धर्माचें रक्षण करणाऱ्याचें धर्म रक्षण करतो ) अशी श्रद्धा किंवा अनुभव या धर्मानें नोंद करून ठेवला आहे. तरी हिंदुधर्म हा प्रचारपरायण ( मिशनरी ) धर्म नाही. आपल्या धर्माचा जगांत प्रसार करावा असा हिंदुधर्माचा आग्रह नाही. हिंदु हा आपला धर्म स्वतःच्या आचरणांत अंतरविण्याचाच प्रयत्न करीत असतो. त्यांत त्याला सफलता मिळाली तर त्याचा प्रभाव शेजाऱ्यावर पडणारच. प्रभाव पाडण्यासाठीं मुद्दाम प्रयत्न करणें यांत अतावीळपणा आणि घाओ आहे, म्हणजेच जीवनाचा कच्चेपणा आहे, असें समजून हिंदु हा अधिक प्रयत्नपूर्वक आत्मशुद्धीच करीत राहील.

सामाजिक हिंदुधर्म म्हणजे हीं सनातन तत्त्वे आपल्या विशिष्ट समाजाला अनुकूल करण्याचा प्रयत्न. दुसऱ्या समाजाला हींच तत्त्वे वेगळ्या रीतीनें आपल्या जीवनांत आणतां येतील. हिंदुधर्माचीं हीं सनातन तत्त्वे समाजांत दाखल करण्याचे अनेक प्रयोग या देशांत झाले आहेत. रूढ सनातन धर्म या देशाच्या बाहेर बिलकुळ पगारलेला नाही. पसरावैण्याचे प्रयत्न कधीकाळीं झाले आहेत कीं नाहीं तें आपल्याला माहीत नाही. हा रूढ सनातनधर्म या देशांतूनच नष्ट करण्याचे प्रयत्न झाले आहेत, हे प्रयत्न निष्फळ झाले आहेत अेवढें आपण जाणतो. पण रूढ सनातन पद्धति सोडून दुसऱ्या पद्धतीनें झालेले प्रयोग जगभर चांगलेच प्रसृत झाले आहेत. बौद्धधर्म हा याला पुरावा आहे, बौद्धधर्म हाच अगदीं पहिला मिशनरी धर्म दिसून येतो. याच्या अगोदर मिशनरी कार्य झाले असलें तर त्याची आपल्याला नक्की माहिती नाही. वर्ण-व्यवस्थायुक्त जीवनधर्म प्रचारक होऊंच शकणार नाही असेंहि वाटतें. ( ' जीवनधर्म ' म्हणजे केवळ मनानें मानण्यासाठीं रचलेला धर्म नव्हे तर जगण्यासाठीं तयार केलेला धर्म. )

बौद्ध आणि जैन धर्मांत पुष्कळ भेद आहे, तरी दोहोंत साम्यहि कांहीं कमी नाही. दोन्हीहि मिशनरी धर्म होण्याला लायक आहेत. दोन्ही विश्वधर्म आहेत. स्याद्वादरूपी बौद्धिक अहिंसा, जीवदयारूपी नैतिक अहिंसा, आणि तपस्यारूपी आत्मिक अहिंसा ( भोग म्हणजे आत्महत्या-आत्म्याची हिंसा; तप म्हणजे आत्म्याचें रक्षण-आत्म्याची अहिंसा. ) जो धारण करूं शकतो त्यालाच विश्वधर्मी होनां येईल, तोच अकुतोभय असा विचारूं शकेल. ' यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजतेच यः । ' ( जो न लोकांस कंटाळे ज्यास कंटाळती न ते ) हें वर्णन त्यालाच लागूं पडण्याजोगें आहे.

ही प्रस्थानत्रयी बरोबर बाळगल्यानें सगळ्या जगाची यात्रा होण्यासारखी आहे. आत्म्याच्या शोधांत हेंच पाथेय उपयोगी पडण्याजोगें आहे.

×                      ×                      ×                      ×

मिशनरी धर्मानें तत्त्वाच्या बाबतींत अंकनिष्ठ राहावें पण आपल्या रूपाविषयी आग्रह ठेवूं नये. ' देश तसा वेष ' हा नियम धर्मांलाहि-विशेषकरून विश्वधर्मांला- लागू करतां येण्याजोगा आहे. विश्वधर्म खरोखर विश्वधर्म असेल तर तो आपल्या नांवाचाहि आग्रह ठेवणार नाही. बौद्धधर्माचीं कितीतरी रूपे झालेली आहेत.

×                      ×                      ×                      ×

विश्वधर्म एकच असावा असें मानण्याचें कारण नाही. अखाद्या खोलींत ठेवलेले चारपांच दिवे जसा औपापला प्रकाश खोलींत सर्वत्र पसरून टाकतात, संबंध खोलीचें राज्य उपभोगतात, आणि तरीमुद्दां स्वतःचें व्यक्तित्व ठेवूं शकतात, तसे अनेक विश्वधर्म ऐकाच वेळीं सगळ्या जगाचें राज्य उपभोगूं शकतील. धर्मांत द्वेष वा मत्सर कोठून असणार ? ऐका म्यानांत दोन तरवारी राहाणार नाहीत, एका दरवारांत दोन मुत्सद्दी कारभार करणार नाहीत, पण जगांत एकाचवेळीं वाटेले तिनके धर्म मात्र साम्राज्य चालवूं शकतील, कारण धर्म हा अहिंसकच असणार. धर्म म्हणजेच अद्रोह. जेथे धर्माधर्मांमध्ये झगडे चालतात आणि संघ्यावळाची अतुल्यता दिसून येते तेथे धार्मिकता राहिलेली नाही, धर्माच्या नांवाने अधर्म शिरजारा दाखवीत आहे, धर्माचे वीर्य क्पीण झाले आहे असें समजावें. अशा स्थितींतून जगाचा उद्धार धर्मवीर असेल, महावीर असेल, तोच करूं शकेल.

अहिंसेचें संपूर्ण स्वरूप आपण समजून घेतलें पाहिजे. अहिंसा हा महावीराचा धर्म आहे, सगळ्या जगताला जिंकण्याची आकांक्षा बाळगणाऱ्या जिनेश्वराचा तो धर्म आहे. जगाच्या अखाद्या कोपऱ्यांतहि जोंवर हिंसा वास्तव्य करीत असेल तोवर हा अहिंसाधर्म पराजितच आहे. कृत्तिमरीत्या भरणपोषण देऊन सूक्ष्म जंतूंना जगत्रिणें अंत्यज्ञाने अहिंसाधर्माला संतोष हेऊं नये. महावीराप्रमाणें सान्या जगाचें दुःख-पांचो खंडांचें दुःख-महावीरानें पाहिलें पाहिजे, आणि आपल्याजवळचें सनातन औषध त्या त्या ठिकाणीं पोचतें केलें पाहिजे. महावीराच्या अनुयायांनीं हृदयाची विशालता आणि अतुसाहाचें शौर्य अंगीं बाणवून घेऊन सर्वत्र विचरलें पाहिजे. संग्रामांतील वार शस्त्रास्तरे घेऊन धांवेल. अहिंसेचा वीर आत्मशुद्धि आणि करुणा यांनीं सज्ज होऊन धांवेल.

सान्या जगाचा ' अपासरा ' ( जैन सांधूचा मठ ) बनविला गेला पाहिजे. लहानशा अपासऱ्याचा कितीजणांना आश्रय मिळणार ?

२७-४-२४

## महावीर जयंती

चैत्र शु. १३

१ दिवस

या दिवशीं अषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर, नेमीनाथ वगैरे तीर्थकरांची माहिती द्यावी, आणि मनुष्येतर प्राणीसुद्धां मानवजातीचे लहान लहान भाऊ आहेत, त्यांना दुःख देऊ नये, त्यांचेहि भले अिच्छावे आणि भले करावे, कारण आपण त्यांचे पुढारी आहोंत, अित्यादि विद्यार्थ्यांना समजावून द्यावे. दुसऱ्याला कमीतकमी पीडा देऊन जें जीवन जगतां येईल तेंच अुत्तम, ही गोष्ट त्यांच्या मनावर ठसवावी. अहिंसा हेंच अमृत आहे, अपरिग्रह हीच श्रीमंती आहे, हा या दिवसाचा विशिष्ट बोध आहे.

# लोकांचा हनुमान

: : ९

( चैत्र शु. १५ )

हिंदुधर्माची अशी कांहीं खुबी आहे की, त्यांतील चित्तें लहानमोठ्या, शिषित-  
आशिक्षित, उच्च अभिरूपांच्या तशाच भोळ्याभावल्या सर्वच लोकांना प्रिय व्हावी  
अशी रेखाटलेली असताना.

माणसांना माणसांविषयी जसा राग-द्वेष असतो तसा मनुष्येतरांविषयी नसतो.  
पशुपक्ष्यांच्या बाबतीत आपला समभाव स्वाभाविक असतो. त्यांच्यामंवेधी एकतर  
कौतुकभाव असतो, दयाभाव असतो किंवा अपेक्षा असते. पण इर्ष्या, मत्सर, द्वेष  
असे मिश्र आणि हीन भाव मुळींच असत नाहीत. म्हणून पुराणकारांनी कित्येक  
आदर्शांचीं चित्ते पशु-पक्ष्यांच्या रूपाने रेखाटली आहेत. आदर्श ब्रह्मचारी, आदर्श  
सचिव, आदर्श भक्त-सेवक, आणि निष्काम समाजहितकर्ता अशा हनुमानाचे चित्र  
इतके भव्य आहे कीं मनुष्यकोटींत ते वास्तविक वाटणार नाही म्हणून वाल्मीकीने  
त्याला वानराचें रूप दिलें. ' वा-नर ' म्हणजे खालच्या प्रतीचा नर. पण हनुमाना-  
च्या बाबतींत मात्र तो नरश्रेष्ठांतहि श्रेष्ठ आहे, ' बुद्धिमतां वरिष्ठ ' आहे.

वाल्मीकीने याच गुणांचा उत्कर्ष मनुष्यांत दाखविण्यासाठी लक्ष्मण रेखाटला  
चौदा वर्षेपयें त्याने कंदमूलफलाहर करून ब्रह्मचर्य पाळलें. राम-सीनेची सेवा त्यानें  
अनन्यनिष्ठेने केली, पण तो पडला माणूस. त्याला मीतेचा टपका सहन करावा लागला.

भरतहि असाच आदर्श राजसेवक, राजभक्त. भरतापेक्षां श्रेष्ठ असा व्हाईसरॉय  
( राज-प्रतिनिधि ) कोणी पाहिला नाही. पण तोहि माणूसच पडला. म्हणूनच कैकेयीने  
त्याच्याविषयीं हलकी कल्पना बांधून दशरथाकडून त्याच्यामाठीं राज्य मागून  
घेतलें. तो मनुष्य होता म्हणूनच कैकेयी त्याचा असा अपमान करूं शकली. हें  
सोडून दिलें तरी आदर्श बंधु लक्ष्मणसुद्धां अंक वेळ-अंकच वेळ कां होधीना-भरत-  
विषयीं साशंक झाला. माणसामागसांत आतां याहून श्रेष्ठ संबंध कोटून आणावा ?

अशा रीतीने हार पावल्यानंतर मनुष्याची माती टाकून देऊन वाल्मीकीने वानरा-  
ची माती हातांत घेतली आणि त्यांतून हनुमान बनविला आणि येथे मात्र तो  
यशस्वी झाला.

## २

वाल्मीकीने हनुमानाला वानर बनविले आणि बहुजनसमाजाच्या स्वभावांत असलेली  
वानरवृत्ति त्याने जागृत केली. हनुमान वानर आहे ही गोष्ट पकडून धरून लोकांनी  
वाल्मीकिरामायणांत नसलेल्या अशा कित्येक गोष्टी त्यावर रचल्या आहेत. वाल्मीकि-  
रामायण, अध्यात्मरामायण, आनंदरामायण, अद्भुतरामायण, सीतारामायण, तुलसी-  
रामायण, कृतिवासरामायण, कंबनरामायण, मंतररामायण, 'परंतु' रामायण, दामरामायण,  
अशीं अगणित रामायणे आहेत. प्रत्येकांतील हनुमान वेगळा आहे. जशी कर्त्याची भूमिका  
तसा त्यांतला हनुमान. लोकांना चाळे आवडतात. मुलांना कृतींत तर मोठ्या  
माणसांना स्मरणांत कां होईना, पण चाळे हे पाहिजेतच. आणि म्हणूनच लोकांनी  
हनुमानाच्या नव्या नव्या आवृत्त्या काढल्या आहेत. अशा रीतीने हनुमान लोकमान्य  
झाला. पण त्यासाठी त्याला कष्टहि पुष्कळ सहन करावे लागले आहेत. कुठे आपला  
राजा वचनदुर्वळ झालेला पाहून त्याची खरडपट्टी काढणारा तो सचिव हनुमान आणि  
कुठे रावणाच्या नाकांत आपल्या शेंपटीचे बारीक टोंक घालून त्याला शिंक आणून  
मुकुट खाली पाडणारा मर्कट हनुमान. प्रजारंजक राजाला लोकांचे पुष्कळ सहन  
करावे लागते, प्रजासेवक लोकनायकाला प्रजेच्या भक्तीखाली सांपडून दुर्दशा करून  
ध्यावी लागते; लोकमानसांत महात्म्यांच्या जशा चित्रवित् चित्रं आवृत्त्या तयार होतात,  
त्याचप्रमाणे राष्ट्रीय वा धार्मिक ग्रंथांना-प्रजेच्या आदर्शनाहि-लोकमुलभ विकृतींनी  
हैराण न्हावे लागते.

पण यांतच त्यांची उपयोगिता सांडविलेली आहे. यांतच त्यांची सार्वभौम लोक-  
मान्यता भरलेली आहे. यांतच आदर्शांचे चिरंजीवित्व राहिले आहे.

## ३

हनुमान स्वतःला रामसेवक मानीत होता. रामाने कधीकाळी स्वतःला हनुमान-  
स्वामी मानले आहे ? रामाच्या हृदयांत हनुमानाविषयी काय भाव वास करीत  
असेल बरे ? पुढारीपणाचा ? पितृवात्सल्याचा ? बंधुप्रेमाचा ? की कृतज्ञताबुद्धीचा ?

नारदांना एकवेळ ही शंका उत्पन्न झाली. नारद उठले आणि निघाले रामालाच विचारायला. नारद स्वतःच पडले जगाचे बातमीदार, तेव्हा दुसऱ्याकडून मिळालेल्या बातम्या त्यांच्या काय कामाच्या ? प्रत्यक्षच मुलाखत घ्यावी याहून उत्तम ते काय ? पण बिचाऱ्याला त्याच दिवशी कटु अनुभव आला. द्वारपाळ कांही आंत जाऊ देईना. तो म्हणाला की “ महाराज रामचंद्र पूजेला बसले आहेत. यावेळी आंत जातां येणार नाही. पूजा संपू द्या मग खुशाल आंत जा. ” आश्चर्यचकित झालेले नारद मुनि मनांत विचार करू लागले—राम म्हणजे प्रत्यक्ष परमेश्वर, तैलोक्याचे स्वामी, ब्रह्मदेव चारी वेद गाऊन थकला तरी रामरहस्य त्याला समजले नाही, योगीराज शंकर हला-हल प्याला तेव्हा रामनामानेच त्याला शांति मिळाली. असे हे भूतनाथ आणि शरण्य. श्रीरामचंद्र, हे आणखी कोणाची बरे पूजा करीत असावेत ? नारदांना अपमानापेक्षां कुतूहल अधिक असल्या झाले. एक एक पळ म्हणजे त्यांना युगासमान लांब वाटू लागले. शेवटी एकदांची परवानगी मिळाली. आंन जाऊन पाहातात तो काय ! कितीतरी सुंदर सुंदर सोन्याच्या मूर्ती पुढे ठेवून रामचंद्र आरती करीत आहेत. तेहतीस कोटी देवांपैकी कोण बरे असे हे धन्य देव की ज्यांची उपासना स्वतः प्रभु रामचंद्र करीत आहेत ? नारद बोळे ताणून ताणून पाहू लागले.....

अरे, हे काय ? हा तर लक्ष्मण, हा भरत आणि त्यांच्याहिवर बसविला आहे तो कोण ? भक्तराज हनुमान. आश्चर्य ! आश्चर्य ! नारदांनी कितीतरी वेळां भगवंताची सहस्र नामे गायिली होती, पण ‘ भक्ताचा भक्त ’ हे आश्वराचे नांव त्यांनी कधीच ऐकले नव्हते !

आणि जेव्हा नारदांनी हनुमानाच्या शेजारीच असलेली उभ्या शेडीची लहानशी मूर्ति पाहिली तेव्हा तर विचारे लाजेने चूरचूर होऊन गेले आणि मुलाखतीचे प्रश्न न विचारतांच संछिन्नसंशय होऊन स्वारी तेथून माघारी फिरली.

## हनुमानजयंती

चैत्री पौर्णिमा

१ दिवस

मुले आणि तरुण या सणाला आपला सण समजतात. रामभक्त, रामसेवक बाल-ब्रह्मचारी, ‘ बुद्धिमतां वरिष्ठ ’ असा हनुमान हाच विद्यार्थ्यांचा आदर्श बनू शकतो. श्रीरामचंद्र अवतारकार्य संपवून निजघामाला गेले; पण हनुमान निरपेक्ष निरलसपणे

रामकार्य चारुविण्यासाठी चिंजीव हाऊन मागेच राहिला आहे. आपल्याला अवश्य ती सर्व प्रेरणा विद्यार्थ्यांना आये हनुमानाच्या आदर्शमधून घेता येण्याजोगी आहे. या दिवशी शाळेच्या कार्यक्रमांत खेळ, कसरत, आणि विशेषकरून मलखांब आणि कुस्ती ठेवली पाहिजे. समाजांत जाऊन काम करण्याची संधी असेल तर या दिवशी कांहींतरी संवेचे क्षेत्र नांगरले पाहिजे. आखाडे नसतील त्या ठिकाणी आखाडे स्थापने, गरीब विद्यार्थ्यांना गायीचे दूध मिळावे म्हणून फंड काढणे अित्यादि कितीतरी करता येण्याजोगे आहे.

हनुमानजयंतीच्या दिवशी शिजविलेले कांदांही खायचे नांदां असा कार्यक्रम, प्रकृतीला अनुकूल असेल तर, ठेवता येण्यासारखा आहे. भीष्माष्टमीप्रमाणे या दिवशी सुद्धा ब्रह्मचर्याची महत्ता विद्यार्थ्यांच्या मनावर ठसविली पाहिजे. कार्तिकस्वामी आणि हनुमान हे वज्रकाय सेनापती झाले याचे कारण त्यांचे कायावाचामनसा ब्रह्मचर्य हेच आहे, ही गोष्ट विद्यार्थ्यांना समजली तर या सणाचे सार्थक झालेसे म्हणता येईल. हनुमानाला रुईच्या झाडाचे फूल आवडते म्हणतात; ब्रह्मचाऱ्यांना अशीच फुले आवडायची !

या दिवशी वानरसेनेला आपले संमेलन ठेवता येईल.

# परशुराम आणि बुद्ध

: : १०

( वैशाख शु. ३ )

द्रौपदी आणि सीता हे जसे वेगळे वेगळे आदर्श आहेत, तसे राम आणि कृष्ण हे पण वेगळे वेगळे आदर्श आहेत. प्राचीन काळापासून आपण या दोन आदर्शांमधील साधर्म्य आणि वैधर्म्य, साम्य आणि वैषम्य पहात आलों आहों. शेवटी आपण दोन्ही आदर्शांतील सार आपल्या जीवनांत अंतरवून त्या दोहोंचा समन्वय करून टाकला आहे. ज्या दिवशी अशा समन्वय आपण केला त्याच दिवशी 'रामकृष्ण' हे सामासिक नांव आपल्याला सुचलें. राम म्हणजेच कृष्ण, शांता म्हणजेच दुर्गा, शिव म्हणजेच रुद्र, जनार्दन म्हणजेच विश्वंभर, हे ज्या दिवशी आपल्याला प्रतीत झाले त्यादिवशी हिंदू तत्त्वज्ञानाला समाधान मिळालें. तात्त्विक शोधांत एक पूर्णविराम आला; पूर्णविरामापासून नवे वाक्य सुरू होतें. दोन आदर्शांच्या विवाहाने नवी सृष्टि उत्पन्न होते.

परशुराम आणि बुद्ध दोघेहि विष्णूचे अवतार मानले जातात. पण कल्पनाक्षेत्रांत सुद्धा आपण त्यांना कधी काळी जवळ जवळ आणले आहेत का ? परशुराम आणि बुद्ध ! दोघांमध्ये साधर्म्याचा किंवा वैधर्म्याचा कांहीं संबंध तरी आहे ?

परशुराम ब्राह्मण क्षत्रिय आहे; भगवान बुद्ध क्षत्रिय ब्राह्मण आहे. परशुराम ब्राह्मण असून सुद्धा त्याने मन्यू ( क्रोधा )ला मोकळीक देऊन शरीरबळाचाच अवलंब केला. शाक्यमुनीने राजवंशी असूनहि कषमेला प्रधानपद देऊन आत्मिक बलाचा गौरव वाढविला. परशुरामाला क्षत्रिय-सत्ता प्रजापीडक वाटली. श्रीश्वराने मनुष्याला दोनच बाहू दिले आहेत, आणि तेहि सुयोग करण्यासाठी. क्षत्रिय जर सहस्त्रबाहु बनला आणि प्रत्येक बाहुने जर शस्त्र धारण केलें तर दीन समाजाने जावें कोठें ? क्षत्रिय हा रक्षणासाठी आहे; तोच जेव्हां प्रजाभक्षक बनतो तेव्हां प्रजेचें रक्षण कोण करणार ? परशुरामाला वाटलें की क्षत्रियाचा शास्ता ब्राह्मण आहे. गोष्ट खरी, पण क्षत्रियाला शासन करताना ब्राह्मणाने आपलें ब्राह्मण्य मात्र सोडतां कामा नये. परशुरामाने हातांत मोठा परशु घेऊन सहस्त्रबाहुचे हात तोडायला सुरुवात केली. क्षत्रियांचा जुद्धम दूर करण्यासाठी त्याने क्षत्रियांवर अेकवीस वेळा जुद्धम चालविला.



परशुरामानें क्यतिर्याचें गुण अंगी आणलें हांतें. क्यतिर्य म्हणजे शिपाजी; सेनापतीचा हुकूम क्यणाचाहि विचार न करतां त्यानें झेलला पाहिजे. मातृभक्त परशुरामानें कित्याचा हुकूम हातांच मातेचा शिरच्छेद केला. ब्राह्मण हा अश्वर्यापासून लांबच राहातो. क्यतिर्य असतो तोच पृथ्वी जिंकतो आणि दान करतो. परशुरामानें ' जिंकणें आणि दान करणें ' हाच मार्ग पसंत केला.

आतां बुद्ध पहा. त्याने राज्याचा त्याग केला, स्वतःच्या शांतीच्या द्वारा मारावर विजय मिळविला, करुणेचा प्रचार केला. परशुरामामुळें क्यतिर्य भयभीत झाले आणि आत्मरक्षणार्थ त्यानीं संघबळाचें साम्राज्य स्थापन केलें. भगवान बुद्धामुळें त्याचे शिष्य निवैर झाले, त्यानीं अभयाचें साम्राज्य स्थापन केलें.

परशुरामाच्या कार्याचा परिणाम त्याच्या काळीं कितीहि झाला असला, तरी आज तो नमल्यासारखाच आहे. परशुरामामुळें साम्राज्याची कल्पना बुद्भवली. साम्राज्याच्या कल्पनेने दिग्विजयाचा मोह अुत्पन्न केला. आणि दिग्विजयाची कल्पना म्हणजे निरंतर विग्रह. भगवान बुद्धांनीं धम्मपदांत म्हटल्याप्रमाणें जीत हें कलहाचें मूळ आहे. कारण, पराजित व्यक्तीच्या हृदयांत अपमानाचें शल्य सलतच राहातें आणि तें जगाला शांति भोगू देत नाहीं.\* भगवान् बुद्धांची छाप परशुरामपेक्षां खोलहि पडली आणि व्यापकहि झाली. परशुरामाचा मार्ग हिंसेचा होता; बुद्ध, भगवानांचा अहिंसेचा होता. हिंसेमध्यें वीर्य नाहीं. हिंसेनें आजवर चांगल्या तत्त्वांचाहि नाश केला नाही किंवा वाईट तत्त्वांनाहि नष्ट केले नाहीं. हिंसेनें दुष्ट लोकांच्या शरीराचा नाश केला तसा सज्जनांच्या शरीराचाहि तितकाच नाश केला. पण जगांत असलेली सज्जनता आणि दुर्जनता हिंसेपासून अस्पृष्टच राहिली आहे.

अहिंसेचा विजय स्थायी असतो, पण तो राज्यसत्तेची मदन न घेतां झाला असेल तर, सत्य आणि सत्ता परस्परविरोधी आहेत. जेव्हां जेव्हां सत्याने सत्तेची मदत घेतली तेव्हा तेव्हां सत्य अपमानित झालें आणि अपंग वनलें. सत्याचा शत्रू असत्य नाही. असत्य हें अभावरूप आहे, अंधकाररूप आहे. सत्याला असत्याशीं लढावें लागत नाही. जेथें सत्याचा प्रकाश पोचला नाही तेथेंच असत्याचा अंधकार असतो. असत्याला स्वतंत्र अस्तित्वच मुळीं नाही. सत्याचा शत्रू सत्ता हा आहे. परशुरामानें सत्तेच्या

\* जयं वेरं पसर्वात दुःखं सेते पराजितो ।

अुपसंतो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं ॥

द्वारा-शरीरबळाचा प्रभाव पाडून सत्याचा म्हणजे न्यायाचा प्रचार करण्याचा प्रयत्न केला. बुद्ध भगवानाच्या अनुयायांना मुद्धां साम्राज्याच्या प्रतिष्ठेचा पाठिंबा घेऊन सत्याचा प्रचार करण्याचे योजिले तेव्हा सत्य हे लज्जेने संकुचित झाले.

परशुरामाच्या न्यायनिष्ठेचे आणि बुद्ध भगवानांच्या अचेरनिष्ठेचे मॉलन झाले पाहिजे अशी वेळ आज आली आहे. मनांत यत्किंचितहि द्वेष किंवा विष न ठेवतां अन्यायाला तोंड देणे, सत्तेशीं दोन हात करणे हाच आजचा युगधर्म आहे. हाच सत्याग्रह नव्हे काय !

१९.२२.

## अक्षय्यतृतीया

( परशुराम जयंती )

वैशाख शु० ३

-॥- दिवस

अक्षय्यतृतीया हा कृतयुगाच्या आरंभाचा दिवस आहे. या दिवशी सत्य आणि अहिंसेची मीमांसा करावी. शेतकऱ्यांचे वर्ष या दिवसापासून सुरू होतं. म्हणून श्रम-जीवनाच्या महत्त्वाचे आज निरूपण करावे. अक्षय्यतृतीयेपासून झाडांना नियमित पाणी पाजण्याकडे विशेष लक्ष दिले पाहिजे. शेतीला अनुसरून या दिवसाचा कांही कार्यक्रम ठेवतां आला तर ठेवावा.

श्रमजीवी, बुद्धिजीवी, भांडवलजीवी आणि भिक्षाजीवी लोकांच्या जीवनाच्या तारतम्याचे या दिवशी खूप विवेचन करावे.

दर अमावास्येला समुद्राला भरती येते खरी पण चैत्री अमावास्येनंतर जेणाच्या अक्षय्यतृतीयेची भरती दुसऱ्या सर्व भरतींना मागे टाकते असे म्हणतात.

हाच दिवस परशुरामजयंतीचाहि आहे, परशुरामाचे चरित्र जाणल्यानंतर अराराम-चंद्रांच्या अवताराचे रहस्य लक्षांत येऊ शकेल. ब्राह्मण आणि क्षत्रिय यांच्यामधील झगडे मिटवून दोघांना विश्र्वकल्याणाकडे वळविण्याचे काम अरारामचंद्रांना केले; पण हे झगडे कशा प्रकारचे होते, कुठवर चालले हे सर्व आपल्याला परशुरामाच्या चरित्रा-मधूनच मिळू शकेल. क्षत्रियव्रताने कुठे भरून काढणारा परशुराम हा ब्राह्मणधर्माचा अधःपात मुचविना.

# धर्ममणि शंकराचार्य

:: ११

( वैशाख शु० १० )

या कळिकाळांनील याज्ञवल्क्य आणि व्यास म्हणजे आपले शंकराचार्य. 'मुहूर्त न्वलनं उरेयः नच धूमायितं चिरम्' ( कृष्ण भडका उत्तम वाटे । धुमसणें नको चिरकाल ॥ ) हा जणू त्यांचा जीवनमंत्र होता. बत्तीसाव्या वर्षी हिमालयांत देह सोडून परमात्म्यांत विलीन होणाऱ्या या संन्याशाची विभूति हिमालयाहून यात्किंचितहि कमी नव्हती. काळे फत्तर आणि शुभ्र वर्क यांखेरीज जेथे कांहींच मिळायचें नाहीं अशा हिमालयाच्या शोभेशीं शंकराचार्यांच्या अद्वैत वेदांताच्या तत्त्वज्ञानाचा तुलना करतां येईल. वनस्पतींना ज्या ठिकाणी कांहींहि अवकाश नाहीं अशा हिमालयामधूनच वनस्पतिसृष्टीच्या आणि म्हणून प्राणिमात्रांच्या माना सिंधु, सतलज, गंगा, यमुना, शरयू आणि ब्रह्मपुत्रा यांसारख्या नद्या जशा निघनात आणि देशाला समृद्ध करतात त्याचप्रमाणे शंकराचार्यांच्या अद्वैत सिद्धांतामधूनच ज्ञान, भक्ति, कर्म आणि अपासना-रूपी नद्या वाहतात आणि हिंदुधर्माला आजचे बहुरूपी समृद्ध आणि संघटित रूप देतात.

शंकराचार्यांच्या चरित्रांत करुण आणि अद्भुत, वीर आणि शांत सर्वच रस भरलेले आहेत. शंकराचार्यांची मातृभक्ति त्यांच्या प्रखर ज्ञाननिष्ठेहून यात्किंचितहि अतिरती नव्हती. वामनांत्र विजय मिळविणारा हा वैराग्यवीर हृदयधर्माचा द्रोही झाला नव्हता.

शहाण्या लोकांना भ्याड बनून संन्यासधर्माला हिंदुधर्मातून रजा दिली होती. या संन्यासधर्माचा शंकराचार्यांना पुनरुद्धार केला, आणि संन्याशांचे दहा वेगवेगळे पंथ स्थापन करून दिले. संन्याशांच्या रूढ धर्माला खुंदीवर अडकवून त्यांनी आपल्या मातेच्या अंतकाळी तिची सेवा केली आणि तिचें श्राद्धहि केलें. भेदमात्राचा नाश केला असूनसुद्धां भक्तिमार्गाच्या ओलाव्याने हिंदुधर्माला त्यांनी सजीव केलें. आणि या जगताला मायारूप ठरवूनहि याच जगताची धर्मसंस्था संशुद्ध केली, तिचें संघटन केलें.

पुरी, बदरीनारायण, द्वारका आणि शृंगेरी या चार कोपऱ्यांना वार मठ स्थापून शंकराचार्यांनी धर्माचे अध्ययन, धर्माचा प्रचार आणि धर्म-व्यवस्थेची रचना चालवी करून दिली.

आपले लोक शंकराचार्यांच्या अद्वैत वेदांताच्या दार्शनिक आणि नार्किक बाजूचाच फक्त अभ्यास करतात. अद्वैत म्हणजे गर्गव-उरीमंत यांच्यामधील अभेद, पापी-पुण्यवान यांच्यामधील अभेद, स्त्री-पुरुष यांच्यामधील अभेद, जावात्मा आणि परमात्मा यांच्यामधील अभेद, सर्व प्रतिष्ठितांमधील अभेद, या अद्वैताच्या बाजूचे महत्त्व आपले लोक लक्षांतच घेत नाहीत हा दुःखाचा गोष्ट आहे. अद्वैताच्या सिद्धांतावर स्वलेले समाजशास्त्र आपण कोठे अजून उत्पन्न केले आहे ?

मायावादाचा परिणाम म्हणून आपल्यावरील जबाबदारी विसरण्याऐवजी लोक जर आपले दुःख विसरतील, आपला दुर्बळपणा विमरतील, दुःमऱ्यांना केलेला अपकार आणि अपमान विमरतील आणि ते सर्व मायारूप आहे असे ओळखतील तर किती बरे चांगले होईल ? सर्वांचा आत्मा एकच आहे याविषयी ज्यांना शंका नाही त्याने आतां हे जाणले पाहिजे की सर्वांचे मन आणि हृदयसुद्धा एकच आहे. सुखदुःख, हित-अहित, उन्नति आणि अवनति अशा सर्व परिस्थितीत आपण जगाशी जोडलेले आहोत, अकरूप आहोत, एवढे जर मनुष्यजातीने समजून घेतले तर ऐहिक आणि पारलौकिक असे दोन्ही मोक्ष साधतील. या गीतीने पाहिले तर शंकराचार्यांचे काम येथून पुढे सुरू व्हावयाचे आहे.

X

X

X

X

गंगाकाठी उत्तराखंडात असलेले शरीनगर सिद्धपाठ म्हटले जाते. या ठिकाण केलेली साधना फुकट जात नाही आणि ती शास्त्रफलदायी असते. देवाभागवतात या स्थानाचे माहात्म्य पुष्कळ सांगितले आहे. पूर्वी येथे ग्रीचकर ज्यावर कोरलेले आहे अशा एका दगडाची पूजा होत असे. प्राचीन काळी या स्थानाचे राज एक नरमेध होत असे म्हणताने. आज शंकराचार्य जेव्हा शरीनगरला आले तेव्हा मनुष्यवधाचा हा अनाचार पाहून त्यांची धर्मभावना खळली. त्यांनी एक पहाड घेऊन तो ग्रीचकराचा दगड उलटविला आणि आज्ञा केली की, आजपासून नरमेध बंद.

प्रस्थानत्रयावर भाष्य लिहून आणि नितांतरमणांय अशा स्तोत्र लिहून शंकराचार्यांनी हिंदुधर्माची जी सेवा केली आहे. तिच्यापेक्षां हो नरमेध बंद करण्याची सेवा

धुव्व आहे याविषयी कोणाला शंका आहे काय ? भाष्य लिहिण्याला बुद्धिवैभव लागते; स्तोत्रे रचण्याला भक्ति नसली आणि केवळ कल्पना-अल्लास असला तरी चालते; पण अत्यंत प्राचीन काळापासून चालत आलेली घानकी रूढी कडव्या समाजाच्या विरुद्ध जाऊन एकदम बंद करायला लावायची म्हणजे त्यासाठी नपस्तंज, धर्मेनिष्ठा आणि हृदयसिद्धीच अवश्य आहे.

नरमेध बंद केल्याची ही हक्कित जेव्हां मी अकली तेव्हांपासून शंकराचार्याची ठंगणी आणि स्थूल मूर्ति-भगवी वस्त्रे, रुद्रास्त्रपमाळा आणि भस्मविलेपनाने मंडित व आगलात मुंडित अशी मूर्ति-डोळ्यांपुढून हलतच नाही. कर्मकांडी निर्दय शाक्त चहू-बाजूंनी हाहाःकार करीत आहेत, आणि त्यांच्यामध्ये हातीं पहार घेऊन ती संन्याशाची मूर्ति उभी आहे; अंकाहि 'कर्म' वीराला जवळ यायची हिंमत नाही; आणि हा ज्ञान-वीर तपस्वी थरथरणान्या ओठांनी अंकेकाला अथवा सर्वांना मिळून शास्त्रार्थ करण्यासाठी आह्वान करीत आहे; पण कोणाचीहि बुद्धिप्रभा या धर्ममूर्ति, दिग्विजयी संन्याशापुढे आपले तेज पाडू शकत नाही. " ब्राह्मणा भगवन्तो यो वः कामयते स मा पृच्छतु, सर्वे वा मा पृच्छन्, यो वा कामयते तं वः पृच्छामि, सर्वान् वा वः पृच्छामीति । ते ह ब्राह्मणा न दधृषुः । ”

भेदामध्ये अभेद पहाणे ही गीतेची शिक्षण शंकराचार्यांनी हिंदूंच्या अुपासनेन-सुद्धा संपूर्णपणे विणून काढली. नेहतीस कोटी देवदेवींनीसुद्धा पोट न भरणाऱ्या आपल्या लोकांनी आर्य-अनार्य, स्वदेशी-परदेशी, नवे-जुने, चांगले-वाग्रीट, देव, पीर, भूतप्रेत वगरे अनेक अुपास्यांची खिचडी केली होती. या सर्वांमधून पांच देवांचे आयत्न वसवून बाकी सर्व देवदेवी म्हणजे या पांचांचेच अवतार आहेत असे ठरवून शंकराचार्यांनी व्यवस्था करून दिली की, या पांचांमधून वाटेला त्या अष्टदेवतेची पूजा करा पण तिच्याभोवती बाकीचे चार देव बसवूनच ही पूजा व्हावी.

पंचायतन पूजेत सर्व देवांचा समन्वय आणि अभेद त्यांनी मुचविला त्या दिवसा-पासून हिंदु अुपासनापद्धतीत समन्वय आला आणि विग्रह मिटला. सर्व-समन्वय आणि अभेद ही श्रीआद्यशंकराचार्यांची हिंदुधर्माला मोठ्यांत मोठी देणगी आहे.

# शंकरजयंती

वैशाख शु० १०

-॥- दिवस

अद्वैतसिद्धांताच्या दार्शनिक दृष्टीने हा सण साजरा करावयाचा नाही. यात सर्व मताच्या लोकांना भाग घेतां यावा अशा रीतीने तो साजरा झाला पाहिजे. श्री-शंकराचार्याची धर्मेनिष्ठा, आश्रयपरायणता, शास्त्राध्ययन, आणि हिंदुधर्मात नवी व्यवस्था आणण्याची त्यांची शक्ति अित्यादामुळे त्यांचे कार्य अखिल जनतेला बोधप्रद असें झाले आहे. या दिवशीं शंकराचार्यांची आणि अंतरांची स्तोत्रे गाण्याचा आणि त्यावर विवेचन करण्याचा कार्यक्रम ठेवावा. सामाजिक आणि राष्ट्रीय अद्वैताच्या दृष्टीने ब्राह्मणापासून अंत्यजापर्यंत सर्वांचा आत्मा मारखाच आहे. याविषयी विवेचन हा या दिवसाचा मुख्य कार्यक्रम असला पाहिजे. ईश्वराची उपासना हेच सत्य, आणि जगाची उपासना हा मायामोह आहे याविषयी मतभेद असणार नाहीच.

या दिवशीं मोहमुदगर स्तोत्र गावे आणि त्याच्या प्रसंगाचे वर्णन करावे.

( वैशाख शु. १५ )

१ बोधिप्रान्ति.

महत्प्रयासाने केलवसाने अमेरिकेला जाण्याचा रस्ता शोधून काढला. आपल्याला कांहीं आतां हे प्रयास करावे लागत नाहीत. महत्प्रयासाने भगीरथ गंगा घेऊन आला. आपल्याला कांहीं आतां हे श्रम करावे लागत नाहीत. अेकाने कष्ट केले, जगाला लाभ झाला. कृतज्ञतापूर्वक त्याचे स्मरण करणे, त्याचे श्राद्ध करणे याहून अधिक कांहीं आपल्याला करावयाचे अुरत नाही.

या भवचक्रांतून सुटून जाण्याचा रस्ता वैशाख शुद्ध पूर्णिमेच्या दिवशीं शाक्य-मुनी गौतमाने शोधून काढला आणि तो बुद्ध झाला. आतां चिंता करण्याचे आपल्याला कांही कारण नाही. बुद्ध भगवानाचे स्मरण करून त्याने दाखविलेल्या 'अष्टांगिक' नांवाच्या राजरस्त्यावरून सरळ चालत जाणे अवघडेंच आपले काम आहे. श्रद्धा असेल तर मार्ग दाखविणाऱ्या या अर्षींचे तर्पण अथवा श्राद्ध केले तर ते वरकड. पण भोक्षाचा रस्ता, निर्वाणाचा मार्ग, स्वर्गाचे राज्य मिळविण्याचे साधन अितके सोपे नाही. वेदकाळच्या अर्षींनी हा रस्ता शोधून काढला होता, तरी शाक्य-मुनीला आणि महावीराला तो पुनः शोधावा लागला. 'महता कालेन' हा रस्ता पुनः पुनः नष्ट होतो, आणि तो पुनः पुनः शोधावा लागतो. युगायुगालाच काय, व्यक्ती-व्यक्तीच्या हृदयांत परमेश्वराला अवतार घ्यावा लागतो, बोधीला पगट व्हावे लागते; आणि तत्पूर्वीं प्रत्येक व्यक्तीला माराबरोबर झगडावे लागते, सैतानाशी लढावे लागते. प्रत्येक व्यक्तीच्या वाटेत कामक्रोधादि परिपंथी ( वाटमारे ) आहेतच, त्यांच्याशी दोन हात केल्याखेरीज योग प्राप्त होत नाही, बोधि मिळत नाही. प्रत्येकाने आपणहून हा अमृतकुंभ मिळविला पाहिजे; मिळपर्यंत सावधान राहिले पाहिजे. बुद्ध भगवान जसे माराबरोबर लढले तसे प्रत्येकाने लढले पाहिजे. बुद्ध भगवान जसे—

अिहासने शुष्यतु मे शरीरं  
वगस्थिमांसं प्रलयं च यातु ।'

( या ठिकाणी माझे शरीर मुकून जावे, आणि हाडे मांस चामडें याचा लय होवो )—अशा निश्चयानें बोधि ( ज्ञान ) प्राप्त करून घेण्यासाठीं ठाण मांडून बसले होते तसेंच प्रत्येकानें बसले पाहिजे; आणि ज्याप्रमाणें बुद्ध भगवानांना बोधि मिळाले आणि ते तृष्णाविरहित झाले तसें होण्याचा व मोक्ष मिळविण्याचा मार्ग प्रत्येक व्यक्तीला मोक्कळा आहे. त्या मार्गानें जाणें हें प्रत्येकाचें कर्तव्य आहे आणि जेव्हा त्या मार्गानें आपल्याला बोधि मिळेल तेव्हांच आपल्या हृदयांत, आपल्या जीवनात बोधिजयंतीचा खरा उत्सव होईल. तोपर्यंत विश्वास दृढ करण्यासाठी, शरद्धावस्था त्या मेचन करण्यासाठी बुद्ध भगवानांच्या बोधिजयंतीचें आपण स्मरण करू या.

मे, १९१८

## २ भगवान बुद्ध

१

हिमालयाच्या पायथ्याशी, नेपाळच्या हद्दीत कपिलवस्तु नावाचें एक लहानसे राज्य होतें. तेथें कोणी राजा नव्हता. तेथील शाक्य लोकाना जो काहीं मोठें मोठी घराणीं होती त्या घराण्यांचे पुढारी मिळून आपलें एक लहानसें राज्य चालवीत असत. या पुढाऱ्यांना ' राजा ' म्हणत. राजा शुद्धोदनाला मोठा सम्राट होण्याची महत्त्वाकांक्षा होती.

या राजाच्या राणी मायादेवीनें एका पुत्राला जन्म दिल्या. राजाने ज्ञातक व्रतं वाचयाल. लावले. ज्योतिषाबुवांना मांगितलें, ' राजा, तुझ्या भाग्याला मीमा नाही. अरे, हा तुझा मुलगा एकतर माऱ्या पृथ्वीचा सम्राट होईल, नाहीतर धर्मसम्राट होईल. याच्या मनांत वैराग्य उत्पन्न झालें तर मात्र हा धर्मसम्राटच होईल. '

राजाने विचारलें, ' वैराग्य कशानें उत्पन्न होतें ? ' शत्रूच्या ज्योतिष्याने मांगितलें, ' जन्म, जरा, व्याधि आणि मृत्यु यांचें दुःख पाहिल्यानें. '

तर मग भविष्यावर आपण मान करूं असा राजानें निश्चय केला. मुलाला या चार वस्तू दिसूच नयेत अशा रीतीने त्याला ठेवूं म्हणजे झालें. अमुह्यातला महाल वेगळा, हिवाळ्यातला वेगळा. आणि रावमाळ्यातला तर न्याहूनहि वेगळा. घरांत कोणी आजारी, म्हातारा किंवा दुर्मखलेला लोक, मिळायचा नाही. राजमहालाच्या बागेत



झाडावर कोमेजलेले फूल किंवा पिचळें पडलेले पान दिसायचें नाहीं. सगळीकडे सुगंध, संगीत आणि काव्यसाहित्यच असावें अशा रीतीने आपल्या मुलाला ठेवूं म्हणजे झाले.

पुत्र गौतम अशा स्थितीत राहिला. पण अशा मुखाने कां कुणी मुखी होणा आहे ? त्याला सगळ्या गोष्टींचा कंटाळा वाटूं लागला. लहानपणापासूनच त्याची बुद्धि विलक्षण होती, आणि पुष्कळ वेळां तो गहन विचार करीत बसत असे. बापाने विचार केला कीं मुलाचें लग्न लावून दिलें म्हणजे तो ठिकाणावर येतील. मुलानेंहि तें मान्य केलें. एका स्वयंवरांत जाऊन आपलें युद्धकौशल्य, बुद्धिकौशल्य आणि कला-कौशल्य सिद्ध करून, हा सिद्धार्थ कुमार रूपरमणी यशोधरेशीं विवाह करून तिला घरीं घेऊन आला. बापाला वाटलें आतां मुलगा विलासांत बुडून जातील. पण मुलगा विचारांतच बुडून गेला. त्याला वाटूं लागलें, हें जग म्हणजे आहे तरी काय ? जें आजूबाजूला आहे तें सारे पोकळ पोकळ भासत आहे. मुलाने बापाजवळ मागणीं करूं कीं मला खरे जग वधायचें आहे. बापाच्या पोटांत धस्स झालें, नाहीं म्हटलें तर मुलाला दुःख होतील आणि या दुःखाने कदाचित् त्याच्यांत वैराग्य उत्पन्न होतील. आणि होय म्हणावें तर काय होतील परमेश्वर जाणे !

बापाने सगळी नगरी शृंगारली आणि कोणीहि रोगी, वृद्ध किंवा अशक्त मनुष्याने बाहेर पडूं नये अशी दवंडी दिली. पण मुलाला पहायचें होतें खरें जग. तो सगळी-कडे फिरला—सर्व कांहीं बघितलें. दरवाजापाशीं येऊन त्याने सारथ्याला गांवाच्या बाहेर रथ हांकायला सांगितलें. तेथें अेक दुबळा, अपंग आणि दुःखाने पोडलेला वृद्धपुरुष त्याच्या पाहाण्यांत आला. त्याला पाहून त्याने सारथ्याला विचारलें, ‘छना ! हें काय आहे ?’ सारथ्याने ममजावून सांगितलें, ‘महाराज, हा महानारा आहे, रोगी आहे, दुःखी आहे; थोड्या दिवसांनीं हा मरून जातील !’

कुमाराने फिरून विचारलें, ‘असें का ?’

छन्न म्हणाला, ‘महाराज, हा जगाचा नियम आहे. जे जन्माला आले आहेत त्या सर्वोंना रोग, दुःख, महानारपण आणि मरण हीं यायचींच. तीं टळायची नाहीं. साऱ्या जगाची हीच दशा व्हावयाची.’

‘याला कांहीं औषध नाहीं ?’ कुमाराने विचारलें.

कुमाराच्या हृदयांत जन्म, मृत्यु, जरा आणि व्याधीचें हे दर्शन तारासारखें घुमलें. लहानपणापासूनच जर या गोष्टी त्याच्या दृष्टीम पडल्या असत्या तर आपल्या-

प्रमाणे त्यांचाह हृदय कठीण बनलें असतें. पण आजवर कधीह न पाहिल्यामुळे कुमाराला तें असह्य झालें. तत्क्षणींच त्यानें मनार्शी निश्चय केला, ' या दुःखामध्ये राहाण्यांत कांहीं पुरुषार्थ नाही. सारा जनसमाज दुःखांत बुडलेला आहे, यावर कांहीं औषध अमलेंच पाहिजे. आणि तें मी शोधून काढणारच. अरे, सगळा देश अशा दारुण दुःखांत तापून चालला असतांना चैन कसली करायची ? वायकोबरोबर प्रणय काय करायचा ? मुलाचा मोह कसला धरायचा ? ( कुमाराला यावेळीं एक मुलगाहि झाला होता ). ज्याचा मी अुद्धार करूं शकत नाहीं, त्याचा मी उपभोग तरी कसा घेऊं ? मी माझीं हीं २७ वर्षे फुकट फुकट घालविलीं ?

कुमाराच्या हृदयांत वैराग्यानें प्रवेश केला आणि त्यानें घराचा, राज्याचा, पत्नी यशोधरेचा आणि पुत्र राहुलाचा त्याग केला. पिता रडत होता, माता मायादेवी तर याच्या जन्मानंतर सातव्या दिवशांच मरून गेली होती. सावत्र आर्षी जी महाप्रजापति ( जी त्याचो मावशीहि होत होती ) तिनें तर रडून ओरडून आक्रंद केला. पण कुमार घर सोडून गेला तो गेलाच.

अनोमा नदीच्या कांठीं जाऊन कुमारानें डोक्यावरील लांब लांब मुंदर केस कापून टाकले, रेशमाचीं कोमल बहुमोल वस्त्रे फेंकून दिलीं, आपल्या प्रिय कथक वाड्याची रजा घेतली आणि महाभिनिष्क्रमण केले.

पाहिल्या प्रथम भिक्षा मागून आणली तेव्हां रात्रीचे शिळे आणि भगदीं वाळून गेलेले भाकरीचे तुकडे कांहीं केल्या घशाखालीं अुतरेनात. राजविलासी जीवन आणि तपस्वी जीवन यांमध्ये दारुण युद्ध चालले. पण अेका क्षणांतच तें संपलें. त्यानंतर कधीहि ही अडचण नडली नाही.

गुरूच्या शांघांत त्यानें अनेक दिवस काढले. त्या काळच्या समाजामधून आणि शास्त्रामधून जेवढें मिळविण्याजोगें होतें तेवढें त्यानें मिळविलें; शिकतां येण्याजोगें हातें तेवढें शिकून घेतलें; तरी शांति मिळाली नाही. जगाला शांति देतां येतील असें औषध हातीं आले नाही. नानाप्रकारचे योग करून पाहिले, देहदंडन केलें, पण कांहीं पत्ता लागेना.

शेवटीं बिहारच्या धन्य प्रदेशांत, निरंजरा नदीच्या कांठीं तो अनशन व्रत घेऊन बसला. डोक्यांत विचार भट्टीप्रमाणे पेटत होते. अशुद्ध विचार जळूं लागले, जगाचें रहस्य वितळूं लागलें, आणि तपस्व्याची खात्री झाली की यानंतरची यात्रा-अनुभवाची

यात्ता-अशा कायाकलेशाने. देहाला दुःख देऊन होणार नाही, तर मुख आणि दुःख सोडून मधली जी समान स्थिति आहे ती धारण करण्यानेच पुढे जाता येईल.

तपस्व्याने पुनः आहार सुरू केला. आमपास गाळा झालेल्या माधकांनी विचार केला की तपस्वी हरला, ढिला पडला. आतां याच्याबरोबर राहाण्यांत कांही अर्थ नाही. सर्व त्याला सोडून निघून गेले. पण तपस्वी आपला धीमेपणाने पुढे चाललाच होता.

अंती शेवटी घटका येऊन पोचली. महायुद्ध सुरू झाले. मनुष्यजातीचा शत्रू, हृदयस्वामीचा प्रतिस्पर्धी आणि कुटिल तर्काचा आद्य गुरू जो ' मार ' त्याने आपली दहा प्रकारची सर्व मेना या दयामय विश्वबंधूवर सोडली.

अहोभाग्य या मनुष्यजातीचे की शेवटी वैशाख पूर्णिमेच्या त्या रात्री ' मारा ' च' पराभव झाला आणि सिद्धार्थ खरोखर सिद्ध-अर्थ झाला, तथागत बुद्ध बनला.

## २

त्याने स्वतःचा अुद्धार केला तोच जगाचा अुद्धार करू शकेल, जो स्वतः जागा झाला तोच जगाला जागे करील बुद्ध म्हणजे जागा झालेला. ज्या कष्टांनी सिद्धार्थ ' मारजित ' झाला त्याच कष्टांनी सगल्या विश्वाचे रहस्य त्याच्या दृष्टीपुढे खुले झाले आणि तो लोकजित होण्याला लायक बनला.

आपण देहधारी आहोत तितक्या अंशांनी निसर्गाच्या नियमाला वश आहोतच असं त्याला दिसून आले. निर्मर्गाचे दुःख टाळतां येण्यासारखे नसेल कदाचित, पण तें असंय नसते. जन्म, जरा, व्याधि, मरण. प्रिय वस्तूचा वियोग आणि अप्रिय वस्तूचा संशोग या गोष्टी नेहमी चालायच्याच. विवेकाने त्याचे स्वरूप समजून घेतले तर त्याचे दुःख हलकें होते. जगांत मोठ्यांत मोठे दुःख आपण स्वतःच उत्पन्न करीत असतो. कधीहि शमणार नाही अशी आपली तृष्णाच आपल्याला दुःखांत बुडविते, आणि अनंतकाळपर्यंत दुःखरसांत आपल्याला टाकून देऊन आपल्या मान्या जीवनाचे कडू लोणचे बनवून टाकते.

ही तृष्णा मरणार नाही तोंवर आपल्या दुःखाचा अंत होणार नाही. आणि ही तृष्णा अेकदां मेली म्हणजे दुःखाचे कांहींच कारण नाही. मग जी कांहीं स्थिति राहते

तोच आपला वारसा. ती स्थिति कशी असेल याची आज कशाला चर्चा ? रोग नाहीसा झाल्यावर काय होईल ? काय व्हायचें ? कल्याणच.

या स्थितीचें नांव निर्वाण. मुक्त झालेल्या सर्व जीवांचें हेच धाम.

पण हें ज्ञान ऐकणार कोण ? हे औषध घेणार कोण ? या पंथानें जाणार कोण ? सगळे जग तृष्णेच्या पाठीमागे लागले आहे. तृष्णेचा नाच चालूच राहायचा. अरेरे, तर मग काय कोणाचा अुद्धार होणारच नाही ? अितक्या श्रमानें मिळविलेलें औषध काय फुकटच जाणार ?

त्या कष्टामूर्तीने पुनः विचार केला. प्रसन्न हृदयांतून उत्तर मिळालें, 'जे शुभ, संस्कारी आहेत त्यांच्याविषयी मैत्रीभाव राखला; जे वैभवशाली आहेत त्यांच्याविषयी मुदिता अंगीं आणली, अर्थात् त्यांचें मुख पाहून आनंद मानला; जे दुःस्थित किंवा दुःखी आहेत त्यांचा कंटाळा किंवा तिरस्कार न करितां त्यांच्याविषयीं कष्टाभ व ठेवला; आणि जे दुष्ट वृत्तीचे आहेत, जे जिकडे तिकडे द्राह्म पमर्शनात आणि अकारण वैर धरतात त्यांच्या विषयीं द्वेषाऐवजीं कमीत कमी अपेक्षाभाव ठेवला तर सर्व जगांत विजयच आहे.'

या चार वृत्ती म्हणजेच ब्रह्मदेवार्चः चार मुखे. या चार मुखांतच चार वेद गमावले आहेत. हे पाहून बुद्ध भगवान जगाची सेवा करायला निघाले, आणि धर्मचक्र फिरू लागले.

### ३

ज्यांच्याकडून कर्ज काढून अवढे ज्ञान मिळविलें त्यांच्या अृणांतून प्रथम मुक्त झालें पाहिजे. बुद्ध भगवान आहार करू लागले हे पाहून ज्या शिष्यांनीं पूर्वी त्यांचा त्याग केला होता त्या शिष्यांकडे प्रथम ते गेले. मग काय विचारतां ? प्रत्येक दुःखी मनुष्य त्यांच्याकडे येथू लागला. ब्राह्मण आले आणि आणि नापित आले, योगी आले आणि यती आले, श्रीमंत आले आणि दरिद्री आले; ज्यांच्याजवळ हजारो शिष्य होते असे अभिमानी गुरू आले, आणि ज्यांच्यामागे त्यांचें स्वतःचें मन किंवा शरीर हि जात नव्हतें असे दुबळे लोकहि आले.

संघ वाढला आणि संघाची सेवा करणारे गृहस्थाहे वाढले. मोठमोठे गिहार बांधले गेले. मोठमोठे राजेलोक बुद्ध भगवानांची सत्ता घेण्यासही येथू लागले.

यक्ष, गंधी, किंवा सर्वांना निर्वाणाचा रस्ता मिळाला, आणि धर्मचक्र पूर्ण वेगाने फिरू लागले.

## ४

बिचाऱ्या यशाधेरेचे काय बरे झाले असेल ? राहुलाचे कोण बरे लाड पुरवीत असेल ? राजा शुद्धोदनाला दुसरा मुलगा झाला होता पण सिद्धार्थाला तो कसा बरे विसरणार ! आपल्या मुलाची कीर्ति ऐकून त्याने दूत पाठविला. पण हा दूत कसचा मागे जातो ! तो शिष्य वनून संघांत दाखल झाला. दुसरा दूत गेला, त्याचीहि तोच स्थिति. आतां तिसरे कोण जाणार : शेवटीं वृद्ध अमात्य गेले. भगवानांच्या सत्संगाचा एक वर्षभर आनंद अनुभवल्यानंतर त्यांना राजाचा निरोप आठवला, आणि मग ते बुद्धभगवानाला, बापाकडे घेऊन गेले. बुद्धांनी चिरविधुरा यशोधरा, दालक राहुल आणि वृद्ध शुद्धोदन या सर्वांना उपदेश केला, आणि ते भिक्षेला निघले. कीर्ती शरमेची, नामुष्कीची गोष्ट कीं राजाचा मुलगा गल्लोगल्लीं भिक्षा मागायला जात आहे ! राजाने सांगितले, ' बाळा, आपल्या कुलपरंपरेत भिक्षा नाही. ' मुलगा बोलला, ' राजन्, तुमची कुलपरंपरा वेगळी आहे. माझी कुलपरंपरा बोधिसत्त्वांची आहे. ते नेहमीं गरीबांच्या संगतीला राहात आले आहेत, आणि लोकांनीं स्वेच्छेने दिलेले भिक्षाच खान आले आहेत. '

## ५

महाप्रजापतीने विचार केला कीं बाहिण तर मुलाला जन्म देऊन मरून गेली. त्या दिवसापासून सिद्धार्थाला मी वाढविला. आज तोच मुलगा जगाचा अुद्धारक बनला आहे. मी त्याच्याकडे जाऊन दीक्षा कां घेऊं नये ? शाक्यकुळांतील पुष्कळ राजकन्या महाप्रजापतीबरोबर बुद्धभगवानाला भेटायला निघाल्या. प्रवासाचे कष्ट सहन करतांना त्यांचे पाय मुजले. त्यांनीं बुद्ध भगवानाला विनवणी केला कीं आम्हांलाहि संघांत स्थान द्या. भगवानांनीं सांगितले, ' ते होणार नाहीं. माझा संघ बिघडेल. ' स्त्रियांमध्ये भयंकर निराशा पसरली. तेव्हां बुद्ध भगवानांचा प्रिय शिष्य आणि सेवक आनंद याने विचारले, ' तर मग काय, भगवन्, स्त्रियांना धर्माचा साक्षात्कार अशक्य आहे? ' बुद्धांनीं सांगितले, ' असें नाहीं. त्यांनाहि निर्वाणाचा सागखाच अधिकार आहे, त्यांनाहि धर्म जाणण्याची बुद्धि आहे. ' शेवटीं.

बुद्ध भगवानांनीं स्त्रियांसाठीं अेक स्वतंत्र संघ काढला. या संघांतहि अत्यंत धर्मनिष्ठ आणि अधिकारी व्यक्ती होअून गेल्या.

आयुष्याच्या अैशीं वर्षांपर्यंत धर्माचा उपदेश करून कुशीनारा नामक स्थानावर त्यांनं आपला पवित्र देह सोडला. हळू हळू बुद्ध भगवानांचा उपदेश पृथ्वीवर फैलावूं लागला. पाटलिपुत्राच्या महान् राजा अशोकवर्धनानं बौद्धधर्मापदेशकांना देशदेशांतरा-ला पाठवून तथागताचा (बुद्ध भगवानाचा) उपदेश सगळ्या जगाला अैकविला. आब चीन, जपान, ब्रह्मदेश, सीलोन वगैरे देशांमध्ये बौद्ध धर्म चालत आहे. आणि बुद्ध भगवानाचा उपदेश तर सगळ्या जगांतील सगळ्या विचारवंत लोकांच्या गर्जी अुतरूं लागला आहे.

आक्टोबर, १९३६.

### ३ आशियाचा धर्मसम्राट्.

महाभारतीय युद्धानंतर कितीतरी काळ लोटला. हिंदुस्थानांत सगळीकडे लहान लहान राज्ये झालीं. कित्येक राजे तर पांच दहा गांवांचेच मालक होते. कित्येक राज्यांत राजे नव्हते पण अचूकदार कुळांतील पुढारी निगम संभेनं वसून राज्यकारभार चालवीत. या पद्धतीला महाजनसत्ताक पद्धति म्हणतात. हिमालयाच्या पायथ्याशीं नेपाळजवळ शाक्य लोकांचें असं एक राज्य होतें. तेथें कपिलवस्तु नांवाच्या नगरींत शुद्धोदन नांवाचा राजा राज्य करीत होता. त्या राजाला सिद्धार्थ नांवाचा अेक मुलकपणी पुत्र झाला. ज्योतिषांनीं भविष्य वर्तविलें कीं हा राजपुत्र अेकतर चक्रवर्ती राजा होअील किंवा जगताचा अ्धार करणारा अेक धर्मसम्राट् होअील. त्याला जर वैराग्य अुत्पन्न झालें तर तो दुसराच मार्ग पत्करील. राजानें विचार केला कीं म्हातारपण, रोग आणि मरण बघून माणसाच्या वैराग्य अुत्पन्न होतें, म्हणून या तीनहींतून अेकहि गोष्ट या मुलाच्या दृष्टीस पडणार नाही अशा रीतीनं याला ठेवूं.

सिद्धार्थाला चैनीच्या आणि अैषआरामाच्या वातावरणांत वाढविण्यांत आलें. यशोधरा नांवाच्या अेका अत्यंत रूपवती आणि सद्गुणवती राजकन्येशीं त्याचें लग्न करण्यात आलें. पण अनपेक्षितपणें व्याधि, जरा आणि मृत्यु तीनही त्याच्या नत्रेस पडलीं. त्याच्या मनावर मोठा आघात झाला. जगाचें हें सर्व दुःख नाहीसे करण्याचा अपाय असलाच पाहिजे आणि मग तो शोधून काढल्यावांचून गत्यंतर नाही

असा विचार करून सिद्धार्थाने आपल्या राज्याचा आणि सुखापभोगाचा त्याग केला आणि तो संन्यासी झाला.

अनेक चांगल्या चांगल्या गुरूंकडून त्याने ज्ञान मिळविले, कठीण तप केले, ४९ दिवसपथेन काही खाहेले नाही आणि धर्मोपदेश मिळविण्यासाठी परेश्रम केले. त्याला कर्मविण्यासाठी माणसाचा गुरू, सर्व वाडीत वासनांचा राजा जो ' मार ' त्याने मोहक वस्तू, वेंटाळा, भूक, तहान, विषयवासना, आळस, भीति, कुशंका, गर्व, लोभ, मत्कार, पूजा आणि वांकड्या रस्त्याने मिळणारी कीर्ति ही आपली सर्व फौज घेऊन सिद्धार्थावर हल्ला केला. पण सिद्धार्थाची शांति आणि विवेक अटळ राहिले आणि त्याने मारावर विजय मिळविला. मारावर जीत मिळनांच लगेच त्याला जगाचे दुःख नाहीसे करणारे ज्ञान, ज्याला बौद्ध लोक ' बोधि ' म्हणतात ते, मिळाले. सिद्धार्थ बुद्ध झाला आणि त्याला परम आनंद झाला.

जगामध्ये सर्वत्र दुःख आहे याचे कारण वासनारूपी तहान आहे. नी नाहीशी केली असता दुःख दूर होऊन आणि त्याकरिता मनुष्याने योग्य ज्ञान, योग्य अिच्छा, योग्य कर्म, योग्य धर्मा, योग्य साधन, योग्य चिंतन आणि योग्य ध्यानाचे नेवन केले पाहिजे, हे त्याच्या ज्ञानाचे सार होते. आपल्याला रांगडलेला मार्ग जगाला दाखविला तर जगाचेहि कल्याण होऊन या दयेच्या वृत्तीने बुद्धाने धर्मोपदेश करण्यासाठी फिरायला मुखात केली. काशीजवळील सारनाथ तीर्थाच्या ठिकाणी त्याने आपल्या उपदेशाला मुखात केली. हजारो लोक हा तथागताचा उपदेश ऐकण्यासाठी गोळा होत. बुद्धाचा उपदेश पूर्णपणे ज्यांच्या गळीं अतरे ते घरदार सोडून बौद्ध भिक्षु किंवा भ्रमण होत. चैनीपाठीमागे सगळे आयुष्य खर्च करणे किंवा शरीराला कष्ट देण्यांतच संतोष मानणे ही दोन्ही टोके बुद्ध भगवानांना पसंत नव्हती. त्यांनी मधला मार्ग पसंत केला. बौद्ध भिक्षु बुद्धाला, त्याच्या धर्मीला आणि त्याने स्थापिलेल्या भिक्षु-संघाला शरण जाऊन कषाय वस्त्रे धारण करीत. भक्तजनानी अगा लोकाना राहाण्यासाठी मोठमोठे विहार बांधून दिले होते. त्यावरून मिथिला आणि तमिळ देशाचे नांवच ' विहार ' ( बिहार ) असे पडले आहे.

त्या काळच्या अज्ञातशत्रू नांवाच्या राजाने बुद्धाचा उपदेश स्वीकारला होता त्या काळचे कर्मकांड आणि यज्ञयाग यांच्या विरुद्ध बुद्ध भगवानांनी थंड आभारले. धर्माच्या नांवाने पडणा मारून स्वर्ग किंवा मोक्ष मिळणार नाही आणि कितीहि यज्ञ

केले तरी केलेल्या पापांतून सुटका होणार नाही, केलेली कर्मे भोगल्यावाचून गत्यंतर नाही, हा त्याचा सिद्धान्त होता. शिवाय ज्याने करावे त्यानेच भोगावे. दुसऱ्याच्या बलिदानाने आपल्याला पुण्य मिळायचे नाही; स्वतः पुण्यकर्म करावे, पापकर्मा सोडून द्यावे, अहंकाराचा त्याग करावा म्हणजे कुशल प्राप्त होईल असे बुद्धांनी शिकविले. परस्परांशी झगडून सूड अगुविणान्या हिंसक जगाला बुद्ध भगवानांनी घोषणा करून सांगितले की सूड अगुविल्याने सूडबुद्धी वाढते, क्षमा केल्याने, प्रेमानेच वेर शमते. विजय हा शांतीचा मार्ग नव्हे कारण हार पावलेल्या माणसाच्या हृदयांत शल्य शिल्लकच राहते. आपला हा शांतीचा उपदेश वयाच्या ८० वर्षांपर्यंत जगाला देत ते फिरले आणि शेवटी दुःखामारा नांवाच्या गांवीं अका गरीब भक्ताचे आनिध्य स्वीकारून ते निर्वाण पावले. त्याच्या शिष्यवर्गांनी त्यांच्या शरीराचे अवशेष म्हणजेच अस्था आणि रक्ता ही आपसांत वाटून घेऊन त्यावर साठमेळे स्नप वांधले. ज्या बुद्धाने मारा संसार दूर करी, कर्मांक आहे, दुःखमय आहे, यातून सुटणे हेच निर्वाण असे शिकविले होते, त्याच्याच शरीराच्या अवशेषांसाठी त्याचे शिष्य-राजे पुढे आपसांत लढेन आणि बुद्धाचा उपदेश अका वाजून देऊन त्याची मूर्ती बनवून तिचीच ते पूजा करू लागले. मनुष्याचा स्वतःच्या सत्कर्मानेच निर्वाण प्राप्त करून घेता येतो या बुद्धाच्या उपदेशांवरून बुद्धामाररण्या पुण्यप्रतापी सत्त्वांच्या कृपेनेच निर्वाण प्राप्त होऊ शकले अशी समजूत पसरली, आणि आपली ओद्रेथे ताब्यांत ठेवण्याऐवजी केवळ प्राणीमात्रांची सेवा केल्यानेच निर्वाण मिळू शकले असे लोक समजू लागले.

बौद्ध लोकांनी बुद्ध भगवानांचे चरित्र अनेक प्रकारे वर्णन केले आहे. त्यांच्या जन्माविषयी अनेक दंतकथा लिहिलेल्या आहेत. हिंदुधर्मात जशी अवताराची कल्पना आहे तशी बौद्ध लोकांत बोधिसत्त्वाची कल्पना आहे. अनेकच जीव अर्हतपद प्राप्त करून घेण्याच्या महादिच्छेने अनेक जन्मांत अनेक प्रकारच्या पारामिता म्हणजेच प्राविण्ये अंगां वाणवून घेऊन अंती बुद्ध होता अशी समजूत बौद्ध लोकांत दृढ झाली, बुद्ध भगवानांनी आपल्या पूर्व जन्माच्या कित्येक गोष्टी सांगितल्या होत्या त्यावरून अनेक प्रकारच्या जातककथा रचण्यांत आल्या आणि बुद्धाचा लीला विस्तार वाढला. बुद्धांचे ऐतिहासिक साधे जीवन या नव्या उत्पन्न झालेल्या अनेक प्रकारच्या चमत्कारांत झाकले गेले आणि बुद्धाच्या उपदेशाचे रहस्य त्याच्या चरित्रांत पाहणें कठीण होऊन बसले. तरी अशा जातककथा आणि बुद्ध-चरित्रे



यांवरून त्या त्या काळच्या लौकिक समजुती आणि धार्मिक कल्पना यांचा मात्त्र अतिहास आपल्याला मिळतो.

बुद्ध भगवानांनी आपल्या संघासाठी दूर दृष्टीने अनेक शहाणपणाचे नियम घडविले. संघांत मतभेद झाला असतां कसे वागावे, संघांत घाण शिरूं नये यासाठीं कोण-कोणत्या गोष्टींची सावधगिरी बाळगावी वगैरे अनेक सूचना त्यांनीं केल्या. नियमांचा अतिरेक होऊन मूळ अुद्देश नाहीसा होऊं नये अेवढयासाठीं त्यांनीं आपलें मत अनेक रीतींनीं स्पष्ट केलें. आणि अशा तालमीत तयार झालेल्या आपल्या शिष्यांना धर्मोपदेश करण्याची परवानगी दिली. बुद्ध भगवानांना त्यांच्या वेळच्या जुन्या विचाराच्या लोकांशीं लढावें लागे अितकेंच नव्हे तर जुन्या विचाराचे लोक ज्यांना नास्तिक किंवा पाखंडी म्हणत अशा आपल्यासारख्या दुसऱ्या मुधारकांशींही त्यांना लढावें लागे. या सर्व कारणांमुळे बुद्धांचा अुपदेश निश्चिंत शद्धान्त आणि व्यवस्थित स्वरूपांत ठेवण्यांत आला.

**सामान्य लोकांच्यासाठीं बुद्ध भगवानांनीं खालील नियम सांगितले होतः—**

कोणाची हिंसा करूं नये.  
 अन्यायानें कांहीं घेऊं नये.  
 शारीरिक पवित्रता सोडूं नये.  
 असत्य भाषण करूं नये.  
 चहाडी चुगली करूं नये.  
 कठोर वोलूं नये.  
 निष्कारण बडबड किंवा निंदा करूं नये.  
 दुसऱ्याच्या द्रव्याचा लोभ ठेवूं नये.  
 मनांतून क्रोध काढून टाकावा.  
 मिथ्या दृष्टि म्हणजे नास्तिकता ठेवूं नये.

**भिक्षूंच्यासाठीं—**

ब्रम्हचर्याचें पालन करावें.  
 मादक पदार्थाचें सेवन करूं नये.  
 दुपारनंतर जेवूं नये.  
 नृत्य, गीत आदि अुद्दीपक गोष्टी पाहूं नयेत  
 आणि ऐकूं नयेत.

माळा, गंध वगैरे वापरूं नये.

अंच किंवा मअू बिछान्यावर निजूं नये.

सोन्या चांदीचा स्वीकार करूं नये.

—असे पुरवणी नियम बुद्ध भगवानांनीं घातून दिले होते,

असे भिक्षू आठ महिने देशांत सर्वत्र फिरून धर्मोपदेश करीत आणि पावसाळ्यांत विहारांमध्ये अेके ठिकाणीं बसून धर्माचें अध्ययन आणि चिंतन करीत. धर्मोपदेशाबिहारीत असतां लोकांकडून सहज जी भिक्षा मिळेल तीच खाऊन ते राहतात.

बुद्धांच्या संघांत सर्व जातींच्या शिष्यांना वाव होता. स्त्रियांसाठीं सुद्धा बुद्धभगवानांनीं वेगळा संघ स्थापिला होता. बुद्धांच्या स्त्रीशिष्यांत कपमा, उत्पलवर्णा वगैरे महान् भिक्षुणीं होऊन गेल्या आहेत, त्यांनीं स्त्रीवर्गालाच नव्हे तर पुरुषांनासुद्धां उपदेश करून त्यांना सन्मार्गाकडे वळविले आहे. त्यांच्यामारख्या भिक्षुणींना स्थविरा किंवा थेरी म्हणत.

बुद्ध भगवानांचा संघ ही जगांतील अगदीं पहिली धर्मशीलांची (मिशनऱ्यांची) संस्था म्हणतां येतील.

१९२३

## ४ बुद्ध अवतार

भगवान बुद्धांना आपण श्रीविष्णूचा अवतार मानतो. मला वाटनें तथागताला अवतारच मानायचा असेल तर महादेवाचा अवतार कां मानूं नये ? तो भवपालक नाहीं भवरोगघ्न—भवनाशक आहे. पण शाक्यमुनीला अवतार मानणें हेंच मुळीं मला पसंत नाहीं. अवतार म्हणजे काय ? जगाचें दुःख बघून, ज्ञानाचा लोप पाहून, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त असा परमेश्वर लैकिक रूप धारण करून ' खालीं उतरतो '. माणसांत राहून माणसांप्रमाणें तो खुशाल वागो, पण तो कांहीं माणूस नव्हे; त्याची जातच वेगळी. त्याच्या अनुग्रहानें आपला बुद्धार होत असेल पण त्याचे अनुकरण करण्याची भिच्छा आपल्याला व्हायची नाहीं. आपण कृष्णाचे उपासक वनूं शकतो, पण कृष्णाचें अनुकरण करतांच नये. गौतम बुद्ध अवतार नव्हतं, माणूस होते. जगाचें दुःख पाहून, सम्यक्ज्ञानाचा अभाव पाहून ' ते चढले. ' \* अेक सामान्य—पण श्रद्धावान जीव अनेक जन्म चढत चढत बोधिसत्त्वाचा बुद्ध झाला; मनुष्याचा स्वे वनला; शुद्ध, बुद्ध, मुक्त

\* परमेश्वराप्रमाणें ' खालीं उतरले ' नाहींत !

बनला; आर्य होता, अर्हत बनला. त्याचें जीवन अनुकरणीय आहे. सीता-सावित्री-प्रमाणें बुद्ध भगवानांनी सुद्धां मनुष्य कुठवर चढूं शकतो हें जगाला दाखवून दिलें. श्रद्धा आणि करुणा यांची ते मूर्ति होते. यमराजाच्या घरीं जाणाऱ्या नन्किेताची श्रद्धा बुद्धभगवानांत होती, गुरुकडून ब्रह्मज्ञान मिळवून निर्भय झाल्यानंतर जनक राजा राज्यसर्वस्व सोडायला तयार झाला. गुरुकृपेनें जीवनाचें सार्थक झालें असा विश्वास असल्यामुळे गोपीचंदानें राज्यत्याग केला. पण शाक्य मुनीचा त्याग यादूनहि कठिण होता.

‘ सांसारिक जनांचें दुःख पाहून माझें मन रडत आहे, म्हणून तें दुःख नाहीसें कराव्याचें औषध असलेंच पाहिजे, आणि तें आहे म्हणून मला तें मिळविलें पाहिजे;’ य-महान् श्रद्धेनें—अंतःश्रद्धेनें त्यानें राज्यत्याग केला. हें वारकर्म मनुष्यजातीचें आस्तित्व आहे तोवर गाडिलें जाऊन. युगायुगांतरांतात कवीजन या महाभिनिष्करमणाचा प्रसंग गाणून आपला वाणा पुनत करताना.

संस्थाधीन गृहत्याग पाप झाला आणि आर्यावर्तांत धर्मचक्रप्रवर्तन मुरू झालें. पुरुष भगवानांच्या धन गृहत्याग नाहीं, ‘अनिवादी’ नाहीं, तरी तो सामान्य नीतिवर्तीत नाहीं, त्यानें अहंकाराचा नाश झडडूट आहे आणि निवोण हे त्याचें प्राप्तव्य आहे.

बुद्ध धर्माचें सामाजिक स्वरूप काय होतें आणि त्या धर्माची आर्यावर्तावर काय छाप पडला हा विषय अत्यंत महत्त्वाचा आहे. पण विद्यार्थी मंटे झाले म्हणजे त्याचा विचार करूं शकतार.

बुद्ध भगवानांचें चरित्र वाचून जेन्वाद्या तरुणाच्या मनांत गृहत्याग करण्याचा विचार येतील. त्यानें लक्षांत ठेवावें कीं जो महावीर आहे त्यालाच त्याग करता येतो. ‘समस्वतीचंद्र’ होण्यांत येय नाहीं. ‘जर त्याग कराल तर त्या त्यागाला जायक वना !

ओपेल १९२२

\* ‘समस्वतीचंद्र’ : स्पष्टीकरणासाठी टीप पहावी.

# वोधिजयंती

वैशाख पूर्णिमा

-११- दिवस

गौतमबुद्धांना आज दिवशी जन्म झाले होते. जगांतील दुःखांचे औषध द्रव्यांत नाही, राजसत्तेने नाही, जबरदस्तीने नाही, तर ज्ञानाने, शिष्यपणात आणि शुद्ध जीवनांतच आहे, हे रहस्य सनातन धर्मविद्याचा हा दिवस आहे.

हा सण बुद्धा बुद्धाच्या पुढील लुप्त होऊन जातो. म्हणून तो समाजांत सर्वत्र साजरा केला जाईल असा व्यवस्था झाली पाहिजे.

बुद्धांना शुद्धता आणि ज्ञानाचा ओषध यांचेच या दिवशी विवेचन व्हावे. या दिवसाचा नामणानेच अखंड वाटका वसतिता येतील.

जानेमेद आणि विशेषतः त्यात असलेला पुण्यजीनपणा हे हिंदुधर्माचे खरे लक्षण नव्हे हेहि आज समजावून दिले पाहिजे. शेवटी बुद्ध भगवानांच्या उपदेशांतील सुलभ भाग हिंदुधर्माचे आपल्यास करण्यास प्रवृत्त करणे आहे ते समजावून घ्यावे.

‘धम्मपद’ मधील नांगली नांगली वचनें विशाखांना तोंडपाठ करवता येवीत.

## चोखा डोंगा परी भाव नोहे डोंगा । : : १३

( वैशाख व० १३ )

मंगळवेढ्याच्या भोंवतीं तट बांधावयाचा होता. वादशाहानें गरीबांना वेठीस धरून आणलें आणि त्यांचेकडून गांवाच्या रक्षणासाठीं भिन बांधून घेतली. ज्यांना गांवांत राहाण्याची परवानगी नाहीं, ज्यांनी गांवांतील रस्त्यावरून चालावयाचें तें देखील चोरासारखें आणि राहावयाचें गांवाबाहेरच्या उकिरड्यावर अशा हरिजनानांदेखील गांवाची भिन बांधण्यासाठीं वेठ करावी लागली. स्वतःला ज्या करुसावर चढविणार होते तो करुस ज्याप्रमाणें येथूला स्वतःलाच अचलून न्यावा लागला त्याप्रमाणें स्वतःचा गांवांतून वहिष्कार करणाऱ्या भितीदेखील या हरिजनानां स्वतःच बांधून द्याव्या लागल्या.

गवंड्यांनी गफलत केली असेल, अंमलदारांनी घाओ केली असेल, चिखल पातळ झाला असेल—कोणत्याहि कारणांनी असो, पण भिन पडली आणि हरिजनांची एक तुकडी त्या भितीखालीं गारद झाली. चार लोक चुटपुटले, दोन चार हळहळले पण त्यांनी मरणाऱ्या लोकांना त्या ढिगाखालीच पडूं दिलें. या भ्रमजीवी गरीबांची झोपमोड कां करा ? त्या मातीखालीं त्यांचीं शवें कुजलीं, त्यांची माती झाली आणि केवळ हाडेंच उरलीं. स्वतःच्या मातीमध्ये मिसळून राहाणाऱ्या या हाडांना केवढी शानि प्राप्त झाली असेल !

पण या त्यांच्या शांतीचा भंग करणारा एक प्रसंग घडला. कांढीं जिवंत अभंग वाचून ज्याला स्फूर्ति झाली असा एक संत शोध करीत करीत मंगळवेढ्याला आला आणि म्हणूं लागला, ' चोखोबांचीं हाडें येथें पडलीं आहेत, मला त्यांना गतिःपायची आहे. ' त्यानें तो प्राचीन ढीग खणावयास सुरुवात केली. अकामागून अे ह'डें सांपडूं लागलीं. तो संतपुरुष एक एक हाड घेऊन आपल्या कानाशीं लावी आणि ज्या हाडांतून ' विठ्ठल विठ्ठल ' हा ध्वनि ऐकूं येओ तो निराळीं काढी. असें करीत करीत त्यानें चोखोमेढ्याचीं सगळीं हाडें मिळविलीं आणि त्यांवर एक समाधि बांधली.

आज त्या हाडांचीदेखील माती झाली असेल. पण ' विठ्ठल विठ्ठल ' चें गाणें अखंड चालविणारे चोखोबाचे अभंग महाराष्ट्राच्या अनास्थेच्या ढिगाखालीं दडून

राहिल्ले आजहि सांपडतील. कोणी-कोणी त्यांना गोळा करून पुस्तकाच्या पुठव्यांत मूठमाती दिली आहे पण तशानें कांहीं चोखोबाचें श्राद्ध होणार नाहीं.

चोखोबाची वाणी शुद्ध मराठी, करुणरसानें थबथबलेली, जातीवर होणाऱ्या जुलमानें वैतागलेली पण आश्र्वरी कृपेविषयीं आत्मविश्वासानें बोलणारी अशी आहे. वणें आणि जाति, शास्त्रें आणि पुराणें हीं सर्व वरचीं सोंगें आहेत, यांना भुलूं नये, आंतील मर्म ओळखलें पाहिजे असा स्वकीयांना आणि परकीयांना--होय, आपण सर्व अत्याचारी हिंदू बिचाऱ्या हरिजनांना परकीयच नाहीं का ?--अपदेश करणारी चोखोबाची वाणी आपल्या कंठांत आणि हृदयांत अखंड वसत राहिल असें आपण कांहींतरी केलें पाहिजे. हिस्तानें म्हणे मनुष्यजातीसाठीं प्रायश्चित्त केलें, कदाचित् तसें असेल. पण चोखोबाच्या नम्र सेवेनें महाराष्ट्रांतील हरिजनांसाठीं अगदीं यत्नवाढव्याजानें प्रायश्चित्त केलें आहे यांत शंका नाहीं. चोखामेळ्याची पुण्यतिथि साजरी करावयाची म्हणजे त्यादिवशीं सर्व हरिजनांना बोलावून त्यांचेकडून भजन करावयाचें आणि आपण बसून तें ऐकावयाचें आणि ते जो प्रसाद देतील त्याचें सेवन करून त्यांना खात्री करून द्यावयाची कीं अितभुत्तर ते परकीय नसून आपले स्वकीयच आहेत.

# मृत्यु विरुद्ध प्रेम

: : १४

( ज्येष्ठ शु. १५ )

वनवासाचे कष्ट भोगणाऱ्या त्रैपरीला आश्वासन देण्यासाठी अर्पणींनी ज्या अनेक मोठ्या सांगितल्या, त्यांत सीतेची कथा आणि त्यानंतर मावित्तीची कथा सांगण्यांत धृष्टोनी किती दूर औचित्य दाखविले ! सीता, सगवतरी आणि अुमा हा आर्य रमणाचा त्रिविध आदर्श आहे.

मद्रदेवाच्या राजा अश्वपतीना अपत्य नाही. राजा नगरवाणीयांना तसाच ग्रामवास' लोकांना अत्यंत प्रिय आहे. अंतःकरणाने शुदार, सत्यप्रतिज्ञ, जितोन्द्रिय आणि कृपाशील अशा राजांनी पांगरा अवाधित रहावी अशी चिंता प्रजेलाहि असणारच. राजाने अनेक प्रकारे कष्टीण तपस्या करून आणि शिष्टाचारें ठमन करून परमात्म-शक्तीची आराधना केली.

जीवितकाल असा जन्माने पूर्ण होत नसत. समाजसेवा आणि राष्ट्रसेवा पिढ्यान्-पिढ्या वाढते, कुलधर्म संस्कारसंपरागत होता, तेव्हांच अपोक्षित करण्यास होते. कुलव्रत सतत वाढत असावा असा राजाने संतनीची अिच्छा धरली. ' संतानं परमो धर्मः ' कुलधर्म पुत्रांनाच पाळता येतो, पुत्रांवांचून गति नाही, असे समजून राजाने पुत्राची अिच्छा बाळगली. पण परमात्म्याला दाखवावयाचे होते की, धर्माचा भुत्कर्ष करण्यासाठी पुरस्कारप्रमाणे स्त्रियांहि गतार्थ होनात. पुत्र नागणाऱ्या राजाला अक कन्यारत्न मिळाले. पुत्रासाठी तळमळणाऱ्या मातापित्यांना जेव्हां कन्याप्राप्त होते तेव्हां तत्वे लाड आणि पाळनपोषण पुत्रासारखेच झाले तर त्यांत काय नवल ? सावित्री याच प्रकारे संस्कारयुक्त स्वतंत्रतेच्या वातावरणांत वाढली. देवकन्येला गोमणामारस्यं शुद्धम शिक्षण दिल्या मिळाले. त्यामुळे मुलगी तेजस्विनी झाली. पावित्रता, निर्भयता आणि अुच्च संस्कारिता या गुणांमुळे जिकडे तिकडे मुलीचें असे कांहीं तेज पडूं लागले की, तिच्यापुढे मळमळे राजपुत्र फिकके दिसू लागले. सावित्रीला आपण लायक आहेत असा आत्मविश्वास अेकाहि राजपुत्राला वाटेना. प्रेम करायला यावे त्याने पूजाच करूं लागली. मुलगी मोठी झाली. सर्व प्रकारे संस्कारसंपन्न दिसू लागली. शरीरानेहि अंगपरत्यंग पूर्णविकसित आणि प्रौढ. राजाला वाटूं लागले की, वंशविस्तार झाला

नाहीं तर अितक्या संस्कारांची परंपरा राहाणार कशी ? पित्यानें जाणून बुजून मुल्लेला स्वतंत्रतेचें शिक्षण दिलें होतें. झणून विश्रामपूर्वक त्यानें सावित्रीला मांगितलें कीं, “कपटियांच्या रिवाजाप्रमाणें राजपुत्रांनीं तुझ्यासाठीं मागणी घातली पाहिजे. पण कोणालाहि हिंमत होत नाही. तुला आपल्या कुलव्रतार्चा माहिती आहे. सर्व शुभ संस्कारांनीं तूं युक्त आहेस. तूं तुझ्या मनानें तुझा पति पसंत करून मला सांग. मी त्या गोष्टींना विचार करून तूं निवडलेल्या तमणालाच तुझा अर्पण करीन. तुझ्या विच्छेदप्रमाणे तूं वर शोधून काढावास अशा माझी इच्छा आहे. हा मार्ग रुढ नमला तरी धर्ममंसत आहे असें व्याख्याणांनीं मला सांगितले आहे. या बाबतीत मी सुदामीन राहिलों तर देव मला उपका देतील.”

मुलांचे पित्याच्या वृद्ध मंत्र्याच्या परोवर घेऊन प्रयाण केलें. सावित्रीला योग्य वर मदत मिळण्यासारखा नव्हताच. ती अनेक नगरांत, देशांत आणि वनांत फिरली. अशी यात्रा करणांन अत्यंत मोठाचें शिक्षणहि तिला मिळत गेलें. शेवटीं तिला स्वतःचा योग्य असा पति मिळाला. पित्याच्या संननिवाचून पुढच्या गोष्टी ठण्णार नसल्यामुळ, सर्वत्रिं सरळ घरी परत आली. पित्याला भेटायला जाणे तो त्रिलोक्यांत ज्यांचा अप्पनितला विचार आहे पणें भगवद्भक्त, जनार्दनो नारदमुनि तथे आलेले तिला दिसले. नारदानें आगम्य म्हणजे धामेक आणि लौकिक ज्ञानाची मेजवानी; गुण आणि असुर, गंधर्व - किन्नर आणि मनुष्ये सरळचजण सर्वभूतहितरत अशा नारदावर प्रेम करणार. सावित्रीने पित्याला आणि व्यग्रपुत्र नारदाला नमस्कार केला. नारदानें कुशल प्रश्न करून राजाला विचारले; “कन्या आतां वयांत आली आहे, तिचा विवाह केव्हां करणार आहां?” राजानें आपला आदारी सांगितला आणि म्हटलें, “सावित्री आपला वर शोधण्यासाठीं गेली होती ती आतां व आली आहे. तिच्याकडून हकीकत ऐकूं या.” सावित्री झणाली, “शाल्व देशाच्या युमत्सेन राजाचें नांव प्रख्यातच आहे. आज ते राज्यभ्रष्ट होऊन वनामध्ये वनवाशाप्रमाणें राहत आहेत. त्यांच्या डोळ्यांना अंधत्व आलें आहे. राज्यभ्रष्ट झाल्यानें जे कष्ट भोगावे लागतात त्यांत दाखन तपश्चर्येची त्यांनीं भर घातली आहे, तरी त्यांच्या तितिकपेचां भंग झालेला नाही. त्यांचा मुगील पुत्र सत्यवान हाच मला योग्य वर आहे असें मी निश्चिंत केले आहे आणि मनानें मी त्याला वरलें आहे. नारद ऋषींच्या तेाडून अकदम दुःखोद्गार निवाला; “अरेरे; वाआट झालें.” राजाला वाटलें कीं स्वयंवरांत मुलीची कांहींतरी फसगत झाली. अितक्यांत राजाच्या मुखावरील विंता पाहून नारद म्हणाले, “माता आणि पिता अत्यंत सत्यनिष्ठ



असल्यामुळे ब्राह्मणांनीं मुलाचें नांव सत्यवान ठेवलें आहे. जंगलांत राहिल्याराहिल्या त्यानें शिक्षणहि चांगलें मिळविलें आहे. मातीचे घोडे आणि नाना प्रकारच्या वाहुल्या तो लहानपणीं अतिशय चांगल्या बनवीत असे आणि चित्रेंसुद्धां अशीं कांहीं मुंदर काढीत असे कों त्याचें नांव ' चित्राश्व ' पडलें आहे. ”

“ लहानपणचे गुण मोठेपणीं टिकतातच अशी खात्री कुणी द्यावी ? ” राजा ह्मणाला “ पण आज हा राजपुत्र कसा काय आहे ! सत्यप्रिय, तेजस्वी, बुद्धिमान कृपासंपन्न, शूर आणि पितृभक्त अितके गुण त्याच्यांत नसतील तर माझ्या मुलीने आपल्या निवडीन चूक केली असेच मानावें लागेल. ” नारदांची वाग्धारा सुरू झाली. सत्यवानाचें स्तुतिस्तोत्र गातांना अेकाहि राजर्षीची उपमा शिद्धक राहिली नाही. सत्यवान रूपवान्, अुदार आणि प्रियदर्शन तर होताच पण राजाज्ज आवश्यक असे सर्वेच गुण नारदांना त्याच्यांत दिसले होते आणि तेजस्वितेजोवरच सरळपणा आणि मर्यादशीलता या त्याच्या विशेष गुणांवद्दल शीलवृद्ध आणि आचारवृद्ध माणसें त्याची प्रशंसा करतात, असें आणखी नारदांनी सांगितलें.

“ मग वाओट ते काय झाले ! ”

आंवट चेहेरा करून नारद म्हणाले, “ या सर्वगुणसंपन्न राजपुत्राचें आतां अेकव वर्ष आयुष्य शिद्धक अुरलें आहे, त्याचें मरण टाळण्याची शक्ति कोणामध्येहि असल्याचें मला दिसत नाहीं. ” “ मग असला जांवडी कोण पसंत करतो ? ” राजानें आणि नारदांनीं मुलीला सांगितलें कीं “ दुसरा वर शोधून काढणें हेंच योग्य. ” शीलपरायण राजकन्येनें या सूचनांचा यत्किंचितहि स्वीकार केला नाहीं. ती म्हणाली, “ सज्जनांचा हा मार्ग नव्हे. ज्याला मी अेकवार वरलें तो दीर्घायु असो वा अल्पायु असो, सगुण असो वा निर्गुण, त्यालाच मी वरलें आहे. आतां दुसऱ्याला वरणें शक्य नाहीं. केणत्याहि गोष्टीचा प्रथम मनांत संकल्प होतो; त्याप्रमाणें शद्दांत त्याचा उच्चार होतो, आणि त्यानंतर त्याप्रमाणें कृति होणे. मनाच्या निश्चयावर वाणी आणि कृति अवलंबून असतात आणि या दोहोंची प्रेरणाहि त्यांतूनच असते, म्हणूनच मन हेंच माझ्यामते प्रमाण आहे. प्रमाण मे मनस्ततः । ” अशा धार्मिक निर्णयापुढें राजा नरी काय बोलणार, ? आणि नारद तरी काय सांगणार ? सावित्रीच्या निश्चयाची प्रशंसा करून तोंडांनून बाहेर पडले ते आशीर्वाद देऊन नारद संचारार्थ निघाले, आणि राजानें द्युमत्सेनाच्या आश्रमाकडे जाण्याची तयारी केली.

पथम तर द्युमत्सेनाला सारे आश्चर्यवतच वाटले. राज्यभ्रष्ट झालेल्या, वनवासी अंध राजाच्या पुत्राला सावित्रीसारखी अतृकृष्ट आणि तेजस्विनी कन्या देण्यासाठी तिचा पिता येत आहे याहून अधिक अद्भुत ते काय ? अश्वपतीने उत्तर दिले “ माझी कन्याहि जाणते आणि मलाहि माहीन आहे कीं मुख आणि दुःख हीं दोन्ही अस्थायी आहेत. दोहोंचाहि नाश होतो. मज्जनानीं त्यांचा विश्वास धरूं नये. गौरवाच्या दृष्टीने आपणां दोघांचीं कुळें समान आहेत, आणि माझ्या मुलीने विचारपूर्वक स्वतःच हा संबंध पसंत केला आहे. ”

आश्रमांत होअूं गेलेल अशा पद्धतीने विवाह झाला. सावित्रीने पित्याला वाओट वाटूं नये अेवढ्यासाठी पिता होता तेवरच अलंकार घातले. अश्वपतीची पाठ फिरतांच सावित्रीने सारे अलंकार अतृहन तपस्विनीचा वेप चढविला; आणि शुद्धिपा, सदाचार, नम्रता आणि अिद्रियदमन हा आपला आचारधर्म ठरवून पसन्नतापूर्वक राहून सर्वांना तिने पसन्न केले. सासू, मासरा आणि सर्व संघंधीजननां त्याप्रमाणे पतीला आपल्य सदगुणांनीं संतुष्ट करून आश्रमलक्ष्मीप्रमाणे ती नेथे शोभूं लागली. संस्कारी, धर्मपरायण! आणि जितेंद्रिय अशा पत्नीच्या सहवासांत मत्तवानाचा आनंद वाढत राहिला. सावित्रीला सेवेचा आनंद होतच, पण नारदांनीं सांगितलेलें भविष्य या आनंदाला जाळून भस्म करीत होते. महिने अुलटले आणि दिवस अुरले. आतां तर चारच दिवस शिल्लक राहिले. सावित्रीने आहार-निद्रेचा त्याग केला. द्युमत्सेन राजा घाबरला. तीन दिवस उभेंच राहाण्याचें सावित्रीचें व्रत होतें तें पार कसें पडणार? सावित्रीने उत्तर दिलें, “ तात, आपण चिंता करूं नये. मी निश्चयपूर्वक व्रत मुरू केले आहे आणि निश्चय हेंच कार्यासद्धीचें कारण आहे. व्यवसायश्च कारणम् । ”

मुशील सावित्रीला विरोध कोण करणार? तीन दिवस हां हां म्हणतां निघून गेले शेवटच्या रात्रीचा अेकक वपण सावित्रीला कसा गेला असेल? सकाळ होतांच सावित्रीने नित्यकर्म संपवून प्रदीप्त अग्नीमध्ये हवन केलें, वडिलांना नमस्कार केला. सर्वांनी तिला आशीर्वाद देऊन भोजन करण्याचा आग्रह केला. सावित्रीला आहारनिद्रादि देहधर्म कसे बरे मुचणार? तिने नम्रपणे सासूसासऱ्यांना उत्तर दिले कीं सूर्यास्तानंतर अमुक अिष्ट वस्तु पूर्ण झाल्यानंतरच जेवण करायचें असा माझा संकल्प आहे. अितक्यांत खांद्यावर कुऱ्हाड टाकून फळे आणि लाकडे आणण्यासाठी सत्यवान निघाला. सावित्रीने काकुळतीने सांगितलें कीं तुम्हीं अेकटे जाअूं नका. मी तुमच्याबरोबर येते. आज

मुमच्यापासून दूर राहायला माझा जीव घेत नाही. सावित्रीला गाढ अरण्यांत फिरण्याचा सराव कोठून असणार? आणि शिवाय आज तिच्या उपवासाना चौथा दिवस. तिला चालता मुद्दधां यायचे नाही. तिला परवानगी कोण देणार? पण सत्यवानाचा नफार सावित्रीने ऐकलाहि नाही. शेवटी सत्यवानाने आर्धावापावर ही गोष्ट मापविली सावित्रीने अत्यंत नम्रतापूर्वक पण दृढपणे आपला मनीषा मासूगामऱ्यांपुढे नांठली मासूगामऱ्यांनी विचार केला, मुलीने संबंध वपात ऐकलाहि कसला याचना केली नाही आज तिला नको कसे म्हणावे! त्यांनी शेवटी अनुज्ञा दिली.

दोधे वनांत निघाले. वनवासाच्या काव्यमय जीवनांत अरण्याची शोभा लक्ष्य घेधून घेतेच. वाटेने मेर नाचत होते आणि गात होते. अनेक प्रवाह आपल्या निमळ जलाने कलध्वनि करीत होते, आणि त्रिकडे त्रिकडे लहान मोठे वृक्ष अमन्य फुलांनी प्रफुल्ल झाले होते. सत्यवान प्रत्येक रमणीय वस्तूकडे सावित्रीचे लक्ष्य घेथी आणि आपला आनंद द्विगुणित करीत चालला होता. सावित्रीहि पतीच्या आनंदांत मिमळण्याचा हाजील तितका परयत्न करीत होती. नशीवाचे फांसे पडण्याच्या वेळी आपण पतीबरोबर आहोत अवेडेच तिला समाधान होते. पण प्रतिवपण तिला कल्पान्नाप्रमाणे वाटत होता. जणू तिच्या अंतःकरणाने दोन तुकडे होत होते.

वनांत ते दोघे पोचले आणि सत्यवान फळे घेऊ लागला अवेढ्यांत सावित्रीने सुगंधी फुले तोडून त्यांची अेक माळ बनविली. आवश्यक तितकी फळे गोळा झाली तेव्हा सत्यवानाने कुन्हाड घेऊन वाळलेली लाकडे तोडायला मुरुवात केली. हे काम त्याला कांही नवीन नव्हते. सत्यवानाचे शरीरहि चांगले कमलेले होते; पण कोण जाणे कशाने, आज त्याच्या संबंध शरीराला घाम सुटला. तो थकून गेला. त्याच्या डोक्यांत तीव्र वेदना होऊ लागली. अेकारपणे पतीकडे पाहता असणाऱ्या सावित्रीच्या लक्षांत ही गोष्ट आली. तिने जवळ जाऊन प्रेमपूर्वक विचारले, “ आज कांही विशेष थकवा आल्यासारखा वाटतो ? ” सत्यवान आपला थकवा दाबून टाकू पहात होता. वेदनाहि लपविण्याची त्याची अिच्छा होती, पण जेव्हा सावित्रीने अत्यंत प्रेमाने विचारिले तेव्हा त्याला राहवले नाही, तो म्हणाला “ होय, आज कांही तरी मला होत आहे खरे. डोक्यांत शूळ अुठला आहे आणि चित्तहि अस्वस्थ झाल्यासारखे वाटते. ” थोड्या वेळाने तो पुनः म्हणाला, “ आतां तर अुमेमुद्दधां राहावत नाही. जरा निजले तर बरे वाटेल. ” सावित्रीने तेथेच जमिनीवर वमून सत्यवानाचे

डोकें आपल्या मांडीवर घेतलें. सत्यवानाला थोडासा आराम वाटला पण सावित्रीला ही घडी प्रलयकाळासमान भासूं लागली. भगवान नारदांनीं भाकित केलेला प्रसंग जवळ आला अशी तिची खात्री झाली. तिचें हृदय, मन आणि आत्मा तिच्या डोळ्यांत येऊन सत्यवानाकडे पाहूं लागले. चार दिवसांच्या उपवासाने दृष्टि खोण व्हायला पाहिजे, पण सावित्रीची तपस्याच अतकी अज्ज्वल की त्याच घटकेला तिला दिव्य दृष्टि प्राप्त झाली.

तिला दिसलें कीं समोरून कोणी अेक मध्य पुरुष जवळ येत आहे. त्याचीं वस्त्रें लाल हातां. डोक्यावर चक्राकारा करीट होता. हा पुरुष शरीरानें अंचापुरा आणि सुंदर होता. तेजानें जणूं प्रतिसूर्यच. त्याला श्याम म्हणण्यापेक्षां गौर म्हणणेच अधिक योग्य. त्याच्या हातांत भयंकर पाश होना. दृष्टि टाकतांच आदर उत्पन्न व्हावा अशी त्याची गंभीर आकृति पाहून सावित्री अुमजली. तिनें हळूच पतीचें डोकें ग्याळी ठेवलें, आणि त्या दिव्य पुरुषाविषयीं आदर दर्शविण्यासाठीं ती अुठून अुभी राहिली. सावित्रीनें विचारलें, “ आपली काया मानुषी नाही, आपण कोणी देवी पुरुष आहांत, अवडें मला कळें. पण आपण कोण आहांत आणि काय अुद्देशानें आला आहांत अवडें सांगण्याची कृपा कराळ ! ” त्या दिव्य पुरुषानें अुत्तर दिलें, “ हे सावित्री, तूं यतिव्रता आहेस आणि तपोनिष्ठ आहेस, म्हणूनच तुला मी दिसलों आणि म्हणूनच तुझ्याबरोबर मी भाषणहि करतो. मी पितरांचा अधिपति यम आहे असें समज. तुझ्या पतीचें आयुष्य नष्ट झालें आहे म्हणून त्याला न्यायला मी आलों आहे.”

“ भगवन्, मनुष्यप्राण्याला नेण्यासाठीं तर आपले दूत येतात. आज आपण स्वतः कां वरं येणे केले ? ”

“ आम्हांला माणसाची कदर असते; हा तुझा मन्ववान धर्मसंग्रह आहे, रुपयान आहे आणि गुणांचा जणूं महासागरच आहे. याला घेऊन जायला मला स्वतःलाच आलें पाहिजे ना ? ”

असें बोलत बोलत यमराजानें मन्ववानाच्या शरीरांतून त्याचा जीवात्मा आपल्या पाशांनें ओढून काढला. लगेच सत्यवानाचें शरीर निस्तेज पडलें, अवासाच्छ्वास बंद झाला, मुखावरील कांति अुत्तरली आणि सर्व अवयव ठिले पडले. यमराजानें सत्यवानाच्या जीवात्म्याला आपल्या ताव्यांत घेऊन दक्षिणदिशेचा रस्ता धरला. यम-

नियमांनीं सर्व सिद्धी प्राप्त झाल्या अराल्यामुळे सावित्रीहि यमराजाच्या पाठोपाठ चालू लागली. तिच्या हृदयांत दुःखाचा महासागर असल्या होता. सावित्रीला मागो-माग येतांना पाहून यमराज ममतेने म्हणाले, “ सावित्री, आतां तूं परत जा; आणि सत्यवानाचे और्ध्वदेहिक कर. पति जिवंत आहे तोवर पत्नीने त्याच्या बरोबर राहावे या धर्माचे तूं पूर्णपणे पालन केले आहेस. पतीच्या अृणांतून तूं मुक्त झाली आहेस. पतीच्या पाठीमागे जेथवर गेलें राहिजे तेथवर तूं गेलीस. आतां परत जा. ”

“ मी कशी बरे मागे जाऊं ? जिकडे माझे पति तिकडे मी. सनातन धर्मानेच ही व्यवस्था घालून दिली आहे. तप, गुरुभक्ति, पतिप्रेम, व्रत आणि आपला अनुग्रह यामुळे माझी गति अंकुठित आहे. आतां मी पतीला कसे वरें सोडूं ? आपल्याल मला परत लावून देतां यायचें नाहीं.”

सावित्री धर्मानुसार बोलत असलेली पाहून यमधर्म संतुष्ट झाले. तेव्हां सावित्री पुढें बोलू लागली:

“ शहाणीं माणसे सांगतात कीं सात पावलें चालल्याने किंवा सात शब्द बोलल्याने सज्जनाशीं मैत्री बांधली जाते. या मैत्रीच्या अधिकारानें मी आपल्याला काहीं विनविलें तर आपण कैकून घ्याल ? ज्ञानसंपन्न लोक म्हणतात कीं चारी आश्रम धर्माचरणाला योग्य आहेत. आणि धर्माचरण हाच आत्मज्ञानाचे साधन आहे. सज्जन असेंहि सांगतात कीं चारांपैकीं काणत्याहि अंका आश्रमाचे उत्तम रीतीने पालन केलें तर बाकीचे आश्रमधर्म आपोआप त्याच्या मागोमाग येतात. आणि म्हणूनच आश्रमांतर करण्याची विच्छा बाळगण्याची काहींहि जरूर नाहीं, असें धर्मज्ञ लोकांनीं सांगून ठेवले आहे अशा स्थितींत निर्दोष रीतीने जेथे आम्ही गृहस्थधर्म चालवीत आहों तेथे तुम्ही त्याचा विध्वंस कां बरें करावा ? माझ्या पतीला कां बरें घेऊन जातां ? ”

सावित्रीची अशी संस्कारी आणि युक्तियुक्त वाणी कैकून धर्मज्ञ यमराजांना अत्यंत संतोष झाला. ते म्हणाले, “ हे अनंदिते, हे सत्यवानाचे जीवित सोडून दुसरे जें मागशील तें मी तुला देतां. पण तूं आतां परत जा. तुला ग्लानि येत आहे, आतां अधिक श्रम घेऊं नको ”

“ पतीच्या सन्निध असतांना मला ग्लानि ? माझ्या पतीला जेथे तुम्ही घेऊन जाल तेथे मी आहेच असें आपण समजा. सज्जनाशीं अेकवार श्रेष्ठ समागम झाला तर

त्याला संगत म्हणतात. असा समागम वाढला म्हणजे त्याला मैत्री म्हणतात. तुमच्यासारख्या धर्मेराजाबरोबर झालेला समागम व्यर्थ नाहीच जायचा. ”

“ माझ्या अंतःकर्णाला आवडेल आणि ज्ञानी लोकांच्या बुद्धीलाहि वृद्धिंगत करील अशी हितकारी वाणी तू बोलत आहेस. या सत्यवानाच्या जीविताखेरीज वाटेल तो वर तू मागून घे. पण आतां तू मागे फीर. व्यर्थ श्रम नको घेअस. ”

“आपण सर्व पजेला नियमांनी बांधले आहे. म्हणूनच आपण वाटेल त्याला स्वेच्छेने घेऊन जाऊं शकतां. मीही त्याच नियमाला वश होऊन पतीला अनुसरते आहे. आपण मला माघारीं कसे लावून देणार ? कोणत्याहि प्राण्याचा मन-वचन-क्रियेने द्वेष न करणे, दोह न करणे, अलुट त्याच्यावर अनुग्रह करणे हा तर सज्जनांचा सनातन धर्म आहे. सामान्य माणसांतहि हीच चाल आपल्याला दिसून येते. जे सामर्थ्यसंपन्न आहेत ते किती मृदु आणि कृपावान असतात बरे ! सज्जन हे आपल्या शत्रूवर सुद्धा दयाच करतात. ”

“ सावित्री, तृपेने पीडलेल्या माणसाला शीतल जल मिळावे तशासारखी धर्मरहस्य प्रगट करणारी तुझी ही वाणी मला तृप्तिकारक वाटते. हे कल्याणि, या सत्यवानाच्या जीविताशिवाय दुसरा वाटेल तो वर तू मागून घे आणि परत जा. तू किती बरे दूर आलीस ! ”

“ माझ्या प्रिय पतीच्या संनिध असल्यामुळे मला हे स्थान मुळीसुद्धां दूर नाही. आणि जेथे मन पोचू शकते ते स्थान काय दूर म्हणतां येतील ? वाटेने चालत चालतां माझ्या कांदां गोष्टी तर आपण ऐका. भगवान् सूर्यनारायणाचे आपण परताप-शाली पुत्र आहां. मृत्युलोकांतील सर्व लोकांसाठीं सारखाच धर्म आपण लागू केला आहे. त्याला अनुसरूनच लोक चालतात. म्हणूनच हे आश्रवा, लोकांत धर्मेराज म्हणून आपली ख्याति आहे. खरोखर, धर्मेनिष्ठ सज्जनावर माणसाचा जितका विश्वास असतो तितका स्वतःवरहि नसतो. प्रत्येक मनुष्य सज्जनांविषयी प्रेम ठेवतो. सज्जन हे प्रेममूर्ती असतात. म्हणून प्रत्येकाचा त्यांच्यावर विश्वास असतो. ”

“ भद्रे, असे भाषण मी आजपर्यंत कोणाच्याहि तांडून ऐकलें नव्हतें. मी संतुष्ट झालें आहे. अक या सत्यवानाचे जीवित सोडून बाकी वाटेल तें तू मागून घे. आतां तू किती दूर येणार ? तुझ्यासारख्या राजकन्येला अतिके श्रम योग्य नव्हेत. ”

सावित्रीने आपले भाषण पुढे चालविले: “ सज्जनांचे धर्माचरण नेहमी अढळ असते. धर्माचरणांत ते कधी माघार घेत नाहीत, आणि धर्माचरण करतांना ते दुःखाचाहि अनुभव करीत नाहीत. सज्जन सर्वदा निर्भय असतात. आपल्या सत्याच्या योगाने ते सूर्याचे रक्षण करतात. आपल्या तपोबळाने ते भूमीला टिकवून धरतात. हे धर्मराज, होअून गेलेल्या आणि आजच्या वर्तमान सर्व लोकांना आधार फक्त सज्जनांचाच आहे. श्रेष्ठ लोक याच रस्त्याने गेले आहेत असे स्मरण करून सज्जन परकार्यांत रत राहतात, आणि मोबदल्याची अपेक्षा ठेवीत नाहीत. सज्जनांचा समागम निष्फळ होत नाही, त्यांच्याकडून मिळालेले द्रव्य नष्ट होत नाही. हा धर्म अबाधित असल्यामुळे सज्जन हेच विश्वाचे संरक्षक होत. ”

“ हे पतिव्रते, तू धर्माचे हृदयच माझ्यापुढे उघडे केले आहेस. जसजशी तुझी पवित्र वाणी ऐकू लागतो तसतशी तुझ्याविषयां अत्कृष्ट भाक्ति माझ्या हृदयांत उत्पन्न होत जात आहे. तुला अिच्छेला येतील तो वर मागून घे. ”

सावित्रीचे काम झाले. ती अत्साहाने म्हणाळी:

“ भगवन्, आतां पावेतो जणू माझ्या पापांचे फळच माझ्यापुढे अुभे असावे तसे ‘ सत्यवानाच्या जीविताला सोडून ’ हे वचन मला ऐकावे लागत होते. ते आपल्या या वचनांत नाही. मी धन्य झाले. सत्यवान फिरून जिवंत व्हावे हे माझे मागणे आहे. कारण पतीवांचून जगणे हे मरणतुल्यच आहे. पतीला सोडून मुखाची, लक्ष्मीची अथवा स्वर्गाचीहि मला अिच्छा नाही. पतीचा वियोग सहन करून जगणेहि मला आवडणार नाही. ”

जे कालत्रयीहि टळायचे नाही ते सावित्रीच्या धर्मनिष्ठेने आणि ऐकनिष्ठ प्रेमाने टळले. यमराजांनी आपला पाश सोडून दिला आणि म्हटले: “ हे कुलनंदिनी कल्याणी सावित्री, घे, या तुझ्या पतीला मी सोडून दिले. आतां हा निरोगी होअून तुझे मनोरथ पूर्ण करीत चारशे वर्षेपर्यंत जगेल आणि तुझ्या सहाय्याने त्याला धर्मप्राप्ति होईल. सत्यवान धर्माचरणामुळे पृथ्वीत सर्वत्र ख्याति पावेल, आणि अनंत कालापर्यंत तुझी कीर्ति या लोकांत अनर होईल, तुला प्रिय असा वर तर मी तुला दिला पण याच्या अगादर चार वेळां मी तुला. वर देण्याचे कबूल केले आहे, त्याबद्दल

तू कांही मागून घेणार नाहीस तोंवर मी तुझ्या बंधनांतच आहे. मला कृपा करून वचनमुक्त कर. ”

आतां काय सावित्रीला मागण्यासारखें पुष्कळ मुचण्याजोगें होतें. आपल्या सासऱ्याला पुनः दृष्टि प्राप्त व्हावी, त्याचें राज्य त्याला परत मिळावें, पित्याला पुत्र नाही त्याला पुत्र व्हावा असें पुष्कळ पुष्कळ तिनें मागून घेतलें. माणसाजवळ मागायचें अमलें तर संकोच धरायचा !

यमराज सत्यवानाला सोडून स्वतःहि मुक्त आणि संतुष्ट झाले आणि त्यांनीं आपल्या मंदिराकडे प्रयाण केलें. सावित्री पतीचें शव जेथें पडलें होतें तेथे परत आली आणि तिनें पतीचें डोकें पुनः मांडीवर घेतलें. त्या पतिव्रतेंच्या हाताचा स्पर्श होतांच सत्यवान पुनः सजीव झाला आणि डोकें ओघडून अत्यंत प्रेमपूर्वक सावित्रीकडे पाहूं लागला.

अठल्याबरोबर सत्यवान म्हणाला, “कितीवेळ मी निजून राहिलों हा ! तूं मला वेळेवर कां वरे ओढविले नाहीस ! आणि मला ओढून घेऊन जाणारा तो श्यामवर्ण पुरुष कुठें आहे. ? ”

त्या वेळीं सावित्रीनं किती हर्षभरानें बोलली असेल ! मृत पतीला पुनः जिवंत होऊन प्रेमभरानें बोलतांना ऐकून तिला केवडा आनंद झाला असेल ! ती म्हणाली : “आपण पुष्कळ वेळ निजला. प्रजेचें संयमन करणारे यमराज आपल्याला सोडून निघून गेले आहेत. आतां थकवा ओतरला असला तर उठावें हेंच बरें. हा पहा, चट्टकडे अंधार पसरायला लागला आहे. ”

सत्यवान ओठला. ओठून अिकडे तिकडे पाहूं लागला. विसरलेली गोष्ट आठवावी तसा संबंध वनप्रदेश पाहून तो म्हणाला : “ प्रिये, तुझ्याबरोबर फळें वेचलीं आणि लांकडें तोडलीं आणि मग डोक्यांत वेदना होअूं लागल्या म्हणून मी निजलों अेवढे मला आठवतें. त्यानंतर कोण जाणें काय झालें. मला चांगलीच चकूर आली ! अिनक्यांत एक मोठा तेजस्वी पुरुष दिसूं लागला. नंतरचें कांहीं स्मरण नाही. हें सारें काय स्वप्न असेल ? तुला तसें कांहीं दिसलें ? ”

सावित्री प्रसंग जाणणारी होती. ती म्हणाली : “ आर्यमुनर, आनां फार अुशीर झाला आहे. पिताशरी आगली वाट पहात असतील. पहा, रात्रीं फिरणाऱ्या पशुंचे



शब्द ऐकू येथूं लागले आहेत. कोल्ह्यांचे रडणे चालले आहे. झाडांची पाने सुद्धा कसा भयंकर आवाज करीत आहेत. सर्व कांही तुम्हांकडे उद्यां सांगेन. आतां घरीं चलावे.”

सत्यवान अगदीं थकून गेला होता. चालणे त्याला अशक्य होतें. चढूबाजूला पसरलेला अंधःकार पाहून आणि आपल्याला किती दूर जायचे आहे याचा विचार करून तो म्हणाला: “आतां परत जाणें कठीण आहे आणि अंधारांत तुला वाटहि सांपडायची नाही.” सावित्री चांगलीच गोंधळली. जावें हें बरें कीं न जावें हें बरें ? तिला स्वतःला निर्णय करतां येवना. तेव्हां तिनें पतीलाच विचारलें: “तो पलिकडे दावाग्रानें दग्ध झालेल्या वृक्षांत कुठें कुठें अग्नि दिसत आहे. त्यांतून थोडा विस्तव आणून मी लाकडें पेटविते म्हणजे त्या प्रकाशांत आपल्याला जातां येईल, आणि आजारीपणामुळे आपल्याला चालणें अशक्य असेल तर आपण दोघ सारी रात्र अथेष काढूं या. सकाळीं घरीं जातां येईल.”

सत्यवानाचेंहि मन घुटमळत होतें. चालण्याअतर्की तर शक्ति नव्हती पण घरीं गेलें नाही तर आजीवडील कसा कल्पांत करून सोडतील याची त्याला कल्पना होती. तो म्हणाला: “आईबाबांना मी न दिसल्यामुळे किती दुःख होईल! मीच त्यांचा अेकमात्र आधार आहे ना ? आतांपर्यंत मी निजून राहिलें ही केवढी माझी चूक! या वैरी निद्रेची मला मेढी चीड आली आहे. आतांपर्यंत बाबांनी माझ्या शोधासाठीं आकाशपाताळ अेक करून टाकले असेल. त्यांचें जर कांहीं बरें वाशीष्ट झालें तर मला जगणें अशक्य आहे. आतां घरीं गेल्यावांचून दुसरा मार्ग नाही.” वडिलांचें दुःख आणि आपली निर्बलता यांचा विचार येअून सत्यवानाला रडूं कोसळलें. धीरोदात्त पुरुष रडूं लागतो तेव्हां अबलाच त्याचें सात्वन करूं शकतें. निष्ठावान सावित्री मुग्ध प्राथेनेचें बोल बोलूं लागली. पतीच्या डोळ्यांतील अश्रू पुसून ती म्हणाली: “जर आजपर्यंत मी कांहीं तप केलें असेल, विनोदांत सुद्धा असत्य बोलले नसेन तर आजची रात्र माझ्या सासूसासऱ्यांना आणि पतीला सुखकर होवो !” भग प्रेमशालिनी सावित्रीनें आपले केंस बांधले आणि पतीचा हात धरून त्याला तिनें कसेचसे उभे केलें. वडिलांच्याकरितां वेंचलेल्या फळांकडे सत्यवानाची दृष्टि गेलेली पाहून ती म्हणाली, “ही करंडी मी अथे डहाळीला अडकवून ठेवते. उद्यां सकाळीं येअून येअून

जार्ज. लांकडे सुद्धा राहू देत अयंच. ही अवधी कुऱ्हाड मी बरोबर घेते. ” मग तिने पतीचा हात आपल्या डाव्या खांद्यावर घेतला, आणि आपल्या अुजव्या हाताने त्याच्या कमरेला विळखा घालून ती गजगामिनी हळूहळू चालू लागली. सत्यवानाला सावित्रीचा असा आश्चर्य घेऊन संकोच वाटला की आनंद वाटला कोण जाणे. पण तो म्हणाला: “हे भोर, या वाटेने मी पुष्कळ वेळां गेलो असल्यामुळे ही माझ्या ओळखीची वाट आहे. आतां तर चांदणेहि पानांतून प्रवेश करून थोडा थोडा मार्ग दाखवीत आहे. अर्ध्या वाटेवर पळसाची झाडी आहे. तिथे जरा साकधगिरी ठेवली पाहिजे. तिथे रस्ता फुटतो. त्यांतला अुत्तरेकडचा रस्ता तो आपला. आतां चल लवकर. मला आतां जरा बरे वाटते. आभीबाबांना लवकर जाऊन भेटूं. ”

अिकडे द्युमत्सेनाला अेकाअेकी दृष्टि प्राप्त झाली त्याबरोबर त्याला आश्चर्य वाटलें. पण हे आश्चर्य जास्त वेळ टिकलें नाहीं, सूर्यास्त झाला आणि मुलगा आणि सून अजून आली नाहींत हे पाहून म्हाताऱ्याचे आनंदाश्चर्य चितेंत असून पावले. म्हाताऱ्या पावलांनी त्याने चहुंवाजूला शोध घेतला. कितीवेळां तरी पाशांन काटे मोडले. अंणकुची दार दगडांनी म्हाताऱ्या शरीरांत अजून रक्त आहे की नाहीं याचा शोध घेतला. दर्भाच्या सडांना पुष्कळ वेळां लाल अभिषेक झाला. शेजारच्या ब्राह्मणांनी या वृद्धांची कांय करून पुष्कळ तपास केला. कुठेहि पत्ता लागेना तेन्हां सर्वजण परत आले. अेकाने शेकेटो पेटविला. दुसऱ्याने पुराणकाळच्या कित्येक अद्भुत गोष्टी छेडल्या. पण आभीबापांचा धोर खुंटला तो खुंटलाच. त्यांनी मुक्त कंठाने रडायला सुरुवात केली: “हे पुत्रा, हे साध्वां वधु, तुम्ही कुठे रे आहां ?” सत्यवादी ब्राम्हण आश्वासन देऊं लागले. सुबर्वा म्हणाला, “सावित्री तप, अिंदियदमन आणि सदाचार यांनी युक्त आहे. म्हणून माझी खात्री आहे की सत्यवान जिवंत आहे” तपस्वी गौतम म्हणाला, “मी चारी वेदांचे सांग अध्ययन केले आहे, ब्रम्हचर्य पालन करून गुंल्ला आणि अंगाला संतुष्ट केले आहे, नुसत्या वायूचे भक्षण करून मी किती तरी अपवास केले आहेत. अेकूण अेक व्रतांतांल अेकागर अंतःकरण साक्ष देत आहे की तुमचा सत्यवान जिवंत आहे, तो कुशल आहे; माझ्या वचनावर विश्वास ठेवा.” गौतमाच्या शिष्यालाहि वाटलें की आपणहि यांत थोडी भर टाकावी. तो म्हणाला, “आमच्या गुरुमहाराजांच्या मुखांतून निघालेलें अेकाहि वचन आजपर्यंत खोटें झालेलें नाहीं, तेन्हां मी खात्रीपूर्वक सांगतो की सत्यवान जिवंत आहे.” दुसऱ्या अनेक वृषींनी आपआपल्या समुजतीप्रमाणे आश्वासन

दिले. शेवटी दाल्भ्य अृषा म्हणाले, “सावित्री व्रत करून कांही न खातां गेली आहे तेव्हां तुझा मुलगा जिवंत आहे या विषयी शंकाच नको आणि राजा, तुझी दृष्टि तुला परत मिळाली हेंच याचे प्रत्यंतर आहे.” दोन घटका अशा गोष्टी चालल्या अितक्यांत दोघेजण घरी येऊन पोचले. ब्राह्मण आनंदाने म्हणाले, “पहा राजा, तुझा मुलगा आणि तुझी सून तुला परत मिळाली. आतां तुझा अभ्युदय जवळ आला समज. ”

सर्वत्र आनंदीआनंद व्यापून गेला. कितातराीं प्रश्न विचारले गेले आणि उत्तरे दिली गेली. अृषांनी सावित्रीला आग्रह कला की घडलेली सर्व हकाकत साविस्तर सांगितलाच पाहिजे. गौतम म्हणाला, “सावित्री तुला प्रत्यक्ष आणि अतींद्रिय दोन्ही वस्तूंचे ज्ञान आहे, तुझ्या तेजाने तर तू केवळ सावित्री देवताच आहेस. गुप्त राखण्यासारखे कांही नसेल तर सर्व व्रतांत आम्हांला सांग.” सावित्रीने मुखाने गोड झालेले आपले दाहण दुःख सर्व वर्णन करून सांगितले तेव्हां सर्व अृषा अकस्वराने बोलले : “आमच्या राजाचे सारे कुळ संकटरूपी काळेव्या खड्यांत गडप होत होते ते, हे साध्वी, तू आपल्या शीलाने, आपल्या व्रताने आणि पुण्याने आज तारले आहेस.” गोष्टी संपल्या, अिकडे रात्रही संपली आणि अरुणोदयाबरोबर युमत्सेन राजाच्या राज्यांतील लोक-प्रांतिन्वी राजाला परत बोलावण्यासाठी तेथे येऊन पोचले. शत्रूच्या येथे मोठी राज्यव्ंरांती झाली, शत्रू मारले गेले आणि परजेने अेकमताने राजा युमत्सेनच आम्हांला राजा पाहिजे असा आग्रह धरला. म्हणून आम्ही आपल्याला बोलवायला आलां आहोत” असे साचिवांनी सांगितले. अिकडेच सगळे वर्तमान अकून साचिवसुद्धा तपस्विनी सावित्रीच्या पाया पडले.

नारदांनी भाकिन केलेल्या सावित्रीच्या दुर्दैवामुळे दुःखित झालेला सावित्रीचा पिता आपल्या घरी आज कोणत्या स्थितीत असेल बरे ? हा आनंदसमाचार तत्काळ त्याला पोचता करण्याचे कुणाला ना कुणाला सुचलेच असेल.

वैशंपायन म्हणतात : सावित्रीच्या या पुण्यकथेने आजवर असंख्य लोकांना आश्वासन दिले आहे. आणि अिथून पुढेहि जे कोणी सावित्रीचे हे मुत्कष्ट आख्यान श्रवण करून त्याचे ध्यान धरतील त्यांचे सर्व मनोरथ पूर्ण होऊन ते दुःखमुक्त होतील..

## वटसावित्री

ज्येष्ठ पौर्णिमा

१ दिवस

हा सण सुन्हाळ्याच्या सुटीतच पुष्कळसा जातो. 'सतीच्या पातिव्रत्यापुढे मृत्युहि हार खातो' असा बोध असणाऱ्या या गोष्टीत असामान्य काव्य भरलेले आहे. वटवृक्षाची पूजा करण्यापेक्षा सावित्रीचीच पूजा करणे हे अधिक योग्य आहे. सावित्रीच्या कथेत स्त्रियांचे स्वातंत्र्य आणि स्त्रीधर्माचा सर्वोच्च आदर्श पाहायला मिळतो. या दिवशी सावित्रीचे चरित्र अनेक प्रकारे गायले पाहिजे. मुलांनी विशेषतः हा सण साजरा करावा.

# महाअेकादशी

आषाढ शु० ११

: : १५

१ दिवस  
२

या दिवसापासून चातुर्मासाला आरंभ होतो. चातुर्मासाच्या निमित्ताने कित्येक ऋते घेण्याचा हा दिवस आहे. पावसाळ्यांत हवा चांगली नसते. विशिष्ट प्रकारचा संयम स्वांकारला तरच पावसाळा निर्विघ्न आणि सुखाने पार पडतो. पावसाळ्यांत प्रवास करणे कठीण असल्यामुळे अकाच ठिकाणी बसून अध्ययन करण्याचा जुना रिवाज होता. या दिवशीं सर्वानां पहाटे ४ वाजतां स्नान करून सामुद्रायिक प्रार्थना करावी. प्रार्थनेत गीतेचा ९ वा अध्याय म्हणावा. रात्री घरच्या, शेजारच्या मंडळींनीं एकत्र येऊन तुकाराम महाराजांच्या निवडक अभंगांचें भजन करावें.

या दिवशीं किंवा आषाढी अमावास्येदिवशीं, ज्या दिवशीं सवड असेल त्या दिवशीं, कांतण्याची चढाओढ ठेवावी, आणि ती ठेवली तर तो दिवस सबंध सुटीचा समजावा. हवेंत दमटपणा असतो तेव्हां सून अधिक चांगले कांततां येतें.

पावसाळ्यांत गोशाळेमध्ये डांसांचा उपद्रव फार असतो. म्हणून रात्रीं धूर करून जनावरांचें रक्षण करणें अिष्ट आहे.

# आचार्यदेवो भव

: : १६

( आषाढ शु. १५ )

मनु भगवानाने म्हटले आहे, आणि आमचीहि अशी श्रद्धा आहे की सावित्री म्हणजे विद्या ही आमची माता आहे आणि आपण आचार्य आमचे पिता आहांत, अज्ञान अवस्थेत जन्मलेल्या आम्हांला ज्ञानाचे संस्कार देऊन आपणच आम्हांला नवा जन्म दिला आहे.

आपल्या डोळ्यांत प्रेमाची जादू आहे; आपल्या चित्तांत ज्ञानापासून सुत्पन्न होणारे कल्याण आहे; प्रभूचे मंगल हृदय आपल्याला मिळाले आहे; म्हणूनच तर आपण अशी निःस्वार्थ सेवा करीत आहांत.

मूर्तिकार जसा ओवडघेवड दगडांत मूर्तीला प्रथम पहातो आणि मागाहून त्यांतून कोरून त्या मूर्तीला प्रगट करतो, तद्वत् हे गुरुदेव, शिष्याच्या प्राणाची संपूर्णता आपण पहातां, आणि आपल्या अद्भुत कौशल्याने तिचा विकास करतां. जीवनाची सफलता आम्हांला आपल्याकडूनच लाघते,

स्वतः निष्काम असूनसुद्धा आपण परमेश्वरापाशीं मागितले कीं “ माझे ज्ञान समृद्ध होवो; मी मोक्षविद्या धारण करणारा व्हावे; माझे शरीर निरोगी आणि स्थिर असो; माझी जीभ अमृतस्रोती वनो; माझे अध्ययन विस्तृतपणे वाढो; माझ्या ज्ञानाचा शेवट कधीहि न येवो. ”

आणखी आपली प्रार्थना आहे कीं, “ पाणी, जसे तलावाकडे वाहाते, माहिने जसे वर्षाकडे वळतात, तसे सर्व ब्रह्मचारां माझ्याकडे येवोत. त्यांच्या शंका दूर होवोत, त्यांचे ज्ञान वाढो; त्यांची वृत्ति संयमशील होवो; आणि अशा विद्यार्थ्यांच्या द्वारां, या ठिकाणीं ज्ञानाचे सत्र आहे, अशी माझी कीर्ति पसरो. ”

अितकी वत्सलता आम्हांला अितरतर कुठे मिळणार? आम्ही अेक आपल्यालाच ओळखतो; आपल्याला आम्ही शरण आहो; आपला आज्ञाच आम्हांला प्रमाण आहे. त्वं हि नः पिता य अस्माकं अविद्यायाः परं पारं तारयसि । नमः परमपूषिभ्यः नमः परमपूषिभ्यः । ( तूच आमचा, पिता, तूच आम्हांला अविद्येच्या परतीराला घेऊन जातोस. थोर अर्षींना नमस्कार असो. )

## गुरुपूर्णिमा

आपाढ १५

१ समय

गुरुपूर्णिमेचा सण अवश्य साजरा करण्यासारखा आहे. पण वाटेल त्या माणसाला आश्वर्य समजून त्याची आंधळी पूजा करण्याने गुरूचा किंवा शिष्याची कोणाचीच अन्नति होणार नाही. हिंदुधर्मात श्रीवेदव्यासांचे स्थान असाधारण आहे. गुरुपूर्णिमेच्या दिवशी वेदव्यासांचे स्मरण करून त्यांचे कार्य समजून घ्यावे हे अुचित आहे,

आशुश्चिस्तांचे जीवन, कथन आणि मरण यांविषयीहि सांगतां येतील.

शीखधर्मात सांगितलेले गुरूचे रहस्य, त्यांच्या गुरूची तेजस्वी चरित्रे वगैरे दत्तजयंतीच्या दिवसाप्रमाणे आजहि सांगता येतील. ( दत्तजयंती प्रकरण पहा. )

या दिवशी विद्यार्थ्यांनी संस्थेसाठी विशेष काम करावे, सेवा द्यावी. आपल्या संस्थेसाठी फंड गोळा करता-आला तर तो करावा.

# मराठी मीरा

: : १७

## आषाढ वद्य १३

जनाबाओच्या आजीबापांनीं तिला एका भगवद्भक्ताच्या घरी दासी म्हणून देउन टाकलें; तेथें तिनें आजन्म दळणकांडण करून स्वतःचें पोट भरलें आणि श्रीश्वराची भक्ति करून आपल्या जन्माचें सार्थक केलें.

जनाबाओचें लग्न झालें नव्हतें. ज्यांच्या घरी ती दासी होती ती सगळी श्रीश्वर-परायण, धर्मभीरु मंडळी होती. ज्याप्रमाणें मीराबाओनें भगवंतांशीं लग्न लावून घेतलें होतें त्याचप्रमाणें जनाबाओनेंहि केलें होतें. मीराबाओ राजघराण्यांतील असल्यानें तिचा छळ झाला आणि तिच्या बलिदानानंतर तिचें देव्हारे माजले. बिचाऱ्या जनाबाओला विचारतो कोण ?

तसें पाहिलें तर जनाबाओ म्हणजे महाराष्ट्राची मीराबाओ. तिनें नम्रपणें नामदेवाच्या कुटुंबाची सेवा केली आणि लग्नाच्या अभावीं जें प्रेमजीवन अनुप्राप्त होतें ते हृदयानें विठोबाशीं रममाण होऊन समृद्ध केलें. विठोबा येऊन तिची केली फणी करीत असें, तिच्या दळणांकांडणांत मदत करीत असे, आणि थंडीच्या दिवसांत तिची वाकळ पांघरून निजत असे.

मीराबाओच्या काव्यांत जी प्रेमोत्कट भक्ति आहे तीच अगदीं भोळ्या भाषेत जनाबाओच्या अभंगांतून दिसून येते. भक्तिकाव्यांत स्त्रीसहज भाषा जर पहावयाची असेल तर ती जनाबाओच्या अभंगांत पहावी. जनाबाओनें शरीरधारणासाठीं शेवटपर्यंत काबाडकष्ट केलेले दिसतात. खरोखर जनी ही जनतेची प्रतिनिधि होती व तिनें जनार्दनाला आपलें जीवन अर्पण करून कृतार्थता मिळविली होती.

मुलींच्या शाळेत जनाबाओचा दिवस पाळून त्या दिवशीं तिचे अभंग म्हणत म्हणत दळणकांडणाचा कार्यक्रम ठेवावा.



# नागपंचमी

: : १८

श्रावण शु. ५.

नागपंचमीचा अंतसव महाराष्ट्रांत मोठ्या धामधुनीने साजरा करण्यांत येतो. रानांतून चिकणमाती आणून, कणीक मळतात तशी रुच्या पोलासकट ती मळून तिला मोठ्या फाडीच्या नागाचा आकार देतात. त्या नागाच्या शेपटीची मोड अशी कांहीं सुन्दर बनावितात कीं पहातच राहावे. नागाला भयंकर असें दोन डोळे पाहिजेतच; तेव्हां डोळ्यांच्या ठिकाणीं दोन गुंजा बसवून टाकायच्या ! नागाला श्रीश्वराने दुहेरी जीभ दिलेली असते. ही देणगी निसर्गाने मुत्सद्द्यांना, वकीलांना आणि कोर्टांत साक्षीदाराचा धंदा करणाऱ्यांना दिली असती तर पुष्कळच सोय झाली असती. बिचाऱ्या नागाला बोलायचेंच नसतें तेथें खऱ्याखोट्यासाठीं दोन जिभा घेऊन तो करणार काय ? पण निसर्गाने त्याला दुहेरी जीभ दिली आहे म्हणून आम्हीहि दुर्वाचीं दोन पांने त्याच्या तोंडांत, खुपसून देतो. त्याच्यापुढें दुधाचा पेला ठेवून त्याची पूजा करतात. मग काय, तो खरोखरीच अखाद्या कल्याणकर्त्या देवतेप्रमाणें भासूं लागतो.

पण या नागपंचमी मागे अतिहास काय आहे ? प्रत्येक सणाच्या किंवा व्रताच्या पाठीमागे त्याच्या संबंधीचा अतिहास हा असतोच. नागपंचमीच्यामागे अेक लहानशी करुण दंतकथा तर आहेच ; पण नागपूजा जी अितकीं सार्वत्रिक झाली होती तिच्यामागे तर अेक मोठा महाभारत अतिहास आहे. महाभारताच्या आदि-पर्वान्तच तो नकळत विणला गेला आहे.

आपल्या बिकडे म्हणजे ब्राह्मणांत आणि आर्यांत गोत्रप्रवर असतात, तशीं द्राविडादि अितर जातींत देवकें असत. ङ्गिर्जीत देवकांना Totem म्हणतात. आज कित्येक पहाडी जाती आणि जंगली लोक आपल्या देवकांच्या नांवांनी ओळखले जातात. महाभारतकाळीं आर्य आणि नागजातीमध्ये युद्धें होत असत. या नागजातीचा तत्त्वक नांवाचा राजा होता. त्यानें परीक्षित राजाचा सूड घेण्यासाठीं त्याच्या नगरींत घुसून त्याचा खून केला. मग तर या दोन जमातीमध्ये भयंकर युद्ध सुरू झालें. तें शेवटीं एका आस्तिक ऋषीने मिटविलें. या आस्तिकाचा पिता आर्य होता आणि माता

नागकन्या होती. अशा आंतरजातीय विवाहाशिवाय हा झगडा मिटण्यासारखा नव्हता. हे नागलोक मोठे शूर, कलारसिक, नगर-रचना-कुशल, आणि पुरोहितांचे काम करण्याअितके विद्वान होते. आर्य आणि नाग यांच्यामध्यें आंतरजातीय विवाह व्हावा अितके ते परस्परांच्या सहवासांत राहिले होते. शेवटी नागजाति आर्यांत मिसळला आणि त्यांच्या संतोषाप्रत्यर्थ हा सण आर्यांच्या सणांत नागपूजा म्हणून घातला गेला.

आर्यांनी आपल्या चातुर्याने अेक आंतरजातीय विग्रह दूर केला याची खूण म्हणून या नागपंचमीकडे आपल्याला पहातां येते.

अेकाद्या विषयी भीति, धाक, किंवा आदर असला म्हणजे सुद्धां भोळा प्राकृतिक मनुष्य पूजेचा अुग्राय अजमावून पहातो. आजची नागपूजा ही नागाच्य भीतिमुळे अुत्पन्न झाली असे म्हटले तर ते नाकबूल करतां येणार नाहीं. पण हिंदु लोकांनी शेवटी त्यालाहि अहिंसेचें रूप दिलेले दिसते. ते कांहीं असो, पण परंपरेने आचारांत आलेल्या वृतादींच्यामुळे हिंदुस्थानची संस्कृति अखंडित राहिली आहे. आणि हिंदुधर्माने पुष्कळ रानटी चालीरीतींना अुदात्त ( Sublimate ) केले आहे.

टीपः— या विषयावरील माझा “औत्तिहासिक कल्पनातरंग” हा लेख नजरेखाली घालण्यासारखा आहे.

## नागपंचमी

श्रावण शुद्ध ५

१ दिवस

मनुष्येतर सृष्टीशी समभाव, हिंसर प्राण्यांविषयीहि दयाभाव आणि अहिंसेचें अभयदान या तीन गोष्टी या सणांतून काढतां येतील. नागपंचमीच्या दिवशीं झोपाळ्याच्या खेळाची प्रथा सार्वत्रिक आहे. वैर शमल्यानंतर करण्यांत येणाऱ्या अुत्सवाचें हें प्रतीक आहे. ही प्रथा चालू ठेवण्यासारखी आहे. नागपंचमीच्या दिवशीं तन्ह-तन्हचे मर्दानी खेळ खेळण्याचा कार्यक्रमसुद्धां ठेवावा.

सगळेच सर्प काहीं विषारी असत नाहींत. पुष्कळ सर्प शेतांत राहून शेतीचें नुकसान करणाऱ्या अुंदराना खाऊन टाकतात. म्हणून त्यांना वषेत्तरपाळ म्हटले जाते. त्यांना मारल्याने शेतीचेंच नुकसान होते ही गोष्टहि समजावून द्यावी.

## श्रावण सोमवार

: : १९

### दुपारची अर्घी सुट्टी

पुष्कळ लोक श्रावण सोमवारी अर्घ्या दिवसाचा उपवास करतात. म्हणून ही सुट्टी देण्याची जरूर आहे. या दिवशी माहेम्न अित्यादी स्तोत्रें तोंडपाठ करण्याचा कार्यक्रम ठेवतां येतील. प्रत्येक सोमवारच्या वेगवेगळ्या कथा आहेत. त्यांचा संग्रह केलेला असला तर बरा.

# श्रावण पूर्णिमा

: : २०

१ दिवस

हा दिवस रक्षाबंधनाचा आहे. भाऊबीज जसा शुद्ध निष्काम प्रेमाचा दिवस' तसा हा दिवस नाही. हा निष्कामपणे रक्ष्यरक्षक संबंध जोडण्याचा दिवस आहे. जे स्वतः आपले रक्षण करू शकत नाहीत ( किंवा करू शकलेले नाहीत ) असे लोक, त्यांचा ज्यांच्यावर पूर्ण विश्वास असतो अशा माणसांकडून, रक्षणाची अपेक्षा ठेवतात आणि त्यांचेच घातक म्हणजे राखी. स्त्रिया, ब्राह्मण (!), गायी हे तीनही वर्ग रक्षणाचे अधिकारी समजले जातात.

राखीच्या दिवशी आपल्या हातांत केणी राखी बांधो वा न बांधो, पण रक्ष्य वर्गाच्या हिताचे चिंतन या दिवशी केलेच पाहिजे. विद्यार्थी अगदीच गंमतीने पशु-पक्ष्यांना आणि आपल्यापेक्षा लहानांना पुष्कळ वेळां त्रास देतात. राखीच्या दिवशी ही स्थिति सुधारण्याचा विचार त्यांनी केला तर बरे. मात्र हा विचार त्या दिवसापुरताच असता कामाचा नाही. समाजातील चुकीच्या समजुतीमुळे, जडतेमुळे किंवा तिरस्कारामुळे हरिजनवर्गाचा कांही कमी छळ होत नाही. रक्षाबंधनाच्या दिवशी हरिजन जर अर्ध म्हाटल्या जाणाऱ्या जातीच्या हातांत राखी बांधू लागले तर सहृदय हिंदूंच्यावर त्याचा मोठा परिणाम होईल. समाजात ही चाल चालू करण्याच्या कामां शाळांची मदत होऊ शकेल.

आणि हा प्रेमंतु हाताने कांतेलेल्या सुताचाच अर्थ होतो. बाजारी सूत प्रेमाचे वहन कसे बरे करू शकेल ?

श्रावणी पूर्णिमा द्विज लोकांच्या उत्सर्जन-अपाकर्माचा दिवस होऊन बसला आहे. ' कुंडलें गेली नि काप राहिले ' अशासारखी ही स्थिति आहे. विद्याध्ययनाच्या दीक्षेचा हा दिवस; पण आज फक्त ज्ञानवै बद्दलणे आणि सातू व पंचगव्य भक्षण करणे यांतच त्याची परिसमाप्ति होते. ज्ञानवै घालणारे वेदाचे अध्ययन करीत नाहीत, आणि ज्ञानवै घालण्याची नवी चाल पाडणारेहि अध्ययनाविषयी आस्था ठेवीत नाहीत. ज्ञानव्यासाठी किंवा गरीबांच्या रक्षणासाठी म्हणून या दिवशी पुष्कळ सूत कांतेले गेले तर श्रावणी पूर्णिमेत कांही जीव येतील. श्रावणी पूर्णिमेच्या संबंध दिवसभर सूत कातून ते जर गोरक्षणासाठी अर्पण करण्यांत आले तर यज्ञोपवीत आणि रक्षाबंधन ही दोन्ही कृतार्थ होतील.

# गोकुळाष्टमीचा उत्सव

: : २१

(श्रावण व० ८)

एका वृद्ध साधूशी, देशांतील राजकीय स्थितीविषयी माझे अेकदां बोलणे झाले. संभाषण चालू असतां राजनिष्ठेसंबंधी मी कांहींसे बोललो. साधुमहाराज अेकदम गरजले, “अहो, हिंदुस्थानांत फक्त दोनच राजे झाले आहेत: अेक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र आणि दुसरे जगद्गुरु श्रीकृष्ण. अजूनहि या दोघांचेच आपल्या लोकांवर राज्य चालत आहे. राजनिष्ठा त्यांच्याविषयीच संभवते. जमिनीवर नाहीतर पैशावर राज्य करणारे कोणीहि असोत, हिंदूंच्या हृदयावर राज्य चालविणारे फक्त हे दोघेच आहेत.” मला ही गोष्ट अगदी पटली. भजन समाप्त होतांच ‘राजा रामचंद्रकी जय’ किंवा ‘गोपालकृष्ण की जय’ पुकारून लोक जयजयकार करू लागतात तेव्हां जशी भक्ति उचंबळून येते तशी भक्ति दुसऱ्या कोणत्याही मनुष्याविषयी अुत्पन्न होत नाही.

श्रीरामचंद्रांचे जीवन जितके अुदात्त तितकेच सुगम आहे. रामचंद्र हा आर्य पुरुषाचा आदर्श पुरुष—पुरुषोत्तम आहे. समाजाच्या नीतीनियमांचे, रिवाजांचे ते परिपूर्ण पालन करतात, जितकेच नव्हे तर कोणाहि प्रजासत्ताक राजाच्या राष्ट्राध्यक्षालाहि अुदाहरणभूत होतील असा लोकमताविषयी मान श्रीरामचंद्रांना आहे. माझे जीवन समाजासाठी आहे असा निश्चय श्रीरामचंद्रामध्ये दृढ आहे.

श्रीकृष्ण हेहि पुरुषोत्तम आहेत, पण भिन्नयुगाचे पुरुषोत्तम आहेत. समाज-संघटना जेव्हां स्वतःच्याच आत्मिक अुन्नतीच्या आड येते तेव्हा तिची बंधने तोडणे आणि नवीन नियम तयार करणे ही वृत्ति श्रीकृष्णांत दिमून येते. तरी पण श्रीकृष्ण हे अराजक वृत्तीचे नव्हते. लोकसंग्रहाचे महत्त्व ते चांगल्या प्रकारे जाणत असत. श्रीकृष्णांनी धर्माला अेक नवीन स्वरूप दिले. आणि त्यामुळेच श्रीकृष्णाच्या जीवनांतील प्रत्येक प्रसंग रहस्यमय बनला आहे. अेखाद्या मोठ्या व्याकरणकाराने अेक मोठा सर्वव्यापी नियम दाखविल्यानंतर जसे त्याचे अपवाद अेका सूत्रांत ग्रथित करावे तसे श्रीकृष्णांनी आपल्या जीवनांत जणू मानवधर्माचे सर्व अपवाद सूत्रबद्ध केले आहेत. गोपीबरोबर अत्यंत शुद्ध, पवित्र पण मर्यादाराहित प्रेम.

दुराचारी राजा मामा असूनसुद्धांत्याचा वध, भक्ताची प्रतिज्ञा खरो करण्यासाठी स्वतःची प्रतिज्ञा मोडूनसुद्धांत युद्धांत शस्त्रग्रहण अित्यादि सर्व परसंग म्हणजे “तत्त्व संभाळण्यासाठी नियमभंग” केल्याचे दृष्टांत आहेत. श्रीकृष्णांनीं आर्यजनतेला अधिक अंतर्मुख केलें, अधिक आत्मपरायण केलें. भोग आणि त्याग, गृहस्थाश्रम आणि संन्यास, परवृत्ति आणि निवृत्ति, ज्ञान आणि कर्म, अिहलोक आणि परलोक अित्यादि सर्व द्वंदांचा विरोध आभासरूप आहे, सर्वांमध्ये अेकच तत्त्व भरलेलें आहे, असें श्रीकृष्णांनीं आपल्या जीवनानें आणि उपदेशानें सिद्ध करून दाखविलें आहे. आर्य-जीवनावर जास्तीत जास्त संस्कार श्रीकृष्णांचाच झाला आहे, तरी या संस्काराचें स्वरूप कसे आहे हें निश्चित करणें कठीण आहे. अत्यंत सरळ भाषेत लिहिलेल्या भगवद्गीतेचे जसे अनेक अर्थ करण्यांत आले आहेत तसे कृष्णचरित्रांत असलेलें रहस्यहि विविध प्रकारांनीं वर्णिलें गेलें आहे. वाल्मीकिरामायणांतील रामचंद्रांत आणि तुलसीरामायणांतील रामचंद्रांत जसें महदंतर आहे, तसा महाभारतांतील श्रीकृष्ण आणि तुकारामबुवांचा श्रीकृष्ण अेक असूनहि भिन्न आहेत. हल्लीच्या काळांत सुद्धां नवीनचंद्र सेन यांचा श्रीकृष्ण बंकीमचंद्रांच्या श्रीकृष्णाहून भिन्न आहे, गांधीजीचा श्रीकृष्ण टिळकांच्या श्रीकृष्णाहून वेगळा आहे. आणि अराविंद घोषांचा श्रीकृष्ण तर सगळ्या पेक्षा निराळाच आहे. अशा प्रकारे सुलभ आणि दुर्लभ, अेक आणि अनेक, रसिक आणि विरागी, बंडखोर आणि लोकसंग्राहक, प्रेमळ आणि निष्ठुर, मायावी आणि सरळ अशा श्रीकृष्णाची जयंती कशी साजरी करावी हें ठरविणें महाकठीण आहे.

श्रीकृष्णांचें चरित्र त्यांच्या जीवनातितेच व्यापक आहे. जगांतील प्रत्येक स्थित श्रोकृष्णांनीं भोगली आहे. प्रत्येक स्थितीचा श्रीकृष्णांनीं आदर्श दाखविला आहे. श्रीकृष्णांचें बालपण अतिशय रम्य आहे. गाथा वासरांवरील त्यांचें प्रेम, वनमालांविषयीं त्यांची आवड, मुरलीचा मोह, वाळमित्रांचा त्यांचा स्नेह, मल्लविद्ये-विषयीं त्यांचा अनुराग हें सर्व कांहीं अद्भुत आणि अनुकरणीय आहे. लहान मुलांनो अवश्य त्यांचें अनुकरण करावें. सुदामाचें चरित्र लक्षांत आणून गोकुळाष्टमीदिवशीं आपण आपल्या दूर राहात असलेल्या मित्रांना दोन दिवस अेकत्र राहाण्यासाठी, श्रीकृष्णाचें गुणगान करीत खेळण्यासाठी बोलावले तर तें पुष्कळ अचित होईल.

श्रीकृष्णांच्या मनांत लहानमोठा, गरीब श्रीमंत, ज्ञानी-अज्ञानी, सुंदर किंवा कुरूप असा कमलाहि भेद नव्हता. गाओ चारादला न्यायच्यावेळीं श्रीकृष्ण साऱ्या सोबत्यांना गांगन कीं परत्येकानें आपापलें खाण्याचे वरोवर घेऊन यावें. मग ते सगळे मिटून सर्वांची शिघोरी अंकेमिकाणीं करून परमानें वनभोजन करीत. आजहि आपण अंका शाळेचे विद्यार्थी, अंका ऑफिसांताल कर्मचारी, अंका मिलमधाल कामगार, अंका कलवांत खेळणारे सभानंद आपापल्या घरांतून खाण्याचे घेऊन अंकातर मिळून शहराच्या किंवा गांवाच्या वाहेर अखाद्या विहिरीवर किंवा नदीच्या कांठीं झाडाखाळीं गप्पा मारीत, गात, खेळत किंवा भजन वरीत अंका दिवस काढूं तर कांहींमुद्द्यां भिघडणार नाहीं. मांत्तर या वनभोजनांत लाडू, भजीं, चिवडा नाहीं चालणार. गोकुळाष्टमीदिवशीं मुख्य आहार गोरमाचाच असला पाहिजे. दूध, दही, लेणी आणि कंदमूळफळ हाच आहार या दिवशीं योग्य. धर्मसंशोधक जगद्गुरुचा ज्या दिवशीं जन्म झाला त्या दिवशीं मुलांनीं असा सात्विकच आहार करावा. मोठ्या माणसांना उपवास करावा. उपवासाची प्राचीन प्रथा सोडूं नये. त्यांत पुष्कळ खोल रहस्य आहे. उपवासानें मन अंतर्मुख व्हातें. दृष्टि निर्मळ होते, शरीर हलकें राहातें. वारंवार उपवास करण्याचे संवय असेल तर उपवासादिवशीं मन अधिक प्रसन्न राहाते, असा अनुभव पुष्कळांचा आहे. उपवासाने वामना शुद्ध होते, संकल्पशक्ति वाढते, शरीरांत कांहीं दोष नसेल तर उपवास केल्याने चित्त अंकागर होतें आणि धर्माची अत्यंत गूढ तत्त्वे स्पष्ट होतात. उपवास करून, बुद्धियोग असेल तर धर्मतत्त्वाचे चितन करावे, आणि तितकी शक्ति नसेल त्यानें इर्द्धावान लोकांशीं धर्मचर्चा करावी. तेंहि घडूं शकले नाहीं तर गीतेचें पारायण करावें. नामसंकीर्तन, भजन वगैरे करावें सात्विक संगीतयुक्त भजनें गावीत. उपवासादिवशीं व्यावाहारिक कामें शक्य तर कमीं करावीत, पण रिकामा वेळ आळस, निद्रा किंवा व्यमने यांत घालवूं नये, पुष्कळ वेळां आपल्याला सुंदरसुंदर धार्मिक वचनें, भजनें, पदे आढळून येतात, पण तीं लिहून काढायला आपल्याला वेळ मिळत नाहीं. या दिवशीं तीं लिहिण्यांत वेळ काढणें कांहीं वावगें नाहीं.

सार्वजनिक कार्ये करण्याची ज्यांना शक्ति असेल त्यांनीं गोपाळाच्या जन्मोत्सवा-दिवशीं गोरक्षणाची चळवळ करावी याहून अत्तम गोष्ट केणती असू शकेल ? श्रीकृष्णाच्या सोबत्यांना दूधतूप जितके मिळत होते तितके दूधतूप जोवर आपल्या

मुलांना मिळत नाही तोवर श्रीकृष्णजन्मोत्सव आपण योग्य प्रकारे साजरा केला असे म्हणताच येणार नाही. श्रीकृष्ण हे अप्रतिम मल्ल होते, गृहस्थाश्रमांत राहूनही ब्रह्मचर्य पाळत होते, श्रीकृष्ण दीर्घायु होते, म्हणूनच प्रत्येक आखाड्यांत जन्मोत्सव साजरा केला गेला पाहिजे आणि श्रीकृष्णांच्या चरित्रांतील या विसरलेल्या भागाची आठवण पुनः ताजी केली पाहिजे. ज्यांचे पांडित्यांतच जीवन व्यतीत करण्याची इच्छा असेल त्यांच्यासाठी सर्वोत्कृष्ट काम हे की त्यांनी, गीतेंत श्रीकृष्णांनी अजुनाला जसा उपदेश केला आहे तसेच श्रीकृष्णांनी भिन्न भिन्न परसंगी काढलेले अद्भुत महानारतांमधून किंवा भागवतांतून, विष्णुपुराणांतून किंवा हरिवंशांतून जितके मिळाले तितके सर्व ऐकून घ्यावे. मग हे अद्भुत आणि श्रीकृष्णचरित्र याला अनुसरून गीतेचा अर्थ वनवाचा आणि या महान जगद्गुरुंचे जीवनदर्शन (Philosophy of Life) काय होते, त्याचे राजकारण काय होते ते निश्चित कळत लोकांपुढे ठेवावे.

स्त्रियांनी गोकुळाष्टमीचा दिवस कसा साजरा करावा हा फार नाजूक प्रश्न आहे. भक्तीच्या अतिरेकाचे स्वरूप आपल्या भक्तिसूत्रांत नारदाने वर्णन केले आहे, त्यावरून मनोवृत्तींना गोपी कल्पून परब्रह्म परपुरावर त्या किती आपक होत्या याचे वर्णन कित्येक कवींनी अनेक कांही केले आहे की श्रीकृष्णांच्या चरित्राचे परिपूर्ण रहस्य लोक जवळ जवळ विसरून गेले आहेत. श्रीकृष्णांना गोपीजनवल्लभ म्हटले आहे. श्रीकृष्ण आणि गोपी यांच्यामधील प्रेम किती विशुद्ध आणि आध्यात्मिक होते याची कल्पना ज्या हृदयाला येऊ शकली नाही त्यांनी एक तर कृष्णाला खाली अतुरविला आहे अथवा त्या प्रेमाचे वर्णन करणाऱ्या कवींना हलक्या वृत्तीचे आणि असत्यवादी ठरवून टाकले आहे. कृष्ण-गोपीमधील प्रेम वर्णन करणाऱ्या कवींनी चूक केली नाही असे माझे म्हणणे नाही. माझे तर हे म्हणणे आहे की समाजाची स्थिति पाहून कवींनी अधिक सावधपणे त्या प्रेमाचे वर्णन करणे अष्ट होते. मुसलमानांनी धर्मातील सुफी पंथाच्या मस्त कवींना आणि फकीरांना कट्टर मुसलमान राजे सजा करीत त्यावेळी मांगत की हे साधू सांगतात ते खोटे नाही पण अनधिकारी समाजापुढे अशा रीतीने रहस्यमय गोष्टी ठेवून ते समाजाचे नुकसान करताना आणि म्हणूनच ते शिक्केला पात्र आहेत. गोपींचे प्रेम आपल्याला समजत नाही म्हणून कांही आजच्या नीतिकल्पनांना पसंत पडेल असे स्वरूप त्या प्रेमाला देण्याची जरूर नाही. मीराबाईने



गोपींचे प्रेम कसे होते ते स्पष्ट करून दाखविले आहे. जेव्हा जेव्हा धर्मावरून लोकांची श्रद्धा अडून जाते तेव्हा तेव्हा ती श्रद्धा पुनः स्थापन करण्यासाठी मुक्त पुरुष या जगात अवतार घेतात आणि आपल्या प्रत्यक्ष अनुभवाने आणि चरित्राने लोकांत धर्माविषयी श्रद्धा उत्पन्न करतात. याला अनुसरून गोपीच्या शुद्ध भक्तीविषयी जेव्हा लोकांत अश्रद्धा उत्पन्न झाली तेव्हा गोपीपैकी अकीर्ण-कदाचित् राधेनेंहि असेल-मीरेचा अवतार घेऊन प्रेमधर्मस्थापना केली. जर आपल्याला श्रीश्र्वर आणि भक्त यांच्यामधील हा अनिर्वचनीय प्रेमसंबंध स्पष्ट करता आला तर मग गोपीच्या प्रेमाची किंवा विरहाची पदं गाण्यात मला काही हरकत दिसत नाही. मीराबाजीचा त्याग आपल्या हातून होणार नाही. काळ वाओट आला म्हणून काय मोठावाओला आपण विसरून जावे? श्रीकृष्णाबरोबर फक्त गोपींचाच संबंध होता असे नाही. यशोदा बाल-कृष्णाची पूजा करी, कुंती पार्थासारथीची पूजा करी, सुभद्रा आणि द्रौपदी कृष्णाला बंधुरूपाने पूजित. श्रीकृष्णांचे संपूर्ण चरित्र आपल्या स्त्रियांच्यापुढे ठेवले पाहिजे. श्रीकृष्ण किती संयमी होते, किती नीतिज्ञ होते, किती धर्मेनिष्ठ होते हे सर्व स्त्रियांपुढे स्पष्ट केले पाहिजे., आणि मगच गोपीप्रेमाचा आदर्श त्यांच्यापुढे ठेवला पाहिजे. प्रेम आणि मोह यांच्यामध्ये स्वर्ग-नरकादिका भेद आहे. तो स्पष्ट करून दाखविला पाहिजे. रासलीलेंत गोपींच्या मनांत मलिन कल्पना येतांच शरीकृष्ण-असंख्य रूपधारी शरीकृष्ण अकदम अदृश्य झाले, गोपींचे मन पावित् झाले तेव्हांच ते फिरून प्रगट झाले असा सुंदर प्रसंग पुराणांत - भागवतांत वर्णन केला आहे. त्याचे रहस्य प्रत्येकाने समजून घेतले पाहिजे. ते रहस्य कोणत्याहि माणसापासून गुप्त ठेवण्यांत सुरक्षितता नाही. अर्धवट ज्ञानामुळे उत्पन्न होणारे दोष काढून टाकण्यांचा उपाय संपूर्ण ज्ञान हा आहे, अज्ञान नव्हे. प्रेमाला आपण त्याच्या शुद्ध रस्त्याने नेले पाहिजे. प्रेम दाबल्याने दवत नाही, पण दाबू जातां विकृत मातर होते.

गोकुळाष्टमीदिवशी आपण सुदामचरित गावे, शरीकृष्णांनी गोपींना केलेला उपदेश गावा, अदृधवाबरोबर शरीकृष्णांनी गोपींना पाठविलेला संदेश गावा, गीतेचे रहस्य समजून घ्यावे, रास रमाचा आणि उपवास करून शुद्ध वृत्तीने त्यांत असलेले रहस्य समजून घ्यावे.

गोकुळाष्टमीदिवशी आपण गायीची पूजा केली तर त्यांत काही वावगे नाही. गायीची पूजा करण्यांत पशूला आपण परमेश्वर मानतो असे नाही, तर त्या पूजेच्या

द्वारां आपण प्रेम आणि कृतज्ञता व्यक्त करीत असतो. नदीची पूजा, तुळशी वी पूजा, गायीची पूजा, ही योग्यप्रकारे समजून घेऊन जर आपण केले तर त्यामुळे अंतःकरणाचे अतृप्त शिक्षण मिळेल, रसवृत्ति विकसेल, आणि हृदय पवित्र होऊन संस्कारी होईल. प्रत्येक पूजेत अेकच भाव असतो असे नाही. पूजा कृतज्ञतेने होअू शकते, निष्ठेमुळे होअू शकते, प्रेमांमुळे होअू शकते, आदरबुद्धीने होअू शकते, भक्तीने होअू शकते, आत्मनिवेदनवृत्तीने होअू शकते, किंवा स्वस्वरूपाच्या संधानाने होअू शकते. या दृष्टीने पहातां गायीची पूजा करण्याला अेकेश्वरवाद्याला किंवा निरीश्वरवाद्याला सुद्धां हरकत वाटू नये. निरीश्वरवादी ऑगस्टस कॉम्स मानवजातीचा पुतळा बनवून त्याची पूजा नव्हता का करीत? इरावण महिन्यात पुष्कळशा गायीः वितान. घरांतल्या लहान लहान मुलींनी कृतज्ञतापूर्वक जर गायीची आणि अिकडे तिकडे बुद्ध्या मारणाऱ्या अचपळ अशा छोट्या वासरांची हळदीकुंकवाने पूजा केली तर त्यांच्यांत किती प्रेम-वृत्ति जागृत होईल वरे!

मुलींच्या शाळेंत अनेक रीतींनी कृष्णजयंती साजरी करतां येईल. घरांतली जमीन चांगली मारवून तिच्यावर रांगोळी काढण्याची चढाओढ लावतां येईल. मुलींनीं गावें, रास खेळावा, कृष्णजीवनांनील निरनिराळ्या प्रसंगांचें गद्यांत आणि पद्यांत वर्णन करावें, घरांतून फलाहार घेऊन येऊन शाळेंत सर्वांनीं मिळून खावा. त्या दिवशीं शाळेंतील मुलींना आपल्या मैत्रिणींना घेऊन येण्याचीहि परवानगी असेल तर अधिक आनंद येईल आणि अधिक मुली शिक्षणाकडे आकर्षित्या जातील. धार्मिक शिक्षण जर परिणामदायी करायचें असेल तर शाळेला प्रत्येक सणाच्या प्रसंगी देवळाचें स्वरूप दिलें पाहिजे. मूर्तिपूजेला जर आपण बुजत नभू तर गोकुळाष्टमी दिवशीं शाळेंत पाळणा वांगून पाळणे गावे. यांत मुलींच्या मातामुद्धां अवश्य भाग घेतील.

आज मुलींच्या शाळा समाजाचें अेक अंग बनलेल्या नाहीत. मुलींच्या शाळांनीं समाजांत मूळ धरलेले नाही. आणि त्यामुळे त्या शाळा चालविणाऱ्या अुत्साही देशसेवकांचें अर्धेअधिक श्रम वायां जात आहेत. गोकुळाष्टमीसारखे सण साजरे करण्यांत समाजांतील सर्वे स्त्रिया जर भाग घेअू लागल्या तर शिक्षण हां हां म्हणतां यशस्वी होईल, शिक्षणाचा लाभ शाळेंत शिकणाऱ्या मुलींनाच नव्हे तर साऱ्या समाजाला मिळेल आणि आपण शिक्षणाचें जें पवित्र काम करीत आहों त्यावर कृष्ण-परमात्म्याच्या अमृतदृष्टीचा वर्षाव होईल.

## २ गोकुळ अष्टमी

तोच तो सूर्य रोजच्या रोज अुगवतो, तरी दररोज नवा प्राण, नवे चैतन्य, नवे जीवन घेऊन येतो. सूर्य जुनाच आहे असे समजून पक्षी निरुत्साही होत नाहीत. कालचाच सूर्य आज आला आहे असे म्हणून द्विजगण परिचयामुळे भगवान दिनकराचा निरादर करीत नाहीत. ज्या माणसाचे जीवन शुष्क झाले आहे, ज्याच्या डोळ्यांचा नूर उतरून गेला आहे, ज्याच्या हृदयांतील रक्त फिरायचे थांबले आहे त्यालाच सूर्य जुना आहे. ज्याच्यांत चैतन्याचा थोडातरी अंश राहिला आहे त्याला भगवान सूर्यनारायण नित्यनूतन वाहे. गोकुळ अष्टमी दरवर्षी येते. दरवर्षी तीच ती कथा आपण ऐकतो, त्याच त्या पद्तीने उपवास करतो आणि त्याच रीतीने कृष्णजन्माचा उत्सव करतो; तरी हजारो वर्षे झाली गोकुळ अष्टमी दरवर्षी त्या जगद्गुरूचा नवाच संदेश आपल्याला देत आली आहे. कृष्णपक्षांतील अष्टमीच्या वकर चंद्राप्रमाणे अेका पायावर भर देऊन अेक पाय बांकडा ठेवून शरीराला कमनीय असा बांक देऊन बांकिमचंद्र ॐ मुरलीधराने ज्या दिवशी दुनियेत प्रथम प्राण फुंकला त्या दिवसापासून आजतागायत प्रत्येक निराश्रित मनुष्याला आश्रवासन मिळाले आहे की ' नहि कल्याणकृत कश्चिद् दुर्गति तात गच्छति । ' - जा मनुष्य सन्मार्गाकडे वळला आहे, जा धर्माला चिकटून राहिला आहे त्याला, बावा, कधीहि दुर्गति नाही.

X

X

X

लोकांना वाटते की धर्म हा दुर्बळाच्यासाठी आहे. फार फार तर व्यक्तीव्यक्ती. मधील संबंधांत तो उपयुक्त असेल. पण राजे आणि सम्राट हे म्हणतील तोच धर्म साम्राज्यशक्ति धर्माट्टन पर आहे. व्यक्तीचा पुण्यकषय हेत असेल, पण साम्राज्य ही मात्र अलौकिक वस्तु आहे. अश्वराच्या विभूतीपेक्षां साम्राज्याची विभूति श्रेष्ठतर. साम्राज्य जेव्हां हाती विजयपताका घेऊन फिरू लागते तेव्हां अश्वर दिवसाच्या अुजडांतील चंद्राप्रमाणे कुठेतरी दडी मारून बसतो.

मथुरेत कंसाची भावना अशीच होती; मगधदेशांत जरासंधाला असेंच वाटे; चेदिदेशांत शिशुपालाची हीच मनोदशा होती; जलाशयांत राहाणारा कालिनाग असेंच मानीत असे; द्वारकेवर हल्ला करणाऱ्या कालयवनाची विचारसरणी हीच होती; म्हण

ॐ बांकिमचंद्र = वकरचंद्र ( the crescent Moon )

पापां नरकासुराला अशीच शिकवण मिळाली होती; आणि दिल्लीलासम्राट कौरवेश्वर-सुद्धां याच वृत्तींत वाढला होता. हे सर्व महापराक्रमी राजे अंध किंवा अज्ञानी नव्हते. त्यांच्या दरबारांत अतिहासवेस्ते, अर्थशास्त्रविशारद आणि राजकार्यभुरंघर असे अनेक विद्वान होते. ते आपली शास्त्रे पिळून त्यांचे सार काढून आपापल्या सम्राटांना ऐकवीत असत; पण जरासंध म्हणे, 'तुमचे अतिहासाचे सिद्धान्त ठेवा बाजूला; माझा पुरुषार्थ माझ्या बुद्धिबळाने आणि बाहुबळाने हे तुमचे सिद्धान्त खोटे पाडण्यांत आहे.' काळयवन सांगे, 'मी एकच अर्थशास्त्र जाणतो: दुसऱ्या देशांना पिळून त्यांचे धन हरण करणे; धनधान होण्याचा हाच एकमात्र सरळ, सोपा आणि म्हणून नशास्त्र मार्ग आहे.' शिशुपाल म्हणे, 'न्याय अन्याय हे सामान्य लोकांच्या आपत्तांतोळ मांडणतंयचांत चालतील. आम्हां आहेतच ममगट, आमची जातच वेगळी. अिज्जत आणि अिम्मत हाच आमचा धर्म.' कौरवेश्वर म्हणे, 'जितकी म्हणून रत्ने आहेत तो सर्व आमचा वारसा; आमच्या कडेच तीं आली पाहिजेत. यतो रत्नभुजो वयम् । (कारण आम्ही रत्नभोगी आहोत-रत्नांचा उपभोग घेण्यासाठीच आम्ही जन्माला आलो आहोत.) जगांत जेवढे म्हणून तलाव आहेत ते सर्व आमच्याच विहारासाठीं आहेत. लढाओ केल्यावाचून कुणालाहि सुओच्या अग्रावेवढीमुद्धा जमीन आम्ही देणार नाही.'

पद्मपातशून्य नारदांनीं कंसाला सावध केले होते कीं वाझा परक्या शत्रूला तूं पुष्कळ जिकले असशील, पण तुझ्या साम्राज्यात-नव्हे, तुझ्या घरांतच-तुझा शत्रू उत्पन्न होईल. ज्या सावध्या वहिणीला तूं आश्रित दासीच्या स्थितीला नेअून ठेवले आहेस तिच्याच पुत्राच्या हाताने तुझा नाश होईल; कारण तो धर्मात्मा असेल. त्याचा तेजोवध करण्याचे जितके प्रयत्न तूं करशील ते सारे त्यालाच अनुकूल होतील. कंसाने मनांत विचार केला, 'Forewarned is forearmed.' अेवढी सूचना वेळेवर मिळाली आणि 'पाण्याअगोदर पाळ' आपण न बांधली तर आपण अतिहासज्ञ कसले? आपण सम्राट कसले? नारदांनीं सांगितले 'ही तुझी विनाशकाळची विपरीत बुद्धि आहे. मी सांगत आहे हा अतिहासाचा सिद्धान्त नाही, ही धर्माची अनुभव-वाणी आहे; हे सनातन सत्य आहे. वसुदेव-देवकींच्य' आठ अपत्यांपैकीं अेकाच्या हातून तुझे मरण घडून येणारच. तुला आतां एकच उपाय आहे. अजून पश्चात्ताप कर आणि शरीहरीला शरण जा.' मानी कंसाने

तिरस्कारपूर्वक हंसून उत्तर दिले, ' सम्राट हे साम्राज्यभूमीवर पराजय घेतल्यावांचून पडचात्ताप करीत नसतात. ' ' तथास्तु ' म्हणून निराश झालेले नारद चालते झाले. कंसांने विचार केला, आजपर्यंतचे सम्राट यशस्वी झाले नाहीत याचें कारण त्यांचा बेसावधपणा; त्यांना पुढें सावध रहायचें समजलें नाहीं. मी सुद्धां जर गाफिल राहिलों तर मलाहें पराजय घ्यावा लागेल. पण त्याचें नाहीं कांहीं अेवढें. जो वीर आहे. त्यानें सदेदित जयाची धडपड करावी. नि पराजयासाठीं तयार राहावें. हरलों तर त्यांत वाओट कांहीं नाहीं; पण धर्माच्या नांवानें सुखातीलाच वांकायचें यांत नामुष्की आहे. धर्माचें साम्राज्य साधुसंत-वैरागी आणि देव—ब्राह्मण यांना लखलाभ असो; मी आहे सम्राट. मी अेक शक्तीलाच ( सक्तीलाच ) ओळखतों.

वरून होअून कंसांने वसुदेवाच्या सात निरपराध अर्भकांचा खून केला आहे. कृष्ण जन्माच्या वेळीं ओश्वरी लीला झाली. आणि कृष्णपरमात्म्या-अैवजों कन्यादेवधारी शक्ति कंसाच्या हातीं आली. कंसांने तिला जमिनीवर आपटली, पण शक्तीनें कांहीं शक्ति मरायची आहे थोडीच ? वसुदेवांने गुप्त रूपानें कृष्णाला गोकुळांत आणून ठेवले. पण परमात्म्याला कोणतीच गोष्ट लपवून ठेवावयाची नव्हती. परमात्म्याला कुठें उघडपणाची भीति ( Sin of secrecy ) होती ? शरभिया झालेल्या कंसाला शक्तीनें अट्टाहास करून सांगितलें, " तुझा गत तर गोकुळांत ' दिन दूना रात चौगुना ' असा वाढत आहे. " मथुरे-हून गोकुळवृंदावन फारसें दूर नाहीं, चारपांच कोस सुद्धां नसेल. कंसांने कृष्णाला मारण्याचें जेवढें म्हणून सुचले तेवढे प्रयत्न केलें. पण दरीकृष्णाचें मरण कशांत आहे हें त्याला समजलें नाहीं. श्रीकृष्ण कांहीं अमर नव्हते. तसे मरणांधीनहि नव्हते. धर्मकार्य करण्यासाठी ते आले होते, धर्माचें राज्य स्थापन झालें नाहीं तोंवर ते विराम कसें पावतील ? कंसाला वाटलें कृष्णाला आपल्या दरबारांत बोलावून त्याला मारूं, पण तेथेंच त्याची बाजी बिघडली, कारण प्रजेनें परमात्मतत्त्व ओळखलें आणि ती परमात्म्याला अनुकूल झाली.

कंसाचा नाश झालेला पाहून जरासंधानें सावध न्हायला पाहजे होते. पण जरासंधाला वाटलें कीं, नाहीं, कंसापेक्षां मी अधिक सावध आहे, मी अनेक भिन्न भिन्न अवयव सांठून माझें साम्राज्यशरीर पचळ केलें आहे. मल्लयुद्धांत माझ्या

बरोबरीचा कोण आहे ? मझ्या नगीचा कोट दुभेंच आहे, मला भीति कसली ? पण जरासंधाच्याहि बाभळीच्या दांतणासारख्या देन चिरफळ्या झाल्या. कालिनाग आपल्या जलस्थानाला नमुनेदार सुरक्षित स्थान समजत होता. त्यांचे विष असह्य होते. नुसत्या फुत्काराने तो मोठमोठ्या फौजांना चीत करी; त्याच्या विषाचेही कांहीं चालले नाही. कालयवन चढाओढी करून आला, पण निजलेल्या मुचकुन्दाच्या करोधाग्नेने मधल्यामध्येच जळून मेला. नरकासुर एका स्त्रीच्या हाताने पराभूत झाला आणि मेला. कौरवेश्वर दुर्योधन द्रौपदीच्या करोधवह्नीत भस्म झाला; आणि शिशुपालाला त्याने केलेल्या भगवन्निर्देनेच मारून टाकले.

षड्रिपूसारखे हे सहा सम्राट त्यावेळीं मेले. सप्तलोक आणि सप्तपाताळ सुखी झाले आणि जन्माष्टमी सफल झाली. तरी अितकथा काळानंतरमुद्धां दरवर्षी आपण हा उत्सव कशासाठी करित असतो ? अवेढ्याचसाठी कीं अजून आपल्या हृदयांतून त्याचप्रमाणे सामाजिक जीवनांतून षड्रिपूंचा नाश झालेला नाही; आपल्याला ते अत्यंत पीडा देत आहेत; आपण निराश झाल्यासारखे होतो, अशा प्रसंगी आपल्या हृदयांत कृष्णाचा जन्म झाला पाहिजे. 'जेथे पाप आहे तेथे पापपुंजहारीहि असतो' या आश्वासनाचा आपल्या हृदयांत अुदय झाला पाहिजे. मध्यरात्रीच्या अंत्रःकारांत कृष्णचंद्राचा अुदय झाला तरच निराश झालेले जग आश्वासित होऊन आणि धर्मामध्ये दृढ राहू शकेल.

४-९-२१.

### ३ लोकनायक श्रीकृष्ण

ज्याला कोणाचा आश्रय नाही त्याला म्हणे महादेवाकडून आश्रय मिळतो. आंधळे, पांगळे, अपंग, वेडे यांनाच नव्हे तर भूतप्रेत, विषधर सर्प अत्यादीनामुद्धां महादेवाजवळ आश्रय मिळतो. विष्णूची कीर्ति जरी अशी गायिलेली नसली तरी तो मुद्धां दीनानाथ आहे. कृष्णावतार तर दीनदुबळे आणि दुःखी यांच्यासाठीच होता. श्रीकृष्ण हा प्रजाकीय अवतार आहे दाशरथी रामाला आपण 'राजा रामचंद्र' म्हणतो. श्रीकृष्णाला 'राजा श्रीकृष्ण' म्हटले तर कानाला कसे चमत्कारिक वाटते ! श्रीकृष्ण जरी मोठमोठ्या सम्राटांचेहि अधिपति होते तरी ते बहुजनसमाजाचेच होते.

लहानपणीं त्यांनी गवळ्याचा घंदा केला, मोठे झाले तेव्हा सऔस (सारथी) बनले. राजसूय यज्ञासारख्या राजकीय उत्सवांत उष्ट्या पत्रावळी उचलण्याचें काम त्यांनी स्वतःसाठीं पत्करलें. आज कोणता लोकनायक अितकें निष्पाप जीवन दाखवूं शकेल ? श्रीकृष्णांनीं अिद्राचा गर्वज्वर अुतरविला, वरद्व्याचा ज्ञानगर्व शमविला. धर्मे-शास्त्रांच्या कोंडत्या हवेंत वाढलेल्या अृषींना आपलें रहस्य समजावून दिलें, नारदाचा मोह घालविला, तरी स्वतः शेवटपर्यंत गोपयंथूच राहिले. गोपीजनवल्लभ हेंच नांव त्यांना पसंत पडलें. वनमाला हीच आभूषण म्हणून त्यांना आवडली; सुदाम्याचें पोहे, विदुराघरच्या कण्या आणि द्रौपदीच्या थाळीतील भाजीचें पान खाऊनच त्यांचें हृदय संतोषलें. कुञ्जेची सेवा स्वीकारण्यांतच त्यांनी कृतार्थता मानली. गरीबांचे साहाय्यक, 'दीनन दुखहरन देव संतन हितकारी' च ना ते !

श्रीकृष्णांनीं गीता अुपदेशिली. कशासाठीं ? युधिष्ठिराला साम्राज्यपद देवविण्यासाठीं ? छेः छेः, 'स्त्रियैवैश्यास्तथा शूद्राः' सुद्धां परमगति मिळवूं शकतात हें आश्वासन देण्यासाठीं ; 'अनन्य भक्तांचा योगक्षेम मी स्वतः चालवितो' अशी खात्री देण्यासाठीं ; दुर्गाचारीसुद्धां जर पश्चात्ताप करील आणि अीश्वरभजन करील तर तो मुक्त होऊन जातील असें वचन देण्यासाठीं ; भक्त आपलें हृदय शुद्ध करील तर त्याला सर्व प्रकारचें पांडित्य-बुद्धियोग पुरविण्याची हमी देण्यासाठीं.

आणि यां गीतेंत भगवंतांनीं तत्त्वज्ञान तरी कसलें अुपदेशिलें आहे ? भगवान म्हणतात, 'तुम्ही ज्ञानी खुशाल व्हा, पण तुम्हांला लोकसंग्रह सेडतां येणार नाहीं. खरे ज्ञानी असतात ते तर सर्वभूतहितेऱताः असतात.'

श्रीकृष्णांनीं अवतार घेअून केलें काय ? कृत्रिम प्रतिष्ठा मोडली, अभिमानाी प्रतिष्ठित लोकांना अपमानित केलें आणि निष्पाप हृदयाच्या दीनजनांना श्रेष्ठ करून दाखविले. धर्मांला पांडित्याच्या जाळ्यांतून वांचवून भक्तीच्या शुभ्र आसनावर बसविलें, राजा अिद्राचा गर्व हरण करून, त्याचा करभार बंद करून प्रजेत गावर्धनरूपी देशपूजा सुरू केली. राजेलोकांना नम्र केलें आणि लोकांना अुन्नत केलें. आणि अितकें करूनहि स्वतः लोकांचे पुढारीसुद्धां बनले नाहान.

अेकदांच-फक्त अेकदांच-लोकांची श्रीकृष्णावरील श्रद्धा ढळली होती. देशांत श्रीकृष्ण आहे म्हणून जरासंध पुनः पुनः आपणांवर चढाओी करून येतो अशी लोकांची समजूत झाली. श्रीकृष्णांनीं लोकमताला मान देअून मध्यदेशाचा त्याग

करून समुद्रवल्यांकित द्वारकेंत जाऊन वास्तव्य केलें. यांत लोकांवर राग नव्हता. त्यावेळीं आयोनीयन लोक हिंदुस्थानावर हल्ला करण्याच्या तयारींत होते. त्यांना विरोध करण्यासाठी, त्यांचा हल्ला थांबविण्यासाठी पश्चिम किनाऱ्यावर अेक जबर-दस्त लष्करी ठाणें बसविल्यानेच लोकांचें रक्षण होण्याजोगें होतें. श्रीकृष्णांनी द्वारावतीला जाऊन हिंदुस्थानच्या या दाराचें रक्षण केलें आणि आर्यावर्ताला सुरक्षितपणा आणला. अशा दीननथाच्या शतकानुशतकें साजरा केल्या जाणाऱ्या जन्मदिवसाला लोकसत्तेच्या या दिवसांत दुष्पट महत्त्व आहे.

४-९-२१

## ४ दिव्य जन्मकर्म

आपण सुखांत असूं किंवा दुःखांत असूं, जागृत असूं किंवा निवलेले असूं, स्वतंत्र असूं किंवा परतंत्र असूं, जुलमी असूं किंवा गुलाम असूं, अेक असूं किंवा फुटलेले असूं, जन्माष्टमी ही दरवर्षी येतच राहाणार. सूर्य उगवतो आणि मावळतो, चंद्राचो वृद्धि होते आणि क्षय होतो, नदीचें पाणी वाहात असतें, अतुचकर चालूच असतें, ग्रहणें लागतात आणि सुटतात, कालप्रवाह वाहात जात असतो, तशी जन्माष्टमी नामस्मरण करवीत येते आणि नामस्मरण करवीत जातें. आपण स्वतंत्र होतों तेव्हांहि जन्माष्टमी येअी; आपलें पतन होअूं लागलें तेव्हांहि जन्माष्टमी येअी; आपण फिरून उठण्याचा प्रयत्न करीत आहों तेव्हांहि जन्माष्टमी आली आहेच. तुम्ही तिचा उपदेश अेका किंवा अेकू नका, ती यायची आणि जायची. ज्याचें ध्यान जागृत असेल तो तिचा उपदेश अेकेल आणि धन्य होअील.

जन्माष्टमी पुरातन आहे, सनातन आहे, कारण कीं तो संपूर्ण आहे. जन्माष्टमी हा कृष्णावताराचा सण आहे. कृष्णचरित्र अद्भुत, विविध आणि संपूर्ण आहे—क्षीरसागरासारखें आहे. ज्याच्यापाशीं जितकी शक्ति असेल तितकें. त्यांतून त्याच्या घेतां येअील. तरी श्रीकृष्णाच्या चरित्राचा परतंत्र मी गांठला आहे असें कोणी म्हणूं शकणार नाहीं.

×

×

×

×

श्रीकृष्णांचा जन्म कारागृहांत झाला. मातापित्यांच्या वियोगांत त्यांना बालपण घालवावें लागलें. गोपींच्याशीं विविध लीला खेळण्यांत ते मग्न असत, असें चित्र-



पुराणकारांनी आपल्याला दिले आहे. पण आपले आजीबाप परराज्यांत बंदोबान आहेत, ही गोष्ट श्रीकृष्ण विसरले नव्हते, श्रीकृष्णांनी आपले सारे बाळपण गेपींच्यात बसून मुरली वाजविण्यांत घालावले नव्हते. मेहनत करून ते मल्लविद्येंत प्रवीण झाले होते. दुष्टांचे दमन करण्याचा वस्तुपाठ त्यांनी लहानपणापासूनच घेतला होता. मथुरेच्या राजकारणाशी ते परिचित राहात. अनुकूल वेळ येतांच त्यांनी कंसाचा कांटा काढला, मातापित्यांना सोडविले आणि मगच गुरूपाशी विद्या शिकायला गेले.

ज्यायोगे मातेची मुक्ति होऊन, पित्याची मुक्ति होऊन ती विद्या प्रथम त्यांनी घेतली. त्या नंतर आत्म्याचा भूक शमविण्यासाठी, ज्ञानाची तहान भागविण्यासाठी आणि विद्यानंद लुटण्यासाठी ते सांदीपन च्या विद्यापीठांत गेले. प्रथम माता-पित्यांची मुक्ति, मग विद्या-हा श्रीकृष्णाचा जीवनमंत्र होता. मातापित्यांच्या मुक्ती-मार्गे-स्वदेशाच्या मुक्तीमार्गे-तारुण्यातील दिवस घालवावे लागले याचा श्रीकृष्णांना कधीही पश्चात्ताप झाला नाही! कर्तव्यपालनाच्या, अतुसाहाने श्रीकृष्णांची बुद्धि अितकी तीव्र झाली होती की गुरुजवळ विद्या शिकतांना काळ किंवा श्रम त्यांना लागलेच नाहीत. मातापित्यांना सोडविले, विद्या पुरी केली, गुरूंना दक्षिणा देऊन टाकली, आणि मग श्रीकृष्णांनी विवाह केला आणि विवाहानंतर सरे आशुष्य निराश्रितवृत्तीने परोपकार करण्यांत घालविले. जेव्हां अितर सर्वजण आपल्या राज्याचा आणि आपापल्या अुत्कर्षाचा विचार करीत त्या वेळी श्रीकृष्ण सगळ्या भारतवर्षाच्या राजकारणाचा आणि धर्मसंस्थापनेचा विचार करीत. लोकसंग्रह म्हणजे लोकसंख्येचा संग्रह असे श्रीकृष्ण मानीत नव्हते, आणि म्हणूनच त्यांनी भयंकर मनुष्यसंहार पहात असतांनासुद्धा धर्मालाच चिकटून राहण्याची हिंमत दाखविली आणि स्वतः अप्रतिम मल्ल असूनहि आणि देशामध्ये अेवढे प्रचंड, राष्ट्रक्षयकारी युद्ध माजले असतांनासुद्धा ते निःशस्त्र आणि अयुद्ध्यमान राहू शकले. दुर्योधन आणि अर्जुन दोघे श्रीकृष्णांची मदत मागायला आले त्यावेळी त्यांनी दोन्ही राजपुत्रांपुढे ठेवलेली निवड अर्थपूर्ण आहे—निःशस्त्र कृष्णाला पसंत करा, किंवा यादवसेना पसंत करा. दोघांनी आपल्याला पाहिजे ती निवड केली आणि तिचा परिणाम काय झाला ते आपण पाहातोच.

भारतीय युद्ध महान होतें, पण कृष्णनरित् त्याहूनहि महत्तर आहे. महाभारतांत गैरीशंकर आणि धवलगिरीसारखीं दोन पर्वट शिखरें झळकत आहेत. या दोहोंच्या तुलनेशीं अितर सारीं अतुंतुंग शिखरेंसुद्धां टेकड्यासारखीं दिसतात. हीं दोन शिखरें म्हणजे भीष्म आणि कृष्ण. त्या महान युद्धांत 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' शक्ति या दोघांचीच. दोघांहि सारखेच अनासक्त, सारखेच धर्मनिष्ठ, सारखेच परोपकारी आणि सारखेच योगी. तरी या दोघांत केवढें अंतर ! दोघांचे समाजशास्त्र वेगळें, राजकीय तत्त्वज्ञान वेगळें आणि दोघांचें जावित्कर्तव्य वेगळें. चालूं असलेली राजसत्ता टिकवावी, तिच्या द्वाराच होतील तितकें लोककल्याण साधावे, आणि वर्तमानकाळाला प्रामाणिक राहावें हा भीष्माचा विचार. तर श्रीकृष्ण अन्यायाचे शत्रू, पापपुंजांचे आग्न, रुढींचे विध्वंसक. त्यांची दृष्टि भविष्याकडे. राजकीय प्रश्नांत भीष्माचार्य हे सनदशीर धोरणाला चिकटून राहाणारे, तर श्रीकृष्ण जुन्या सडून गेलेल्या अकूणअक सनदशीर धोरणाच्या मुडद्याला मूठमाती घायला निघालेले. त्यामुळे भीष्मांनीं सत्तेचा पक्ष घेतला आणि श्रीकृष्णांनीं सत्याचा घेतला.

समाजशास्त्रांतसुद्धा दोघांमध्ये हाच भेद होता. भीष्माचार्य म्हणत, राजा कालस्य कारणम्-राजा घडवील तसा काळ. श्रीकृष्ण म्हणत, राजा कसला काळ षडवितो ? काळ तर मी स्वतःच आहे आणि अकूणअक जुन्या रुढींचा नाश करण्यासाठीं मी अवतरलों आहे. कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः । भीष्माचार्यांची मान धर्मशास्त्रापुढें नेहमी वांकलेली असायची आणि धर्मशास्त्रांच्या आज्ञा संभाळण्यांत ते कृतकृत्यता मानायचे; याच्या अुलट श्रीकृष्ण हे धर्माच्या आज्ञेमार्गे असलेले. धार्मिक रहस्य समजून घेऊन त्यालाच चिकटून राहायचे.

×                      ×                      ×                      ×

तरीहि काय आश्चर्य ! भीष्माचार्यांनीं प्रतिज्ञापालन करून भारतवर्षांत राज्यव्हाति होऊं दिली आणि ज्या समाजव्यवस्थेला ते चिकटूं पडात होते तिचाच त्यांनीं भारतयुद्धद्वारां अुच्छेद केला. श्रीकृष्णांनीं प्रतिज्ञाभंग करून आपल्या भक्ताचे प्राण वांचविले आणि भीष्माला यश दिलें.

×                      ×                      ×                      ×

शरीर ज्याप्रमाणें अनेक नवीं नवीं वस्त्रे धारण करते, आत्मा जसा नवा नवा देह धारण करतो तसें धर्माच्या सनातन आत्म्यालाहि नवे नवे विधी शोधून

काढल्यावांचून गत्यंतर नसतें. इंद्राच्या पूजेंत जेव्हां कांहीं अर्थ अुरत नाहीं तेव्हां गोवर्धनाची पूजाच चालविवी पाहिजे आणि यज्ञयागाची धामधूम करण्यापेक्षां श्रीकृष्णाला शरण जाणें हेंच अधिक श्रेयस्कर आहे हें जन्माष्टमी आपल्याला शिकविते.

श्रीकृष्णाचें चरित्र आपण अजून लक्षपूर्वक पाहिलेलें नाहीं. श्रीकृष्णाची बालपणाची लीला आणि मोठेपणांतील जगदुद्धाराचे अवतारकृत्य अितकें कांहीं मोहक आणि अुदात्त आहे आणि श्रीकृष्णाला अवतार समजून आपण अितकें कांहीं आश्चर्यमूढ झालों आहोंत कीं या पुरुषोत्तमानें आदर्श मनुष्य म्हणून कशा प्रकारें आपलें आयुष्य घालविलें तिकडे आपलें लक्ष जात नाहीं. आजपर्यंत आपण जितक्या नररत्नांचीं चरित्रें वाचलीं आहेत अथवा पाहिलीं आहेत त्या सर्वोद्भूत श्रीकृष्णाचें चरित्र वेगळें पडतें. लहानपणां शिंय्यावरच्या लोण्याचा नैवेद्य आत्मदेवाला समर्पण केल्यानंतर यशोदामाता पकडील या भीतीनें घाबरलेल्या श्रीकृष्णाची नाटकी लीला सोडून दिली तर श्रीकृष्णाच्या संबंध जीवनांत दुःखाचा किंवा भयाचा कुठें लवलेशहि आढळत नाहीं. अितक्या विविध घटनांनीं परिपूर्ण जीवन असूनसुद्धां श्रीकृष्ण कधीं दिड्मूढ् झाले नाहींत, दुःखानें दडपून गेले नाहींत किंवा अुदासीनतेनें नेभळे बनले नाहींत. ज्याला आसक्तीच मुळीं नाहीं तो अुदासीन कशाला राहील? जो ब्रह्मानंद जाणतो तो कशाला भिणार? सर्व भूतांमध्ये जो स्वतःस पाहातो त्याच्या मनांत राग, द्वेष किंवा जुगुप्सा कोठून असणार? हेंच श्रीकृष्णाचें पूर्णत्व आहे. श्रीकृष्णाला अेका ब्राह्मणाने लाथ मारली ती त्यांनीं अलंकाराप्रमाणें धारण केली. गांधारीनें घोर शाप दिला त्याचा श्रीकृष्णानें आपल्या अवतारकृत्याचा सहाय्यक म्हणून आदर केला. अभिमन्यु मारला गेला, घटोत्कच मारला गेला, द्रौपदीच्या पुत्रांचा वध झाला, अठरा अक्षौहिणीं सेनेचा नाश झाला, महान महान आचार्य पडले, यादवकुळाचा संहार झाला, पण श्रीकृष्ण जसेच्या तसेच अक्षपुब्ध, अविचलित, गंभीर जणू काय परलयकाळानेंतरचा महासागरच

X

X

X

X

भारतीय युद्धांत संग्रामभूमीवर घायाळ झालेले हजारो मुमूर्षू याद्वे रक्ता-मांसाच्या चिखलांत लोळत पडले आहेत आणि त्यांच्यामध्ये श्रीकृष्णांची काह्ण्यमूर्ति पत्येकाच्या माथ्यावर आपला शीतल वरदहस्त फिरवीत द्दित आहे असें चित्र

अखादा समर्थ चित्रकार काढून देतील ! शेवटच्या घटकेला श्रीकृष्णाचे दर्शन ! हे महाभाग्य ज्या काळाला मिळाले तो काळ धन्य होय ! त्या वेळच्या कवींनी 'मरणोन्मुख वीरांचा विसावा हा श्रीहरी आहे' अशी भावपूर्ण गीते गायिली असतील !

X

X

X

X

जवरदस्त संकट पाहिले की आघाडीला राहावे किंवा अकड्यानेच सारे संकट आपल्या डोक्यावर घ्यावे आणि जेव्हा राज्यवैभव किंवा कीर्ति मिळण्याचा प्रसंग येईल तेव्हा लाजाळू वधूप्रमाणे मागे मागे राहावे, हा श्रीकृष्णाचा स्वभाव किता वरे बुदातमधुर आहे. गोकुळांत जेवढे म्हणून रात्रपस आले तेवढे श्रीकृष्णाने स्वतः मारले. यमुनेत कालिया नाग येऊन राहिला आणि त्याने मान्या वृंदावनाला पाडा घायला मुखात केली तेव्हा आपले काय होईल याचा विचार न करता श्रीकृष्णाने कंदवाच्या झाडावरून संकटाच्या खात्रीत बुडी घेतली. सारे गोपाल बालक भयभीत आले. कित्येकजण घराकडे पळाले, कित्येकजण तिथच्या तिथेच मूढ होऊन खांबासारखे थिजून गेले. कोणाला कांहीं सुवेना. एकट्या श्रीकृष्णांनी कालियाबरोबर युद्ध करून त्याला हराविले, नमविले आणि जीवनदान देऊन सोडून दिले. कंसवधांतहि ते स्वतःच आघाडीला आणि जरांमधवधांतमुद्धां तेच अग्रेसर. जेथे जेथे म्हणून संकट असेल तेथे तेथे ते स्वतः हजर आणि पुढारी.

X

X

X

X

अिंद्राने परलयकाळाचा वर्षाव सुरू केला तेव्हासुद्धा श्रीकृष्णाने गोवर्धन उचलून प्रजेचे रक्षण केले; पण त्याबरोबर लोकांना हाहि बोध दिला की गोवर्धन उचलण्यांत जेव्हा प्रत्येक मनुष्य मदत देतील तेव्हांच प्रभु श्रीकृष्ण स्वतःचे बोट उचलेल. शक्ति परमात्म्याची पण प्रयत्न तुमचा.

X

X

X

X

जन्माष्टमीदिवशी श्रीकृष्णाजवळ आपण काय मागावे ? प्रत्येकाने आपापल्या वृत्तीप्रमाणे मागून घ्यावे. पांडवगीतेत भारतकालीन प्रमुख व्यक्तींनी श्रीकृष्णाजवळ काय काय मागितले होते ते श्लोकवद्ध केले आहे. कृष्ण कृष्णाप्रमाणे मागून घेतील, भक्त भक्तहृदयाने मागून घेतील, अभिमाना अभिमानाला शोभेल अशी वचने काढील,

आपलें पापसुद्धां परमात्म्यावर ढकलून देतील. पण मागायचें असेल तर वीरमाता, धर्ममाता, तपस्विनी कुंतीनें जें मागणें मागितलें तेंच मागितलें पाहिजे. भागवतांत कुंतीची प्रार्थना किती सुंदर शब्दांत दिलेली आहे ! कुंतीमाता म्हणते, ' हे भगवन्, ज्यामुळें तुझें विस्मरण होतील असें वैभव मला नका. ज्यायोगे सदोदित तुझें चिंतन होतील, शरणांगतता वाढेल अशी आपत्ति तूं आम्हांला दे. भगवन् ! आम्हांला आपत्ति दे- ' आपदः सन्तु नः शश्वत् । ' कारण,

विपदो नैव विपदः संपदो नैव संपदः ।

विपद्विस्मरणं विष्णोः संपन्नारायणस्मृतिः ।

परमात्म्याला विसरणें हेंच मोठें संकट आणि नारायणाचें अखंड स्मरण हीच संपत्ति, हेंच वैभव, हेंच श्रेयःप्रेय, हेंच स्वराज्य, स्वाराज्य आणि साम्राज्य.

१३-८-२२

## ५ परतीक्षा

जन्माष्टमीसारखे उत्सव वर्षानुवर्षे आपण कां म्हणून साजरे करीत असतो बरे ? ज्या दिवशीं आपल्या हृदयांत श्रीकृष्णाचा अुदय होतील त्याच दिवशीं आपली खरी जन्माष्टमी होतील. तोंपर्यंतच्या अशा जन्माष्टम्या फुकटच आहेत. आपल्या हृदयांत कृष्णजन्म केव्हां होणार कुणाला माहोत ! म्हणूनच शबरीप्रमाणें आपण अखंड त्याच्या परतीक्षेत, त्याच्यासाठीं आतुर राहिलें पाहिजे. अशा आतुरतेशिवाय हृदयांत कृष्णजन्म कधींहि होणार नाहीं होहि तितकेंच खरें.

चोर येतील म्हणून आपण पहारा करतो तोसुद्धां रात्रभर करावा लागतो. चोर काय सांगून येतात थोडेच ? ते केव्हांहि येतील. सरहद्दीवर शत्रूचा हल्ला येतील म्हणून अखंड चौकी पहारा ठेवावा लागतो. वर्षानुवर्षे हा पहारा कायम ठेवावा लागला म्हणून काय झालें ? सरहद्दीवर बेसावधपणे राहून मुकींच भागणार नाहीं. समुद्रांतील तुफानांत जहाज फुटलें म्हणजे जीव बचावण्यासाठीं म्हणून बुचाच्या बंब्या ( कॉर्क जॅकेट ) घालून लोक समुद्रांत पडतात. अैन संकटाच्यावेळीं घाबरलेल्या आणि क्लृब्ध मनःस्थितीत कांहीं सुचणार नाहीं या भीतीनें खलाशांच्याकडून वेळोवेळीं त्याची कवाळीत करून घेण्यांत येते, नाहींतर आणीबाणीच्या प्रसंगीं चूक व्हायची. श्री. मेघाणी या प्रख्यात गुर्जर लोककथालेखकानें अका लुटारूची गोष्ट दिली

आहे. घरांत पाहुणे केव्हां येतील कुणास ठाऊक, आतिथ्य करण्यांत चूक झाली तर स्वत्व गेलं, अशा समजुतीने वाटेल तेथून धन पैदा करून तो अखंड स्वैपाक तयार ठेवात असे. ती गोपीचंदाची आओ भैनावतीमुद्द्यां गोसावीमहाराज केव्हां येतील हे सांगतां येणार नाहीं अेवढ्यासाठीं अूंढ अूंढ जेवण हातांत घेऊन सकाळपासून संध्याकाळपर्यंत सुभीच राहात असे. बेसावधपणा झाला आणि तेवढ्यांत स्वामी-महाराज आले तर ? अृषींनीं शबरीला सांगून ठेवलं होतं कीं शरीरामचंद्र येऊन तुला दर्शन देतील आणि तुझा सुद्धार करतील. लहानपणासून थेट म्हातारपणापर्यंत सारा जन्म तिनें रामाच्या प्रतीक्षेत घालविला. अृषींचे शब्द फुकट जायचे नाहीत असा तिला विश्वास होता. रामदर्शनाच्या आशेनें, शरीर थकलं होतं तरी, ती टिकली. शेवटीं तिनें रामाचें दर्शन घेतलं, रामाचें स्वागत केलं; मग जगण्यांत कांहीं तिला अर्थ वाटला नाही. अंक संबंध आयुष्य तिनें आतुरतेत घालविले.

दर्शनाच्या आनंदापेक्षां ही आतुरतेची कृतार्थता कांहीं विशेष आहे. प्राप्ती-पेक्षां प्रतीक्षेत जीवनाची गोडी अधिक आहे. श्रद्धा, आकांक्षा, तपस्या, आशा, निराशा—हेच जीवनाचें दुर्लभ भांडवल आहे.

हे दुर्लभ भांडवल मिळविण्यासाठीं अशा उत्सवांचा उपयोग आहे.

जगामध्ये राक्षसांचें पेंव फुटलं आहे. गरीबांचा कोणी वाली राहिला नाही. राक्षस अनेक रूपे धारण करून प्रजेला पीडतात, दांभिकपणें फसविताने, पापमार्गाकडे लोकांना लावून घेतात आणि खड्ड्यांत पाडतात. माणसाची शक्ति, माणसाची बुद्धि सर्व खर्चून गेली आहे. लोक निराश आणि नास्तिक होऊं लागले आहेत. अशा वेळीं मंगल हृदयाने 'आतां ताणारा तूच !' म्हणून त्या करुणामयाची प्रार्थना केली, अंतर्दामी जागा झाला, आणि युगावतार प्रगट झाला. श्रद्धापूर्वक हे सर्व मनांत आणून अेकार होण्याचा आपण प्रयत्न करतो, याचेंच नांव जयंती-उत्सव. धरणीला तहान लागली म्हणजे आकाशांतील मेघांना जसा पाव्हा फुटतो तसा अशा व्याकुळतेबरोबर आणि आतुरतेबरोबर अवतारी पुरुष प्रगट व्हायचाच. त्याला हृदयांत स्थान देण्यासाठीं हृदयाचा परिष्कार करावा, हृदय घांसून पुसून स्वच्छ करावें, तेथें आसन पसरून ठेवावें आणि त्याची वाट पहात राहावी, अेवढ्यासाठीं हे उत्सव आहेत. पाणी आणि बर्फ हीं जशीं भिन्न नाहीत, पाणी आणि वाफ यांच्यांत जसा

तात्त्विक भेद नाही तसाच ही परीक्षा आणि ही प्राप्ति यांच्यांत भेद नाही—असलाच तर केवळ अंशमात्र. दिवसेदिवस हा अंश वाढावा आणि वाढत राहावा अवेढ्यासाठी असे अनुत्सव ठेवलेले असतात.

## गोकुळाष्टमी

श्रावण वद्य ८

१ दिवस.

गोकुळाष्टमी म्हणजे गीतागायक, गोपाल कृष्णाची जयंती. या दिवशी गोसव्हेचा विचार प्रथम झाला पाहिजे. गोशाळेंसंबंधी कांहींना कांहीं सेवा या दिवशी शोधून काढली पाहिजे. मुली तर गाभीचा पूजा करतीलच. या दिवशी सर्वांनीं एकत्र बसून, आळी-पाळीनें अंक अंक अध्याय म्हणून अठराहि अध्यायांचा पाठ करावा. गीताशास्त्राचें थोडें विवेचन व्हावें. श्रीकृष्णांनीं कंस, जरासंध, शिशुपाळ, नरकासुर आणि दुर्योधन या पांच सम्राटांचीं साम्राज्यें मोडून टाकलीं त्याचा इतिहास आज सांगावा. यांतूनच नाट्यभागहि सांपडेल, त्याचा नाट्य-प्रयोग ठेवतां येईल. दुपारीं विद्यार्थ्यांनीं आणि शिक्षकांनीं मिळून फिरायला जावें आणि वनभोजन करावें. रात्रीं भागवतांतील अेखादी कथा सांगावी. या सणाचें विवेचन पुष्कळ वेळां झालें असल्यानें त्याचा येथे विस्तार केला नाही.

# गणपति उपासना

: : २२

( भाद्रपद शु. ४ )

आपला हिंदुधर्म हा अनेक लहानमोठ्या आणि जुन्या नव्या संप्रदायांचे एक मोठे अविभक्त कुटुंब आहे. मनुष्याच्या शक्तीप्रमाणे आणि बुद्धीप्रमाणे अनेक सत्य वेगळ्या वेगळ्या रीतींनी त्याला प्रतीत होते. त्यांत आणखी अनुभवान्यतिरिक्त आपली कल्पना आणि काव्यशक्ति यांची भर घालून मनुष्य त्याची विविधता पुष्कळ वाढवितो. काळाच्या प्रवाहामुळे माणसाच्या समजुतीत जे फेरफार होतात त्या सर्व फेरफारांतून कालक्रमाने तत्त्व विसरल्यामुळे किंवा पुसून गेल्यामुळेहि अनेक घोटाळे उत्पन्न होतात. पण मनुष्यप्राणि स्वभावाने असा कांहीं पुराणप्रिय आहे की त्यास देणारे हे घोटाळेसुद्धा संभाळून ठेवावेसे त्याला वाटू लागने; आणि या वृत्तीमधून कांहीं लाभ होतच नाही असें नाही. इतिहाससहाय असलेल्या शहाण्या माणसांना त्यांतून इतिहास मिळतो, विकासाचे तत्त्व सांपडते; आणि स्थूल बुद्धीची सामान्य माणसे त्यांतून जसे मिळवितात तेथील तसे आश्वासन मिळवून संतोष पावतात. विविध वृत्तींचे लोक जेथे मुळीसुद्धा अनेकवाक्यता नाही तेथेहि अशा परिस्थितीमधूनच अक्याचा अनुभव घेऊं लागतात.

गणेशचतुर्थीचा उत्सवच आपण घेऊं. गणपतीची उपासना या ना त्या पकारे वेदकाळापासून चालत आलेली आहे. पण आजकालचा गणेशपूजेचा पंथ वैदिक आहे असें सांगणे कठीण आहे. हिमालयाच्या पहाडांत जसे अनेक ठिकाणाहून लहानमोठे अनेक झरे निघतात आणि संयोगवशात् अनेक होऊन अनेक नदींचे नांव मिळवितात, तसेच या गणेशभक्तीचे झालेले दिसते. त्याच्या पौराणिक कथा पहायला जावे तर त्यांत कुठेहि मेळ बसत नाही. आकाशांतील तान्यांवरून उत्पन्न झालेल्या पौराणिक कथा आणि कल्पना यांच्यामध्ये जसा मेळ म्हणून कांहीं नसतो, तसेच या ठिकाणीहि झालेले दिसते.

आणि गणपति हाहि आकाशांतील अखाद्या ज्योतीवरूनच बनलेला देव कशा वरून नसेल ? गणपति हा रंगाने लाल असतो. त्याला लाल फुले आवडतात. तर ते



आकाशांतोळ मंगळ ग्रहच कशावरून नसेल ? गणपतीच्या कित्येक चतुर्थ्यांना 'अंगारकी चतुर्थी' म्हणतात. अंगारक म्हणजे मंगळ. ही अंगारकी चतुर्थी जर मंगळवारी आली तर तिचें पुण्य जास्त सांगितलें आहे. गणपतीला मंगळमूर्ति तर म्हणतातच. ग्रहांत मंगळाचें नांव आहे मंगळ पण हा शुभ ग्रह समजला जात नाहीं. गणपतीची विघ्नहर्ता विघ्ननाशक म्हणून ओळख करून दिली जाते, तरी मानवगृह्यसूत्रांत सांगितलें आहे कीं रुद्र आणि ब्रह्मदेव यांनीं विनायकाला गणांचा वरिष्ठ अधिकारी म्हणून नेमले आणि माणसाच्या कार्यांत विघ्न उपस्थित करण्याचे काम त्याच्यावर सोपविलें. महाभारतांत शिव, स्कन्द, विशाख वर्गारे देवता जशा मुलांना पीडा करतात असे वर्णन केले आहे तशीच स्थिति विनायकाच्या बाबतीतहि आहे.

जुन्या काळी देवांविषयीची कल्पना मिश्र होती. देव म्हणजे शक्ति. मनुष्याला ती त्रासहि देईल आणि मदतहि करील. राजाची खुशामत करून जसा मनुष्याला त्याचा अनुग्रह मिळवितां येतो, राजाची मर्जी खप्पा झालो म्हणजे त्याचा सत्यानाश होतो; तशीच कल्पना या देवांविषयीसुद्धा होती. गणपति प्रथम विघ्नकर्ता असावा. पुढे भक्तांनीं आराधना करून त्याला विघ्नहर्ता बनविला असावा.

अेक टिकाणी सांगितलें आहे कीं गजासुराला मारण्यासाठीं विष्णूनें पार्वतीच्या पेट्यां जन्म घेतला. दुसऱ्या अेका टिकाणीं म्हटलें आहे कीं महादेवानें चुकीनें आपल्या द्वारपाळगणाचें 'डोकें' अडविलें. आपली चूक लक्षांत येतांच खरा अपराधी जो गजासुर त्याचें डोकें कापून त्या गणाच्या खांद्यावर बसवून दिलें. या गोष्टींत अेखाद्या अनार्य पूजेचें वैदिक पूजेत रूपांतर केल्याचा अुल्लेख कदाचित् असावा.

गणपति किंवा गणेश हा अनेक देवांचा सरदार असला पाहिजे. पूर्वीच्या काळीं कित्येक प्रजासत्ताक राज्यां गणराज्यां म्हणून ओळखलीं जात. त्या गणराज्याच्या लोकसभेची देवता म्हणून गणपतीची स्थापना करण्यांत आली असेल. व्यक्तीला जसा आत्मा असतो तसा संघाटित समाजाला-समष्टीलाहि आत्मा असला पाहिजे. हा सामाजिक आत्मा म्हणजेच गणपति. गणपतीची पूजा करणें म्हणजे सामाजिक जीवनाला स्वतःची निष्ठा अर्पण करणें, अशीहि कदाचित् पूर्वीच्या काळीं भावना असावी.

तें कांहींहि असो, महादेव आणि विष्णु यांच्यामधला विरोध टाळण्यासाठीं गणपतीचा उपयोग चांगला होत होता. गणपति हा शैवहि आहे आणि वैष्णवहि

आहे. असाया शुभ कार्याला सुखात कारायची असली किंवा घराचा दरवाजा तयार करायचा असला तर तेथे गणपति वसविना की मिटले सारे झगडे.

आपण लिहायला ठिकठोरे तेव्हां अ, आ, इ, ओपासून सुरुवात करीत नाही. 'श्रीगणेश' पासून सुरुवात करतो. आज, 'श्रीगणेश' चा अर्थच मुळी 'आरंभ' असा झाला आहे. आद्य लिपिकार कोणी गणेश नांवाचा योजक असेल. त्यानें लिपी शोधून काढली तेव्हां लेखनाची सुरुवात कृतज्ञतापूर्वक त्याच्या नांवापासूनच झाली पाहिजे असा रिवाज पडला असेल. व्यासांना आपल्या डोक्यांत महाभारत रचलें, पण तें लिहून काढायला कोणी 'लेखक' मिळेना. शेवटीं गणेशानें त्यांची ही नड सारली. पुराणांत सांगितलें आहे कीं त्रिविष्टप (तिबेट) मध्ये 'लेख' नांवाचे देवगण राहात असत. ते लेखनकलेत प्रवीण होते. त्यांचा पुढारी गणपति होता. आपली लेखनकला फिनीशियामधून आलेली नसून तिबेटमधून आलेली असावी काय ? देववाणीच्या ध्वनीला व्यवस्थित स्वरूप देणारी आपली वर्णमाला शास्त्रीय आहे. वर्णमालेची योजना आर्यबुद्धीचे घटनांचातुर्य सूचित करते. आपली लिपिमाला तशी वाटत नाही. ती शास्त्रशुद्ध नाही. ही कुठून तरी बाहेरून आपल्याअिकडे आलेली असली पाहिजे. ती तिबेटमधून आली असली तर आश्चर्य नाही. पुष्कळ काळपर्यंत ब्राह्मण लोक तर लेखनकलेची अवगणनाच करीत आले. शेवटीं त्यांनाहि श्रीगणेशाला शरण जावें लागलें.

दुसरी ऐक कल्पना अशी आहे कीं गणेश हा खरोखर 'गणेश' नसून गुणेश आहे. उपनिषत्कालानंतर तीन गुणांची व्यवस्था वसविली गेली तेव्हां या तीन गुणांचा स्वामी म्हणून 'ओश सर्वा गुणांचा' असा गणपति करून वसविला गेला असावा.

वेदांतविद्या जेव्हा लोकसुलभ झाली तेव्हां पुष्कळ अनार्य देव आणि त्यांची अनार्य पूजापद्धति रूपक म्हणून ओळखली जाऊं लागली. ॐ कार अथवा परमव्यांत सत्त्व, रज, तम हे तीनही गुण आहेत. ॐ कारांत हत्तीच्या सोडेंसारखा आकार आहे. त्यावरून गणेश अथवा गुणेश हा गजानन समजला गेला. त्याच्या डोक्यावर अर्धचंद्र आहे तो हत्तीचा दांत झाला. मन मारल्यावांचून वेदांतज्ञानाचा साक्षात्कार होणार नाही तेव्हां मनाची देवता जो चंद्र त्याचें दर्शन टाकून ज्ञानाची आराधना केली असेल तरच चतुर्थी म्हणजे तुरीयावस्था कृतार्थ व्हायची. गणपति हा

अुंदरावर बसतो. अुंदीर म्हणजे काळ. मनुष्यजीवनाचे तंतू तोडून खाणारा काळ तो अुंदीर. त्याच्यावर ज्याची स्वारी असा गणपति तोच मोक्षदाता.

अशा रीतीने जंगली लोकांच्या अथवा अनार्य लोकांच्या अेखाद्या पशुपूजेवरून अेक अुपासना अुत्पन्न झाली, आणि ती बदलत बदलत वेदांत विद्येपर्यंत जाऊन पोचली, असेंहि कित्येकांचें मत आहे.

पण आज जेव्हां दरवर्षी शाहू आणि त्याचे तयार केलेले गणपती घरोघर पुजले जातात, तेव्हां त्या गणपतीच्या अुपासकांच्या मनांत काय ही सर्व वेदांतविद्या जागृत असते ? पूर्वीच्या काळाचा गणपत्य संप्रदाय भयानक होता. माणसाच्या करवंटांच्या आसनावर गणपतींचो स्थापना होत असे. जारण, मारण, अुच्चाटण अित्यादि गलिच्छ विद्या गणपतीच्या अुपासनेशीं जोडलेल्या होत्या. या सर्वांतून आज आपण पार पडलों आहोंत ही अेश्वराची कृपाच म्हणायची. धर्मव्यवस्थापक सांगतात कीं कलियुगांत अितर सारे देव झोपलेले आहेत. फक्त चंडी आणि विनायक—म्हणजे काली आणि गणपति— हे दोनच तेवढे जागृत आहेत. देवांतसुद्धां चातुर्वर्ण्य आहे असेंहि सांगितलें आहे. शंकर हा वर्णानें ब्राह्मण, विष्णु क्षत्रिय, ब्रह्मा वैश्य, आणि गणपति शूद्र आहे. आणि त्यांत काय नवल ? शंकर अर्किचन आणि तपस्वी, योगी आहे; विष्णु लक्ष्मीपति, अैश्वर्यवान, प्रजापालक आहे; ब्रह्मदेव तर निर्माणकर्ता; गणपति शूद्र कां गणला गेला तें समजत नाहों. तो सामान्य जनतेचा देव आहे म्हणून ? कित्येक ठिकाणी गणपति हे ब्रह्मदेवाचेंच अेक रूप आहे असें समजावून देण्याचा प्रयत्न झाला आहे.

महाराष्ट्रांत गणपतीला 'मोरया' म्हणतात. याचें मूळ पुण्याजवळच्या अेका स्थानिक देवतेत आहे. मोरगांवचे साधु मोरया हें गणपतीचे अुपासक होते. त्यांनाच लोकांनीं गणपतीचा अवतार बनविलें. आजकाल आपल्या या महाराष्ट्रांत कळेच्या आणि अुत्सवाच्या नांवानें कित्येक वेळां गणपतीच्या अशा कांहीं छाकट्या आणि औचित्यशून्य मूर्ती बनवितात कीं हिंदुधर्माची त्याचे कट्टे विरोधीसुद्धां याडून अधिक विटंबना करूं शकणार नाहींत. अशा मूर्ती पाहून भक्तिभाव कसा काय जागृत होणार किंवा पुष्ट होणार ?

मूर्तिविधानाच्या प्रथांत लिहिले आहे कीं पूजेतील मुख्य देवांच्या मूर्ती शास्त्रोक्त 'ध्याना' त वर्णिल्याप्रमाणेच प्रसन्न-गंभीर बनविल्या पाहिजेत. शुद्ध देवांच्या आणि यक्ष किन्नरांच्या मूर्तीच्या बाबतीत वाटेल ती मोकळीक आहे.

हिंदुधर्माच्या धार्मिक समजुतीमध्ये असा काही घेताळा माजटा आहे कीं त्यांत अेकदां शिरल्यानंतर पुनः बाहेर निघणे सोपें नाहीं. जुन्या धर्मकारांनीं आणि समाज-व्यवस्थापकांनीं समाजांत अुच्च वेदांती विचार बाळगणाऱ्या पंडितांपासून थेट भूत-प्रेत पिशाचादि काल्पनिक आणि भयानक शक्तींची अुपासना करणाऱ्या प्राकृत पूजेपर्यंत सर्वांना सुत्रबद्ध करण्याचा प्रयत्न केला. हा प्रयत्न करतांना त्यांनीं जाणून बुजून धूर्ततेचा अुपयोग केला असें म्हणणें हें अैतिहासिकदृष्ट्या असत्यच वाटतें. अगदीं वेगळ्या अशा दोन वस्तू अेकाच वेळीं अेकदम खऱ्या म्हणून मानाव्या लागतात तेव्हां माणसाचें कल्पनासमृद्ध मन या ना त्या रीतानें त्यांचा समन्वय करण्याचाच प्रयत्न करतें, त्यापैकीं अेक कल्पना खरी आणि दुसरी खोटी असें म्हणणें धार्ष्ट्याचेंच होअील. परमसत्य कोण जाणे मनुष्यबुद्धीपासून किती दूर आहे. हिमालया-पुढें अुभे राहून घोंडघाने खडबाला 'तुझ्यापेक्षां मी हिमालयाशीं अधिक मिळता आहे ' असें म्हणावें, अशा सारखीच आपली स्थितीत आहे. अेक कल्पना जंगली आहे म्हणावें, दुसरी सुधारलेली आहे म्हणावें, आणि कालांतरानें अनुभव यावा कीं दोन्ही सारख्याच भ्रामक होत्या; अशा स्थितींत लोकांच्या कल्पनावर टीका करीत बसण्या-पेक्षां जीवनांत सदाचार, अनासक्ति आणि निर्भयपणा आणण्याचा प्रयत्न केला तर लोक आपोआप कल्पनेचें काव्य अनुभवीत असतांना सुद्धां तिच्याखालीं दडपून जाणार नाहींत. जेथें जेथें संशय आणि भ्रामक कल्पना मनुष्याला दुराचाराकडे घेऊन जातात तेथें तेथें लोकांना जागृत करीन गेलें तर बाकीचें काम आपोआप सिद्ध होअील.

दुसऱ्या बाजूनें, भौतिकशास्त्रांच्या सिद्धांतांशीं आणि पद्धतीशीं लोकांना परिचित करण्याची घाई केली पाहिजे. भौतिकज्ञान आणि आध्यात्मिक ज्ञान परस्पर विरोधी नसून पोषक आहे. दोहोंतून खरी धार्मिकता जागृत झालीच पाहिजे. दोहोंची अुपासना मानवकल्याणाच्या दृष्टीनें केली पाहिजे. आणि खरें म्हणजे ज्ञानदात्या, विघ्नहर्त्या अशा खऱ्या गणपतीची हीच खरी अुपासना आहे.

# गणेशचतुर्थी

भाद्रपद शु० ४

१ दिवस.

ज्ञानसाधनाचा दिवस. या दिवशी कोणत्याहि नव्या शास्त्राचा अभ्यास सुरू करता येतील. निरनिराळ्या शास्त्रांची रूपरेखा देणारी व्याख्याने या दिवशी ठेवावी. मोदकांचे भोजन या दिवशी रुढीप्रमाणे आहेच. रामनवमी, जन्माष्टमी आणि गणेशचतुर्थी या तीन दिवशी मूर्तिपूजेचे सामाजिक उत्सव पुष्कळ ठिकाणी रूढ आहेत. त्यांच्या योगाने समाज अेकत्र येतो. याचा लाभ घेऊन धर्मसंस्करणाच्या अनेक प्रश्नांवर चर्चा झाली तर बरे. या कामासाठी गणेशचतुर्थी हा विशेष अनुकूल दिवस आहे. विद्यार्थ्यांनी शाळेचे गणपती बनवावे, दुसऱ्यादि विविध प्रकारच्या मूर्ती बनवाव्या आणि त्या सान्या दिवाणखान्यांत मांडून ठेवाव्या. वेगवेगळ्या प्रकारची पाने गोळा करून ती लावून आरास करावी.

पर्युषणाविषयीहि विवेचन झाले पाहिजे.

मानसशास्त्रावरील विद्यार्थ्यांना समजतील असे निबंध आज वाचता येतील.

# अषिपंचमी

: : २३

भाद्रपद शु० ५

१ दिवस.

हंडीप्रमाणे हा स्त्रियांचा सण होऊन बसला आहे आणि तोहि पोक्त स्त्रियांचा खरो म्हटले तर अृषींचे पूजन प्रत्येकाने करण्यासारखे आहे. अृषींमध्ये -स्त्रियाहि आहेत आणि पुरुषहि आहेत. त्यांची चरिते पुराण-अतिहासांतून शोधून काढून त्यांचे विचार झाला तर धर्मजागृति होईल.

जनावरांकडून स्वार्थामुळे आपण श्रम करून घेतो. पण ते श्रम घेण्याचा आपल्याला हक्क नाही. जितक्या प्रमाणांत आपण ढोरांकडून सेवा काढता तितक्या प्रमाणांत आपण दाषो आहोत. हे लक्षांत राहावे अवढ्यासाठी अृषिपंचमीच्या दिवशी ढोरांच्या मेहेनतीशिवाय जे खाद्यपदार्थ तयार होऊ शकतात आणि मिळविता येतात तेवढ्यांवरच या दिवशी निभावून घेतले पाहिजे. प्रौढ विद्यार्थ्यांनी या दिवशी वैवर्गवेगळ्या अृषींचे भिन्न भिन्न धर्मसिद्धांत प्राचीन ग्रंथांमधून वेचून काढून समजावून घ्यावेत. आजपर्यंत हे काम कोणीच केलेले नसल्यामुळे ते किती मोठे आणि महत्वाचे आहे हे लक्षांतहि येणार नाही. केल्याने समजेल.

अन्यधर्मी संतांच्या आणि अृषींच्या चरित्राचा अभ्यासहि आजपासून आस्थापूर्वक व्हावा.

## पर्युषण

भाद्रपद शु० ५

पर्युषणाची समाप्तीसुद्धा याच दिवशी होते. म्हणून कल्पसूत्रांमधून विशिष्ट भाग पसंत करून विद्यार्थ्यांना समजावून देण्यांत यावा. पक्ष, पक्षी, कीट, पतंग, वनस्पती या सर्वांत सारखाच जोव आहे, सर्वांच्या बाबतींत आपला व्यवहार विचारपूर्वक व्हावा, हा सिद्धांत आज विशेषरूपाने समजावून देता येईल. स्व-परभाव दूर करणे यांतच धर्मरहस्य आहे हेहि समजावून द्यावे.

गरीब विद्यार्थ्यांची पुस्तकांची नड भागविण्यासाठी आज फंड गोळा करता येईल.

# चरखा द्वादशी अथवा गांधी जयंती : : २४

( भाद्रपद व. १२ अथवा २ आक्टोबर )

१

चरखा द्वादशी हा आतां बहुजनसमाजाचा मण झाला आहे. स्वराज्य मिळा-  
यचें असेल तेव्हां मिळो. दादाभाऊपासून थेट लोकमान्य, दास आणि लजपतराया-  
पर्यंतच्या देशसेवकांनी आतांपर्यंत अितकी कांहीं तपश्चर्या केली आहे कीं आतां  
स्वराज्य न मिळालें तरच आश्रय. जर आपण गंभीर चुका केल्या नाहीत, फ़ासिद्धी-  
च्या वेळीच कांहीं वेडेवाकडे केले नाही, आणि आपापल्या वांट्याला येणारे राष्ट्रकार्य  
चिकाटीने आणि वेळेर करायला चुकले नाही, तर स्वराज्य घरच्या गाओपरमाणें  
आपोआप चालत आलें पाहिजे. पण हें स्वराज्य लोकांचेंच होओल कीं नाही,  
लोकांना तें संपूर्णपणें आशीर्वादरूप होओल कीं नाही, हा मोठा प्रश्न आहे. शेतकरी  
जेवढें धान्य जगाला अर्पण करतो तेवढ्याचे पुरते पैसे त्याच्या पदरांत पडत नाहीत.  
मधले लोकच त्यांतील मोठा भाग खावून टाकतात. आपल्याला मिळणाऱ्या स्वराज्या-  
ची जर अशीच स्थिति झाली तर ती राष्ट्रीय आपत्तीच म्हणायची. तसें नव्हावें,  
अेका हातीं मिळविलेलें दुसऱ्या हातीं आपण गमवूं नये, स्वराज्याचा अर्थ आपसांतील  
यादवी असा हांअूं नये, अेवढ्यासाठीं गांधीजींनी चरखा-धर्म सुरू केला आणि  
खादीचा अेवढा आग्रह धरला आहे.

सहारा वाळवंटाविषयी असे सांगतात कीं कांहीं कांहीं वेळेला तेथें आकाशांतून  
पावसाची प्रचंड सर येते, पण वाळवंटांतील रेंतीचा अितका कांहीं वाफारा असतो  
कीं पाऊस जमिनीपर्यंत पोचण्याच्या अगेदर त्याची वाफ होअून आकाशांत अुहून जाते.  
आपण जर खादीची दीक्षा घेतली नाही तर आपल्या स्वराज्याचेमुद्धां गरीबांच्या  
दृष्टीने असेच होओल.

कित्येकजण म्हणतात कीं बाहेरून खादी घालून काय होणार आहे ? आंतून  
हृदयपरीवर्तन होओल तेव्हां खरे. गोष्ट खरी. पण बाह्य आचरणाचा हृदयावर  
परिणाम होत नाही असे कोणी सांगितले ? अष्टौप्रहर शरीराशी संबंध बाळगणारी  
खादी आपला मूक पाठ दिल्यावांचून राहाणार नाही. क्रियेची शक्ति शब्दाच्या  
शक्तीपेक्षां केव्हांहि जास्त असतेच.

चरखाद्वादशीचे हे माहात्म्य आहे. चरखाद्वादशी म्हणजे आमपरजेबरोबर हृदयाचे बैक्य. चरखाद्वादशी म्हणजे स्वराज्यनिष्ठा. चरखाद्वादशी म्हणजे निर्वैर स्थितीची साधना. चरखाद्वादशी म्हणजे राष्ट्रीय संघटन.

• चरखाद्वादशीदिवशी हरिजनांशी असलेले आपले अनुसंधान आपण अनुभवले पाहिजे, सफाईचे जे काम हरिजन करतात ते या दिवशी जातीने करून कांही लोकांनी या बाबतीत दिशासूचन केले आहे. जों जों ठिकाणे आपण वापरतो ती ती सर्व स्वतः स्वच्छ ठेवून आपण सामाजिक स्वच्छतेचा धडा घेतला पाहिजे आणि चालत आलेल्या रुढीत सुधारणा केली पाहिजे. दरवर्षी अशा रीतीने आपण पुढे पुढे जाऊं तर संबंध राष्ट्राला शेकडों वर्षांपासून मिळाले नाही असे शिक्षण विनाखर्च आणि अल्प प्रयत्नाने मिळेल.

पण चरखाद्वादशीचे मुख्य काम हे तिच्या नांवांतच सूचित झाले आहे अंगलंडचा प्राण जसा त्याच्या जहाजावर अवलंबून आहे तसा आपला प्राण चरख्यावर अवलंबून आहे. हा चरखा चालला तर आपले भाग्य चाबेल. चरखा थांबला तर आपले भाग्यहि थांबेल. चरखाद्वादशीदिवशी सर्वांनी चरखा फिरवावा हे तर आवश्यकच आहे; पण तद्व्यतिरिक्त नवे चरखे चालू करावे, ज्यांना कांतात येत नाही त्यांना कातायला शिकवावे, ज्यांना पेढू करता येत नाहीत त्यांना त्या शास्त्राची दीक्षा द्यावी, हे चरखाद्वादशीचे मुख्य काम आहे. चरखा चालविण्याला जे आतुर आहेत पण चरखा विकत घेण्याची ज्यांना पैस नाहीत अशा लोकांना चरखा देण्यासाठी धनिकांनी कांही पैसा राष्ट्रीय संस्थांकडे ठेवून द्यावा. चरखा चालावा म्हणून चरख्याला प्रधानपद देणाऱ्या संस्थाहि सुरू केल्या पाहिजेत.

चरख्याचे महत्त्व जाणत असतांना आणि खादी वापरीत असतांना सुद्धा कितीतरी लोकांनी परदेशी कापडाचा मोह अजून सोडलेला नाही. अशा रीतीने साठवून ठेवलेले पाप जाळून टाकण्याचे कामहि या दिवशी परसन्न मनाने करावे. चरखाद्वादशीचेदिवशी परदेशी कापडाच्या जितक्या होळ्या करता येतील तितके गरीबांचे आशीर्वाद मिळणार आहेत. चरखाद्वादशीदिवशी आजीवन शुद्ध खादीच वापरण्याचा संकल्प देशातील बंधुभिनिनी जर केला तर देशाची केवडी बरे प्रगति होशील ! आणि यांत आत्मोन्नति तर आहेच.

सण म्हटला म्हणजे आजारी पडण्याअितकें पुरणपोळीचे किंवा अितर गोड गोड पक्वान्नांचे जेवण करायचे आणि परस्पराना आग्रह करायचा



हा विचार आपण सोडून दिला पाहिजे. विचार करून पाहतां दिसून येतील की यांत सुख नाही, सामर्थ्यवृद्धि नाही, की प्रसन्नताहि नाही. ही असंस्कारी चाल आपण काढून टाकली पाहिजे. खादाडपणाचा प्रचार तो कसला करायचा? त्यापेक्षा आरोग्य आणि पुष्टि वाढेल, काम करण्याचा उत्साह वाढेल, आपल्या गरीबराग आणि मनावर योग्य ताबा राहील अशा प्रकारचा आणि अशा प्रमाणांत आहार घेण्याची सुरुवात या दिवशीं करायला पाहिजे.

चरखाद्वादशी म्हणजे स्वदेशीचा प्रचार. त्या दिवशीं खेळांत स्वदेशीवरत कसोशीने आणले पाहिजे. देशी संगीत, देशी चित्रकाम, देशी भाषा यांच्या पुनरुद्धारसाठी त्या दिवशीं कितीतरी नवेनवे कार्यक्रम ठेवता येतील. चरखाद्वादशी हा राष्ट्रीय ऐक्याचा दिवस आहे. त्या दिवशीं कोणाचाहि बहिष्कार असू नये. सगळ्या जातींच्या, सगळ्या धर्मांच्या आणि सगळ्या पंथांच्या स्त्रीपुरुषांनी, मुलांनी आणि वृद्धांनी ऐकत सामाजिक जीवनाचा अनुभव घ्यावा. चरखाद्वादशी हा आत्मशुद्धीचा सण आहे. जीवनांत घर करून बसलेली व्यक्ती काढून टाकण्याचा प्रयत्न त्या दिवशीं विशेषकरून व्हावा. ज्याची सुरुवात अरवीं होत नाही तें करण्याची शक्ति या दिवसाच्या माहात्म्यामुळे माणसांत कदाचित् येतीलहि. चरखाद्वादशी हा दीनजनांची दुःखे निवारण करण्याचा सण आहे. त्या दिवशीं पारतंत्र्याचा शेवट कसा करावा याचे अग्र चिंतन झाले पाहिजे.

२२-९-२९

## २ खादीचा संदेश

हा आहे खादीचा संदेश.

शेती, खादी, ग्रामोद्योग व गोपालन या बाबतींत आमचीं घरे व गावे स्वावलंबी बनलीं. आम्ही त्यामध्ये गरजेपेक्षा जास्त परस्परालंबन आणले नाही आणि आवश्यक ते परस्परालंबन व सहकार्य टाळलेहि नाही, तर नैसर्गिक रीत्या अशा प्रकारचा समाज स्वावलंबी, स्वयंपूर्ण व स्वतंत्र झाल्यावांचून राहाणार नाही. अशा समाजांत परस्परांतील स्पर्धा कमीत कमी राहील, त्यामुळे त्या समाजांत परस्पराविषयींची सहानुभूति जास्तीत जास्त राहील व वाढेल. अशा समाजालाच आपण अहिसक समाज म्हणतो.

मनुष्यसमाजाच्या अगदीं वाल्यावस्थेत कदाचित् अशा समाजाची स्थापना होणे शक्य झाले नसते. पण आपल्या निरोगी ताहण्याच्या काळांत मात्र मानव-समाजाला नैसर्गिकपणे अहिंसक बनलेच पाहिजे. ज्ञान, विज्ञान आणि कला-कौशल्याच्या विकासाबरोबर जर समाज जागृत व तेजस्वी राहिला, तर त्याला अहिंसा हाच मनुष्याच्या जीवनाचा धर्म आहे, असे आपोआपच कळून चुकेल, पण जोवर हे ज्ञान भोळेपणाचे आहे तोवर ते सुरक्षित नाही. जीवनाचा कडू-गोड अनुभव मिळाल्यानंतरच मनुष्याला कथावाओटाची बरोबर कल्पना येते. आणि ही कल्पना आल्यानंतर त्याच्या मनांत जी अहिंसा राहिली असेल तीच दीर्घ काळपर्यंत टिकेल. गेल्या पांचदहा हजार वर्षांच्या अनुभवानंतरहि जर मानवसमाज अहिंसेच्या दिशेकडून प्रगत झाला नाही तर तो नष्ट झाल्यावांचून राहाणार नाही यांत काडीमात्र शंका नाही.

अहिंसा ही कांदीं अशी वृत्ति नव्हे की जी कोऱ्या धर्मोपदेशाने आपोआप अंतःकरणांत ठसेल. अहिंसेच्या स्थापनेकरितां मनुष्याला अेक विशिष्ट प्रकारचे निरोगी जीवन घाल-विण्याची कला शिकली पाहिजे, अेक विशिष्ट प्रकारची समाजरचना पक्की केली पाहिजे. आणि त्याकरितां मनुष्याला अेक विशिष्ट प्रकारची जीवनदृष्टि आत्मसात केली पाहिजे.

जगांत आज ज्या प्रकारचीं सरकारे अस्तित्वांत आहेत तीं अहिंसक समाजांत सामिल होअूं शकत नाहींत. या सर्व सरकारांचे जीवनदर्शन नास्तिकतापूर्ण असते. त्यांचा अंतिम विश्वास मनुष्यामधाल अुच्च वृत्तींवर नसून दंड, जबरदस्ती, अिनाम आणि प्रतिष्ठा यांच्या मार्फत पकट होणाऱ्या भय, लोभ व अहंकार या तीन हुलक्या वृत्तींवर असतो. अशा सरकारांना मान तुकवावी लागते ही मनुष्याला एक शरमेची गोष्ट आहे. पण करणार काय ? एकदां जीवन, आदर्श आणि वृत्ति कृत्रिम बनविली आणि सामाजिक जीवन रोगी केले म्हणजे मग मनुष्य नकली सरकारे स्थापन नाहीं. करणार तर काय करील ? जातील कुठे ?

खरजुल्या माणसाला आपले अंग खाजविण्यांत अतिशय सुख मिळते. पण म्हणून खरूज हा रोग नसून जीवनाची ती एक सिद्धि आहे असे कोणी म्हणणार नाहीं. याचप्रमाणे, आजच्या संस्कृतीमुळे माणसाच्या कांदीं वासना पूर्ण होतात म्हणून कांदीं ही संस्कृति रोगी नव्हे असे सिद्ध होत नाहीं.

जो मनुष्य वासनांनीं घेरलेला आहे तो केवळ भरीव युक्तिवादाने कांहीं कोण-  
तीहि गोष्ट कबूल करीत नाही. अेडवर्ड कार्पेन्टर सारख्यांनी आजकालच्या संस्कृतीचा  
रोग कसा उत्पन्न होतो व त्याला नाहीसे करण्याचे मार्ग किंवा अिलाज काय आहेत  
या विषयावर अेक सुंदर पुस्तक लिहिले आहे. पण ते वाचून कांहीं समाज आपल्या  
जीवनाची चाल बदलण्याला तयार झाला नाही. अेकामागून अेक ज्या दोन विश्वज्यापी  
लढाया झाल्या त्यामुळे मनुष्यजात आज आपल्या विनाशाच्या कांठावर येऊन  
ठेपली आहे. अशा वेळीं ज्या हिंदुस्थानच्या रक्तांत आत्मपरायण संस्कृतीचा वारसा  
सुप्तावस्थेत कां असेना पण अस्तित्वांत आहे तो हिंदुस्थान स्वतः विनाशापासून सुर-  
क्षित राहून साऱ्या जगाला विनाशापासून वांचवू शकेल या आशेने आपण आपले  
जीवन स्वादलंभी आणि स्वयंपूर्ण बनविण्याच्या प्रयत्नाला लागलेले आहो.

आपण जेव्हां आपले जीवन स्वच्छ-शुद्ध बनवू तेव्हांच आपल्याला मनुष्या-  
च्या प्रतिष्ठेला शोभा देणारी संस्कारी व खऱ्या अर्थाने सुधारलेली सत्ता अस्तित्वांत  
आणतां येतील.

जर आपण नेहमीं फौज, पोलीस, केर्टेकरांच्या आणि आपसांतील मारामारी  
यांच्या मार्फतच अन्यायाला तोंड देत राहूं तर या प्रकारचे सरकार चालविण्याकरितां  
आपल्याला त्याची किंमतहि चुकती करावी लागेल, आणि ती किंमत तेव्हांच चुकती होतील  
जेव्हां आपण हिंसाप्रधान, भोगेश्वरपरायण व द्रोहमूलक समाजाला, म्हणजेच जो समाज  
मारामारी, भोग-विलास आणि छुटमार यावर जगूअिच्छित्तो तशा समाजालाच, वाव देऊं.

भावीकाळच्या समग्रसमाजशास्त्राचा मूलमंत्र, जीवन घालवावयाचे ते  
स्वावलंबनाने आणि टिकवावयाचे ते सत्याग्रहाच्या बळावर, हाच राहिल.

सत्याग्रहांत अन्याय करणाऱ्या मनुष्याला आणि त्याच्या अन्यायालाच केवळ  
नव्हे तर अन्यायी मनुष्याच्या अन्यायी वृत्तीलाच विरोध मुख्यत्वे असतो. य  
रीतीने प्रत्येक सत्याग्रहाबरोबर समाजाच्या हलक्या वा हान वृत्ती व मी-मी हो  
जातात आणि राज्यव्यवस्थेचा लोप होत जातो. म्हणजे, राज्यव्यवस्थेमधील  
व्यवस्थेचा भाग कायम राहतो, पण राज्यस्त्तेचा भाग नाहीसा होतो. मनुष्य  
समाजाने जर अितकी प्रगति केली नाही तर तो टिकू शकणार नाही. जग-  
विज्ञानाचा (सायन्सचा) अितका प्रसार झाला, माळ नेण्याप्राण्याच्या अितक्या

सोयी अल्पन्न झाल्या, सान्या जगावर आर्थिक व्यवस्थेचे जाळें पसरलें, तरासुद्धां आज जगांतील जवळजवळ सर्व देश धान्य व कपडा यांना मोताद झाळे आहेत. ज्या संस्कृतीमुळे ही विकट परिस्थिति निर्माण झाली, ती संस्कृति सुधारणेच अवश्य आहे. ही सुधारणा स्वावलंबन, स्वयंपूर्णता व सत्याग्रह यांच्या साहाय्यानेच होऊन आणि खादी या सर्वांचे प्रतीक आहे.

हें समजून जेव्हां आपण खादीचा स्वीकार करूं तेव्हांच आमहोला, म्हणजे आमच्यातील प्रत्येकाला जीवनाची शांति प्राप्त होऊन.

(‘हरिजन’ १५ डिसेंबर १९४६ वरून)

## चरखाद्वादशीचा कार्यक्रम

श्रीशंकराचार्यांनी ठरविलें कीं कोणत्याहि देवतेची पूजा तिला पंचायतनांत बसवूनच केली पाहिजे. महात्माजी म्हणतात कीं राष्ट्रनिर्मितीच्या रचनात्मक कार्यक्रमांमध्ये खादी आणि चर्खा हे सूर्याच्या स्थानी आहेत. अंतर सर्व ग्रामोद्योग आणि रचनात्मक चळवळी या सूर्याभोवतीं फिरणारी ग्रहमाला आहे. खादीला आणि तिच्या प्रभावावळीतील अंतर सर्व कार्यक्रमांना जीवनामध्ये पेरण्याचें काम वर्धा-शिक्षण-योजनेचें आहे. म्हणून चर्खाद्वादशीच्या दिवशी केवळ चर्खा चालविण्याचा किंवा घरोघर जाऊन खादी विकण्याचा कार्यक्रम असतां कामा नये. आतां चर्खाद्वादशीच्या सुमुहूर्तावर पायाच्या शिक्षणाच्या शाळा स्थापन करण्याचा आणि चालत असणाऱ्या शाळांना विशेष मदत करून त्यांना पोतसाहून देण्याचा कार्यक्रम आंखला पाहिजे. घरी आरास करीत असतांना मध्ये चर्खा ठेवून त्याच्या आसपास अंतर सर्व बुद्योगांची आणि रचनात्मक प्रवृत्तींची प्रतीक पूजेला ठेवावीत, आणि जमलेल्या लोकांना व्यापक चर्खा पुराण समजावून सांगावे.

चर्खाद्वादशीच्या पूर्वीचे बारा दिवस गांवांतून शक्य तितकी मदत घेऊन अव्यंग तकल्या तयार करवाव्यात आणि स्थानिक प्रयत्नाने तयार केलेल्या अशा तकल्यांचे द्वादशीदिवशी प्रदर्शन करावे.

वर्धाशाळेंतील अनुबंधबोधक भित्तिचित्रांचेहि प्रदर्शन करावे.

चर्खाद्वादशीदिवशी हरिजनसेवकसंघासाठी धनसंग्रह करण्याचा परिपाठ आहे. तो बरीच वर्षे कायम ठेवावा लाबेल.

### ( आश्विन शु. १ ते १० )

महिषासुर हा साम्राज्यवादी होता. सूर्य, अिंद्र, अग्नि, पवन, चंद्र, यम, वरुण अि० सर्व देवांचा अधिकार आणि खार्ती तो स्वतःच चालवीत असे. स्वर्गातील देवांना त्याने भूलोकची प्रजा बनविले होते. कोणालाहि स्वस्थानी मुरविषतता वाटत नव्हती. देव परमात्म्याकडे गेले. परमात्म्याने सृष्टीची जी व्यवस्था केली होती ती महिषासुराने किती बिघडून टाकली आहे हे सर्व त्यांनी त्याला कथन केले. हे सर्व ऐकून विष्णु, ब्रह्मा, शंकर वगैरे सर्व देवांच्या शरीरांतून पुण्यप्रकोप असळला आणि त्याची एक दैवी शक्तिमूर्ति निर्माण झाली. सर्व देवांनी या सर्व देवमयी शक्तीला आपापल्या आयुधांच्या शक्तीने मंडित केले आणि मग ही दैवी शक्ति आणि महिषासुराची आसुरी शक्ति यांमध्ये भीषण युद्ध सुरू झाले. किती वर्षे ते चालले कोणाला माहीत ! पण आश्विन महिन्याच्या शुक्ल प्रतिपदेपासून दशमीपर्यंत हे युद्ध चालले असे समजतात आणि त्याप्रमाणे दैवी शक्तीच्या विजयानवरात्राचा<sup>१</sup> उत्सव आपण साजरा करीत असतो.

दैवी शक्ति ही परमा विद्या आहे, ब्रह्मविद्या आहे, आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व आणि शिवतत्त्वाचे शुद्ध स्वरूप आहे. ही शक्ति शठंप्रति शुभंकरी आहे; ' अहितेषु साध्वी ' आहे; वैन्यांच्याविषयीं सुद्धा ती दया प्रगट करते. दुष्ट लोकांचा वाओट स्वभाव शांत करणे हेच या दैवी शक्तीचे शील आहे. ' दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलम् । '

असुरांना ही शक्ति समजली नाही. भक्त जेव्हां दैवी शक्तीचा जयजयकार करू लागले तेव्हां असुर गोंधळून ' अरे हे काय ? हे काय ? ' असा ओरडा करू लागले. शेवटी असुरांचा राजा स्वतःच लडू लागला. त्याने अनेक प्रकारची नीति चालवून पाहिली, अनेक रूपे धारण केली, पण शेवटी ' निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्ती ' चाच विजय झाला. वायु अनुकूल वाहू लागला, पावसाने भूमी सुजला सुफला केली, दिशा प्रसन्न झाल्या आणि भक्तगण देवीचे मंगल गाऊ लागले. देवीने भक्तांना आश्वासन दिले की अशाच रीतीने पुनः जेव्हां जेव्हां आसुरी लोकांच्यामुळे त्रास पसरेल तेव्हां मी स्वतः अवतार धारण करून दुष्टतेचा नाश करीन.

हा महिषासुर प्रत्येक माणसाच्या हृदयांत आपलें साम्राज्य स्थापन करण्याचा अट्टाहास करीत असतो आणि त्या त्या वेळीं दैवी शक्तीला त्याचीं सर्व स्वरूपें ओळखून त्याचा समूळ नाश करावा लागतो. प्रत्येकाच्या हृदयांत हें युद्ध किती वर्षें चाललेलें असतें हें प्रत्येकाला आपलें अंतःकरण शोधून समजून घेतां येतें. नवरात्राच्या दिवसांत हृदयांत नंदादीप तेवत ठेवून आपण त्या दैवी शक्तीची आराधना केली पाहिजे ; कारण जेव्हां ही दैवी शक्ति प्रसन्न होते तेव्हां तीच आपल्याला मोक्ष देते.

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।

२८-९-२२

## शारदेचें अुदबोधन

: : २६

कोणत्या नवमीला सुरांनां शारदेचें अुदबोधन केलें हें आपल्याला माहीत नाहीं. पण तो अत्यंत शुभ, सुभग आणि कल्याणकारी मुहूर्त असला पाहिजे. समृद्धि-दायी वर्षा झाल्यानंतर जी शांति, जी निर्मळता, जी प्रसन्नता दृग्गोचर होते त्यांतच देवांना शारदेचें दर्शन झालें. पृथ्वीने हिरवा रंग अजून सोडलेला नाहीं, परिपक्व धान्य सुवर्णवर्ण खुलवीत आहे, अशा प्रसंगी देवांनीं शारदेचें ध्यान केलें. सज्जनहृदयासारख्या अच्छोदकांत विहार करणारीं प्रसन्न कमळें आणि आकाशांत अनंत काव्याचे फवारे सोडणारा रसस्वामी चंद्र हे दोन्ही जेव्हां परस्परांचें ध्यान धरीत होते तेव्हां देवांनीं शारदेचें आवाहन केलें. शारदा आली आणि पृथ्वीच्या वदनकमलावर सुहास्य पसरलें. शारदा आली आणि वनश्रीचा गौरव विकसला. शारदा आली आणि घोघर समृद्धि वाढली. शारदा आली आणि वीणेचा झण-त्कार सुरू झाला; संगीत आणि नृत्य सर्वत्र पसरलें.

शारदेचें स्वरूप कसे आहे ? बाला ? मुग्धा ? पौढा ? कां पुरंधरी ? शारदा मंजुलहासिनी बाला नाहीं, मनमोहिनी मुग्धा नाहीं, विलासचतुरा पौढा नाहीं. ती नित्ययैवना पण स्तन्यदायिनी माता आहे. ती आपल्याबरोबर खेळते, हंसते पण ती आपली सखी नाहीं; ती माता आहे. आपण तिच्याबरोबर बालसहज लडिवाळपणा करावा, पण आपण आजीपुढें आभे आहेत हें विसरून जाऊं नये. माता म्हणजे पवित्रता, वत्सलता, कारुण्य आणि विश्रब्धता. माता म्हणजे अमृतनिधान. ' न मातुः परदैवतम् ' हें वचन ऐखाद्या उपदेशपिय स्मृतिकारानें काढलेलें नाहीं, तो कोणा मातुःपुत्र धन्य मुलानें काढलेला हृदयाचा अुद्गार आहे.

चराचर सृष्टीचें ऐक्य अनुभवणारे आपण आर्यसंतान ऐकाच शब्दांत अनेक अर्थ पहातो. शारदा म्हणजे सरोवरांत विराजणाऱ्या कमळांची शोभा. शारदा म्हणजे शरत्-पूर्णिमा आणि दिवाळीची कान्ति. शारदा म्हणजे यैवनसहज व्रीडा. शारदा म्हणजे कृपिलक्ष्मी, शारदा म्हणजे साहित्य-सरिता, शारदा म्हणजे ब्रह्मविद्या, चिच्छक्ति. शारदा म्हणजे विश्वसमाधि. अशी ही आपली माता आहे, आपण शारदेचीं लेकरें आहोंत. केवढी धन्यता ! केवढी स्पृहणीय पदवी ! केवढा अधिकार ! आणि त्याचबरोबर केवढी मोठी दीक्षा !

शारदेच्या स्तन्याचा ज्या ओठांना स्पर्श झाला ते ओठ अपवित्र वाणी

अुच्चारणार नाहीत, निर्बलतेचे शब्द काढणार नाहीत, द्वेष अुद्गारणार नाहीत, पापाला शृंगारणार नाहीत, पौरुषाचा वध करणार नाहीत, आणि मुग्ध जनांना फसविणार नाहीत.

शारदेच्या मंदिरांत सर्वोच्च कला असेल, कलेच्या नांवाने विचरणारी विलासिता असणार नाही. शारदेच्या भवनांत प्रेमाचे वातावरण असेल, केवळ सौंदर्याचे मोहन असणार नाही. शारदेच्या अपवनांत प्राणाचे स्फुरण असेल, विरहाचे वा निराशेचे निःश्वास असणार नाहीत. शारदेच्या लताकुंजांत विश्वप्रेमाचे संगीत असेल, ऐकमेकांच्या अनुनयाचे वेडपट कलकूजित असणार नाही. शारदेच्या विहारांत स्वतंत्र तेची धीरोदात्त पावले असतील, अुद्देशविहीन आणि स्खलनशील पदक्रम असणार नाहीत. शारदेच्या पीठांत ब्रह्मसाचा प्रवाह असेल, विषयरसाचा अुन्माद असणार नाही.

माते शारदे ! हृदयांत अंबड तुझे स्मरण राहील असा आशीर्वाद आम्हांला दे, आम्ही अधिकारी होऊं तेव्हां तुझे दर्शन आम्हांला घडीव. आमचे ध्यान जर अविचल राहिले, आमची भक्ति अकार आणि अुत्कट झाली तर आम्हांला तुझी दीक्षा दे, आणि तुझ्या सेवेला पात्र झाल्यानंतर तुझ्या सेवेचीच अक्रमात् गोडी आमच्यांत राहील अवढी भिक्षा आम्हांला घाल. तुला कोटिशः नमन असा.

या देवी सर्व भूतेषु शरद्वारूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

ऑक्टोबर १९२४.

## सरस्वतिपूजन

आश्विन शु० ८, ९

२ दिवस

अष्टमी आणि नवमी हे दोन दिवस हा अुत्सव चालावा. अेक दिवस पुस्तकालयांतील ग्रंथ साफसुफ करून व्यवस्थित लावून ठेवणे, संस्थेची तशीच आपली खाजगी पुस्तके दिले झाली असली तर ती बांधणे, अशासारख्या कामांत वागतावा. शारदामंदिर ( पुस्तकालय ) व्यवस्थित रीतीने लावल्यानंतर ते शृंगारार्थे, आणि तेथे शारदामातेची पूजा म्हणून संगीताची अेक बैठक करावी.

दुसरा दिवस फक्त चित्कलेसाठी ठेवलेला असावा. या दिवशी कागदांच्या किंवा दुसऱ्या पदार्थांच्या निरनिराळ्या वस्तू तयार कराव्या, पाटावर रांगोळ्या काढाव्या. शक्य तर धार्मिक किंवा अितर उपयोगी पुस्तकांचे दान करावे.



( आश्विन शु. १० )

## १ सोमोल्लंघनपर्व

आगरा येथें मोगल काळच्या ज्या अिमारती आहेत त्यांच्यांत विशेषता ही आहे की त्यांचा तळचा मजला लाल दगडाचा आणि वरच पांढऱ्या दगडाचा असतो. लाल दगडाचें काम जहांगीरच्या वेळचें आणि पांढऱ्या दगडाचें शाहजहानच्या वेळचें. प्रत्येक अिमारतीत असा कालानुक्रमचा अितिहास वर्णभेदाने मूर्तिमंत दिसून येतो. कोणत्याहि जुन्या मोठ्या शहरांत जुनी वस्ती आणि नवी वस्ती जवळजवळ असलेली दिसून येते; किंवा वस्तीचे थरावर थर जमलेलेहि दृष्टीस पडतात. भाषांतील म्हणींतसुद्धां भिन्नभिन्न काळांचा अितिहास सामावलेला असतो. आपण घरांत जमिनीवर ज्या लाया घालतो त्या संबंध अेक दगड असल्यासारख्या दिसतात, पण त्यांतसुद्धां प्रत्येक थरांत कितीअेक वर्षांचें अंतर असतें. नदीच्या कांठां दरवर्षी चिकणमातीचा जो थर अेकावर अेक सांचतो त्याचाच शेवटीं पृथ्वीच्या भट्टींत अेक दगड बनतो.

दसऱ्याचा सण हासुद्धां अेकच सण असूनहि भिन्नकालीन भिन्नभिन्न अशा थरांचा बनलेला आहे. दसऱ्याच्या सणाशी असंख्य युगांतील असंख्य प्रकारच्या आर्य पुरुषार्थांचा विजय जोडला गेला आहे.

माणसामाणसांमधील लढावी जितकी महत्त्वाची आहे तितकीच किंवा त्याहून जास्त महत्त्वाची लढावी मनुष्य आणि निसर्ग यांच्यामधील आहे. मनुष्य-प्राण्याचा निसर्गावरील मोठ्यांत मोठा विजय म्हणजे शेती. नांगरलेल्या जमिनीत नअू प्रकारचें धान्य पेरून, कृतिम जलाचें सिंचन करून त्यांतून आपल्या निर्वाहापुरतें आणि पुढच्या संग्रहापुरतें धान्य ज्या दिवशीं मनुष्य मिळवू शकला तो दिवस मनुष्याला महान् विजयाचा होता. कारण त्यानंतरच स्थिरतामूलक संस्कृति जन्माला

आली. त्या दिवसाचे स्मरण निरंतर ताजे ठेवणे हे कृषिप्रधान आर्थेलोकांचे प्रथम कर्तव्य होतें.

विसावे शतक हे भौतिक आणि यांत्रिक शोधांचे शतक समजण्यांत येतें, आणि ते यथायोग्य आहे. पण मनुष्यप्राण्याच्या अस्तित्वासाठी आणि संस्कृतीसाठी जे महान् शोध कारणरूप झाले आहेत ते सर्व शोध आद्ययुगांतच झाले आहेत. जमीन कसण्याची कला, सूत कातण्याची कला, अग्नि पेटविण्याची कला, आणि मातीमधून पक्का घडा घडविण्याची कला-या चार कला मानवीसंस्कृतीच्या आधारस्तंभरूप आहेत. या चारी कलांचा उपयोग करून विजयादशमीच्या दिवशी आपण कृषिमहोत्सव निर्माण केला आहे.

लहानपणच्या माझ्या आठवणींत राहिलेला पहिला नवरात्राचा उत्सव अजून मला स्मरतो. प्रतिपदेच्या दिवशी शहराबाहेर जाऊन शेतांमधून सर्वांत चांगली स्वच्छ काळीभोर माती माझे बंधू घेऊन आले. मी स्वतः नवू धान्याची यादी घेऊन त्यांतली घरांत जां मिळाली नाहीत ती माझ्या आज्ञेवांच्या येथून घेऊन आलों. माझ्या आज्ञेने लहानशा धनुष्याने रू पिंजून त्याची ९६ अंगुळांची एक वात तयार केली. माझ्या आज्ञेने सूत कातून (चरख्यावर नव्हे, तांब्यावर) त्या सुताच्या एक हजार लहान लहान वाती बनविल्या. बाजारांतून नारळ आणि पंचरत्न मी घेऊन आलों. पंचरत्नांत सोने, मोती, हिरा, परवाळ आणि पाच किंवा माणिक ही होती. या पंचरत्नाचे तुकडे फारच लहान होते. माझ्या भाचीने बागेतून फुले आणि तन्हत-हेची पाने गोळा केली. वडिलांनी स्नान करून देवघरांत गाडीच्या शेणाने सारविलेल्या जमिनीवर ती काळी माती पसरून तिचा सुंदर चौरस आकार बनविला. हे आमचे शेत. त्याच्या मधोमध एक तांब्या ठेवून दिला. या तांब्यांत पाणी भरलेले होतें. आंत एक सबंध सुपारी, दक्षिणा, पंचरत्न भित्यादि वस्तू टाकल्या होत्या. वर आंब्याच्या झाडाची एक लहानशी पांच पानांची डहाळी ठेवून तिच्यावर एक नारळ ठेवला होता. सुंदर घाटाच्या तांब्यातून बाहेर पडणारी आंब्याची हिरवींगार पांच पाने आणि त्यांच्यावर शिखरासारखा दिसणारा नारळाचा आकार पाहून आम्ही खुष खुष झालों. पूजेची तयारी झाली म्हणतांना शेतांत नवू धान्ये पेरण्यांत आलों. त्यांच्यावर पाणी शिंपडण्यांत आले. मध्ये ठेवलेल्या घटाची चंदन,

केशर आणि कुंकू यांनी पूजा करण्यांत आली. या घटावर अेक पुष्पमाळा चढविण्यांत आली. यथाविधि सांग षोडशोपचार पूजा झाली. ९६ अंगुळांच्या वातीचा दिवा लावण्यांत आला. मग आरती झाली. आणि घरांत सर्वजण म्हणू लागले कीं आज आमच्या येथें नवरात्राची घटस्थापना झाली आहे. तो नंदादीप नअू दिवस-पर्यंत अखंड तेवत ठेवायचा होता. मध्येच विझला तर महा अशुभ. दुसऱ्या दिवशीं पूजेंत अेकाअैवजीं दोन माळा घालण्यांत आल्या. तिसऱ्या दिवशीं तीन, अशा माळा वाढत गेल्या. वर माळा वाढल्या आणि खालच्या शेतांतून अंकुर बाहेर फुटले. कित्येक अंकुर तर आपल्या दळांची छत्री करूनच बाहेर पडले होते. आम्हांला रोज पक्वान्न मिळे, पण वडिल मात्र अेकच वेळ जेवीत आणि संबंध दिवस सोवळें नेसून नंदादीप संभाळीत. वात खुंटू नये, तेल तुटू नये आणि दिवा विझू नये यासाठी काळजी घ्यावी लागे. रातींसुद्धां दोन चार वेळां अुठून तेल घालणें, वर सांचलेली काजळी पुष्कळ काळजीपूर्वक झाडून टाकणें वगैरे कामें त्यांना करावीं लागत.

नअू धान्यांचे अंकुर पुरते फुटून बाहेर पडले त्या वेळची शेताची शोभा अवगणनोय होती. कित्येक धान्यें लवकर अुगवलीं, कित्येक अुशीरां. लवकरचीं कोणतीं आणि उशीरांचीं कोणतीं हें मी बरोबर लक्षांत ठेवां. सारे अंकुर पांढरे होते, कारण नवरात्राचें हें ‘शेत’ घरांत होतें, आणि अुन्हाशिवाय त्यांना हिरवा रंग कसा येणार ? मग वडिल शेतावर हळदीचें पाणी शिंपडूं लागले. मी विचारलें, “हळदीचें पाणी कां शिंपडायचें ? ” “ हें धान्य अुगवलें आहे ना तें सोन्यासारखें दिसावें म्हणून. ”

सातव्या दिवशीं सरस्वतीचें आवाहन झालें. घरांत जेवढ्या म्हणून धार्मिक आणि संस्कृत पोथ्या होत्या त्या साऱ्या अेका रंगीत पाटावर ठेवून आम्ही त्यांची पूजा केली. आम्हांला शिकण्याची सुटां मिळाली. याला अनध्याय म्हणतात. सरस्वतीचें आवाहन, पूजन आणि विसर्जन अेवढें तीन दिवसांत झालें. नवव्या दिवशीं खंडपूजा झाली. खंडपूजा म्हणजे शस्त्रास्त्रांची पूजा. या दिवशीं हत्तीघोड्यांसारख्या युद्धोपयोगी पशूंचीसुद्धां पूजा करण्यांत येतें. अशा रीतीनें, ‘नवरात्र संपलें,’ आणि दहाव्या दिवशीं, ‘दसरा अुजाडला.’ दसऱ्याच्या दिवशीं होम, बलिदान आणि सीमेल्लंघन हे मुख्य विधी होते. विद्यारंभाचाहि तो दिवस होता.

विजयादशमीच्या सणांत चातुर्वर्ण्य अेकत्र झालेलें दिसतें. ब्राह्मणांचे सरस्वतीपूजन आणि विद्यारंभ; क्षत्रियांचें शस्त्रपूजन, अश्वपूजन आणि सीमोल्लंघन; वैश्यांची शेती; हे तीन्ही या सणांत अेकत्र होतात. आणि जेथें अितकी मोठी प्रवृत्ति चाल्ळी असेल तेथें शूद्रांची परिचर्या समाविष्ट असणारच. खेड्यांतले लोक नवरात्रांतील धान्याचे सेन्यासारखे तुरे तोडून पागे'ड्यांत खोचून देतात आणि भुंदर पोषाख करून वाजत गाजत सीमोल्लंघन करायला निघतात तेव्हां जणूं काय साऱ्या देशाचें पौरुषच पराक्रम दाखविण्यासाठीं बाहेर पडलें असावें असें दृश्य दिसतें.

दसऱ्याचा अुत्सव हा जसा कृषिप्रधान आहे तसा तो क्पातरमहोत्सवहि आहे. भाडोत्री शिपायांना कोंबड्यांप्रमाणें झुंजविण्याची पद्धति नव्हती त्याकाळीं क्पातरतेज आणि राजतेज खेडूतांमध्येच पोसलें जाओ. खेडूत म्हणजे क्षेत्रपति-क्षत्रिय. वर्षभर भूमिमातेची जो सेवा करतों. तोच प्रसंग पडला तर, तिचें रक्षण करायलाहि बाहेर पडतो. नदी, नाले, डोंगर, टेकड्या यांच्याशीं ज्याचा रात्रंदिवस संबंध असतो, घोडा, बैल यांसारख्या जनावरांना जो तयार करूं शकतो, अनेक मजुरांना जो अपुजीविका देअूं शकतो आणि सगळ्या समाजाला जो खाअूं घालतो त्याच्यामध्ये सेनापतीचे आणि राजत्वाचे सर्व गुण आले तर त्यांत आश्चर्य तें काय ? राजा म्हणजेच खेडूत आणि खेडूत म्हणजेच राजा.

अशी स्थिति असल्यामुळें कृषीचा सण हा क्पातर सण झाला यांत अैतिहासिक औचित्य पूर्णपणें आहे. क्षत्रियांचें मुख्य कर्तव्य म्हणजे स्वदेशरक्षणच आहे. पण पुष्कळ वेळां शत्रूने आपल्या देशांत घुसून देशाचें वाटोळें करण्यापूर्वीच त्याचा दुष्ट हेतु समजून स्वतःच सीमोल्लंघन करून-स्वतःची शींव म्हणजे सरहद्द ओलांडून शत्रूच्याच देशांत लढाओ घेअून जाणें हें शहाणपणाचें आणि वीरोचित असतें.

थोडा विचार करतां आढळून येअील कीं या सीमोल्लंघनामागे साम्राज्यवृत्ति आहे. आपली सरहद्द ओलांडून दुसरा देश जिंकणें, तेथील धनधान्य लुटून आणणें यांत आत्मरक्षणापेक्षा महत्त्वाकांक्षा अधिक आहे. अशा रीतीनें लुटून आणललें सैनं पराक्रमी पुरुष स्वतःजवळच ठेवतील तर वर्तमानयुगांतील क्षत्रपक्षोप- (Militarism) शीं विट्प्रकोप (Industrialism) मिसळण्याची भयंकर स्थिति

ओढवेळ. प्रभुत्व आणि धनित्व अेकत्र झालें कीं तेथें सैतानाला निराळें आमंत्रण करण्याची जरूर राहात नाहीं. अेवढ्यासाठींच दसऱ्या दिवशीं लुटून आणलेले सोनें सर्व स्वकीयांत वांटून टाकणें हा त्या दिवसाचा महत्त्वाचा धार्मिक विधि ठरविलेला आहे. X

सुवर्ण वांटण्याच्या या रिवाजाचा संबंध रघुवंशातील रघुराजाशें जोडलेला आहे.

रघुराजानें विश्वजित् यज्ञ केला. समुद्रवलयंकित पृथ्वी जिंकल्यानंतर सर्वस्व दान करून टाकणें याचें नांव विश्वजित् यज्ञ. असा विश्वजित् यज्ञ रघुराजानें समाप्त केला आणि नंतर त्याच्याकडे वरतंतु अृषीचा शिष्य विद्वान् तेजस्वी कौत्स येऊन पोचला. कौत्सानें गुरूजवळून चौदाहि विद्या ग्रहण केल्या होत्या. त्याची दक्षिणा म्हणून चौदा कोटी सुवर्णमुद्रा गुरूला देण्याची त्याची धारणा होती. पण सर्वस्वाचें दान केल्यानंतर राहिलेल्या मातीच्या भांड्यानेच राजाला आतिथ्य करतांना पाहून कौत्सानें राजाजवळ कांहींहि मागण्याचा विचार सोडून दिला. राजाला आशीर्वाद देऊन तो जाऊं लागला. रघूनें आग्रहपूर्वक त्याला ठेवून घेतलें आणि दुसऱ्या दिवशीं स्वर्णावर स्वारी करून अिंद्र आणि कुबेर यांच्याकडून धन आणवि-

X'क्षत्रप्रकोप' आणि, 'विट्प्रकोप' या दोन नवीन संज्ञांचा सार्थकता मला सिद्ध केली पाहिजे. चातुर्वर्ण्याचें समतोलन वा सामंजस्य ही तर समाजशरीराची स्वाभाविक स्थिति आहे. समाजासाठीं या चारी वर्णांची आवश्यकता सर्वमान्य झालेली आहे. व्यक्तीच्या शरीरांत वात, पित्त आणि कफ हे तीन धातू जसे प्रमाणशीर असतील तरच शरीर निरोगी राहातें तसें समाजशरीरांत चातुर्वर्ण्य प्रमाणशीर असलें तरच समाजशरीर निरोगी राहील. शरीरांत पित्ताचें प्रबल्य झालें तर त्याला पित्तप्रकोप म्हणतात. पित्तप्रकोपानें सगळें शरीर विघडून जातें. त्याचप्रमाणें वातप्रकोप आणि कफप्रकोप झाला असतां होतें. समाजशरीरांत क्षात्रवर्गाचा अतिरेक झाला किंवा प्रबल्य माजलें तर त्या स्थितीला क्षात्रप्रकोप म्हणणें हेंच योग्य आहे. याचप्रमाणें विट्प्रकोप किंवा वैश्यप्रकोपाविषयी समजावें. शरीराचा नाश व्हायची वेळ आली कीं तीन्ही धातूंचा प्रकोप होता. याला त्रिदोष म्हणतात. युरोपांत आज क्षात्रिय, वैश्य आणि शूद्र या तीन्ही वर्णांचा अेकाचवेळी प्रकोप झालेला स्पष्ट दिसत आहे आणि तेथील ब्राह्मण या तीन्ही वर्गांचे किंकर बनले आहेत!

ण्याची व्यवस्था केली. रघुराजा हा चक्रवर्ति होना म्हणून अिंद आणि कुवेर हेहि त्याचे मांडलिक होते. ब्राह्मणाला दान देण्यासाठी त्यांच्याकडून खंडणी घेण्यांत संकोच कसला ? रघुराजाच्या स्वारीची गोष्ट ऐकतांच देव भ्याले. त्यांनीं अेका शमीच्या झाडावर सुवर्णमुद्रांचो वृष्टि केली. रघुराजाला सकाळीं अुठतांच दिसलें कों पाहिजे होतें तेवढें सोने आलें. कौत्साला त्यानें तो ढीग देअून टाकला. कौत्स चौदा कोटींहून अधिक घेओना. आणि राजा दान म्हणून दिलेलें बाकीचें धन परत ठेवून घेओना. शेवटीं नगरवासी लोकांच्याकडून त्यानें तें धन लुटविलें. तो दिवस आश्विन शुक्ल दशमीचा होता, म्हणूनच आजहि लोक दसऱ्याच्या दिवशीं शमीचें पूजन करून त्याचीं पानें सोनें समजून लुटतात आणि अेकमेकाला देतात. कित्येक लोक शमीखालची माती सुवर्ण समजून घेअून जातात.

शमीचें पूजन हें प्राचीन आहे. शमीच्या झाडांत अृषींचें तपस्तेज आहे असें मानतात. प्राचेनकाळीं शमीचे तुकडे अेकमेकांवर घांसून अग्नि अुत्पन्न करीत असत. शमीच्या समिधा आहुतीच्या वेळीं अुपयोगी पडतात. पांडव जेव्हां अज्ञात-वासांत राहायला गेले तेव्हां त्यांनीं आपलीं हत्यारें अेका शमीच्या झाडावर लपवून ठेवलीं होतीं आणि तेथें कोणी जाअूं नये म्हणून अेक हाडाचा सांपळा झाडाच्या खोडाला बांधून ठेवला होता !

रामचंद्रांनीं रावणावर स्वारी केली ती विजयादशमीच्या मुहूर्तावर. आर्यांनीं—हिंदु लोकांनीं पुष्कळ वेळां विजयादशमीच्या मुहूर्तावरच स्वाऱ्या करून विजय मिळविला आहे. म्हणून विजयादशमी हा राष्ट्रीय विजयाचा मुहूर्त किंवा सण झाला आहे. मराठे व रजपूत याच मुहूर्तावर स्वराज्याची सीमा वाढविण्यासाठीं शत्रूंच्या मुलखावर स्वारी करीत. शस्त्रास्त्रें सज्ज करून, हत्ती घोड्यांची स्वारी काढून सारा लवाजमा मिरवीत शहराबाहेर नेण्याची चाल आजसुद्धां आहे. तेथें शमीचें त्याचप्रमाणें अपराजिता देवीचें पूजन हा सीमोल्लंघनाचा मुख्य भाग असता. X

X महिषासुर नांवाच्या अेका प्रबळ दैत्यानें प्रलय मांडला होता. त्याच्याशीं जगदंबेनें नअू दिवस युद्ध करून विजयादशमीच्या दिवशीं त्याचा नाश केला अशी पुराणांत कथा आहे. म्हणूनच अपराजितेची पूजा करण्याची आणि महिषाचा म्हणजे रेड्याचा बळी देण्याची चाल पडली आहे.

शमीप्रमाणे अश्मंतक वृक्षांतहि शत्रूचा नाश करण्याचा गुण आहे असे समजतात. अश्मंतक म्हणजे आपट्याचे झाड. शमी न मिळाला तर या झाडाचे पूजन करतात. आपट्याच्या पानांचा आकार सोन्याच्या नाण्यासारखा गोल असतो आणि जोड कार्डीसारखी त्याची पाने जोडलेली असतात त्यामुळे ती विशेष सुंदर दिसतात.

दसऱ्याच्या दिवसापर्यंत पावसाळा जवळ जवळ संपलेला असतो. शिवाजीचे मावळे शिपाही दसऱ्यापर्यंत शेतीच्या चितेतून मुक्त होत असत. शेतीत कांही करायचे अुरत नसे. अेकच कापणी करायची राहात असे. पण ती काय, घरच्या बायकामुलांना आणि म्हाताऱ्या माणसांनाहि सहज करता येथी; तेव्हां सैन्य जमवून स्वराज्याची सीमा वाढविण्यासाठी अगदी जवळचा मुद्दत दसऱ्याचाच होता; म्हणून महाराष्ट्रांत दसऱ्याचा सण अत्यंत लोकप्रिय होता आणि आहे.

विजयादशमीच्या अेका सणावर अनेक संस्कार, अनेक संस्करणे आणि तऱ्हतऱ्हेच्या समजुतीचे थर जमले आहेत असे आपण पाहिले. कृषिमहोत्सव कषात्र-महोत्सव झाला. सीमेलंघनाचा परिणाम दिग्विजयापर्यंत गेला. स्वसंरक्षणबरोबरच सामाजिक प्रेमाचा आणि धनाचा विभाग करण्याची वृत्ति दसऱ्याशी जोडली गेली. पण अेक अतिहासिक घटना दसऱ्याशी जोडण्याचे आपण विसरून गेलो आहो. आजच्या काळी तीच विशेष महत्त्वाची आहे. दिग्विजयापेक्षा धर्मजय श्रेष्ठ आहे, बाह्य शत्रूला मारण्यापेक्षा हृदयस्थ षड्रिपूना मारण्यांतच मोठा पुरुषार्थ आहे, नवू धान्याची कापणी करण्यापेक्षा पुण्याची कापणी अधिक काळ टिकते, असा, उपदेश सगळ्या जगाला देणाऱ्या मारजित् लोकजित् भगवान् बुद्धाचा जन्म विजयादशमीच्या शुभमुद्दतावरच झाला होता. पंचांगाप्रमाणे विजयादशमीच्या दिवशी बुद्ध भगवानाचा जन्म झाला आणि वैशाखी पूर्णिमेला बुद्ध भगवानांना शांतिदायी अशा चार आर्य तत्त्वांचा आणि अष्टांगिक मार्गाचा बोध झाला हे आपण विसरूनच गेलो आहो. विष्णूचा चाळ अवतार हा बुद्ध अवतार आहे. म्हणून विजयादशमीचा सण हा भगवान् बुद्धांच्या मार विजयाचे स्मरण करून आपण साजरा केला पाहिजे.

ऑक्टोबर १९२२

## २ हा काय दसरा म्हणायचा ?

शं नो अस्तु द्विपदे, शं चतुष्पदे ।—वेदवचन

[ द्विपदांचें कल्याण होवो, चतुष्पदांचें कल्याण होवो. ]

दोन पायांच्या आणि चार पायांच्या आपल्या मुलांना भूमिमातेने सांगितलें,  
' माझे गवत-धान्य तुमच्यासाठीच आहे. तेंच माझे दूध. जो पिओल तो पुष्ट होओल. '

दोन पायांचीं माणसें म्हणजे थोरले भाऊ. चार पायांचीं जनावरे तीं धाकटों भावंडें. मोठे धाकट्यांचा संभाळ करीत; धाकटे मोठ्यांच्या आज्ञेत वागत. दोघांनीं हि मेहेनत केली, आणि जिकडे तिकडे मलयजशीतला आणि सुजला पृथ्वी सुफला सस्यश्यामला झाली. सर्वत्र आनंद पसरला.

माणूस म्हणाला, ' चला, आपण वांटणी करून उत्सव करूं या. ' पशू म्हणाले, ' होय, खरेच, उत्सव केलाच पाहिजे ! '

माणसाने धान्य घेतलें आणि पशू गवत चरूं लागले. उत्सव सुरू झाला. पण जिद्दवालौल्याने धर्मबुद्धिभ्रष्ट झालेल्या माणसाच्या मनांत अेकदम कांहींतरी आलें. माणसाने पशूला ओढलें आणि त्याच्या मानेवर बुरी चालवीत म्हटलें, ' उत्सवाचा हा अेक आवश्यक भाग आहे !! '

पृथ्वी कांपूं लागली, आकाश रडूं लागलें; दिशा गरजल्या ' हा काय उत्सव म्हणायचा ? '



## दसरा

आश्विन शु. १०

१ दिवस

वीरत्वाचा हा सण आहे. कुस्ती, गजग्राह (रस्सीखेच), दांडपट्ट्या वगैरे मर्दानी खेळ खेळण्याची चाल चालू ठेवण्यासारखी आहे. दसऱ्याच्या दिवशी शहराबाहेर जाऊन तथे सामाजिक जुत्सव केला पाहिजे. आपल्या कामांतील वांचवितां येतील तेवढे पैसे वांचवून दसऱ्याच्या प्रसंगी ते चांगल्या कामांप्रत्यर्थ दान करावे.

वर्षभरांत अखादै महत्कृत्य करण्याचा संकल्प दसऱ्याच्या दिवशी करावा. हा सीमोल्लंघनाचा दिवस आहे. त्या दिवशी अखादै पाभूल पुढे पडले पाहिजे.

दसऱ्याच्या दिवशी फक्त वाद्यांची बैठक ठेवावी. विद्यार्थी कवाडीत शिकले असतील तर तिथेहि प्रदर्शन या दिवशी करण्यासारखे आहे.

दसऱ्याची सुरुवात मातृपूजेतून झाली आहे हे विसरतां कामा नये. देवीपूजेचे रहस्य या दिवशी समाजातून द्यावे.

-----

# सार्वभौम धर्म

: : २८

( आश्विन शु० १५ )

अुन्हाळ्यांतील असह्य तापानंतर जेव्हां वृष्टि होते तेव्हां सर्वत्र चिखलच चिखल होतो. शेवटीं सृष्टि जेव्हां तृप्त होते तेव्हांच हा चिखल दडपून किंवा सुकवून टाकून जमीन आणि जलाशय अनाविल ( स्वच्छ ) करण्याकडे तिचे लक्ष जातें.

महान् आपत्तीशीं झुंजतांना माणसाला धर्माधर्माचा फारसा विचार राहात नाही. हें पाहूनच शहाण्या माणसांनीं जुनी शिकवण दिली आहे कीं कोणत्याहि धर्माचा आसरा घेऊन नड भागवावी आणि आपत्तींतून बचावल्यानंतर ' समर्थो धर्ममाचरेत्.'

स्वतंत्र, स्वायत्त झाल्यानंतर सुचणाऱ्या शांतीचा, समृद्धीचा आणि निर्मळ प्रसन्नतेचा जो सार्वभौम धर्म तोच शरद् होय.

हाच धर्म ज्यानें आपला निरंतरचा निरपवाद धर्म केला तोच धर्मराटू झाला. अुन्हाळ्यांतून आणि पावसाळ्यांतून सुरक्षितपणे जे बाहेर पडले आणि शरदाची प्रसन्नता पावले तेच जगले, तेच जिंकले झाले.

म्हणूनच अृषींनीं प्रार्थना केली आहे.

अजिताः स्याम शरदः शतम् ।

१९३५

## शरत्-पूर्णिमा

आश्विन शु. १५

१ दिवस

ब्रह्मांड पुराणांत म्हटलें आहे कीं, शरत्पूर्णिमेच्या दिवशीं शहरांतील रस्ते स्वच्छ करून सुगंधी-जलानें संमार्जित करावे, ठिकठिकाणीं फुलें पसरून द्यावी, आणि छत्रे लावावीं. शरत्पूर्णिमा हा निसर्गाचे काव्य अनुभवण्याचा दिवस आहे. या

दिवशीं लक्ष्मी सर्वत्र, फिरते. लक्ष्मी म्हणजे धनदौलत नव्हे; लक्ष्मी म्हणजे निसर्गाची शोभा, तारकांमध्ये विराजणाऱ्या चंद्राची शोभा आणि त्याच्या चांदण्याचा हृदयावर होणारा विलक्षण परिणाम. शरत्पूर्णिमा हा कलेचा दिवस आहे. या दिवशीं सुंदर प्रदर्शने मांडावीत, नाना काव्ये रचावीत.

नवे पीक आले असेल त्याचे पोहे तयार करून नारळ्यांचे खोबरे मिसळून खावे. नारळ म्हणजे निसर्गाचे दूध; ते नाही मिळाले तर गोमातेचे दूध तर आहेच.

समाजसेवकांनी नळराजा आणि युधिष्ठिर यांच्या गोष्टी लोकांना सांगून द्यूतक्रीडेचा या दिवशीं निषेध करावा. लहानथोर सर्वांनी मिळून चांदण्यांत, आठ्या-पाठ्या खेळाव्या. स्त्रियांनी आणि मुलींनी फेर धरावा. वृद्धांनी आपल्या आयुष्यांतील बोधरसिक प्रसंगांचे वर्णन करावे.

शक्य तर रात्रीं दोन वाजतां उठून मध्यरात्रीच्या नीवर शांतीत ताऱ्यांचे दिव्य संगीत ऐकावे. पावसाळ्यांतील मेघाच्छादित आकाशांनंतर ही पहिलीवहिली निरभ्र, निर्मेळ पूर्णिमा आहे. आणि ज्योतिःशास्त्रज्ञांच्या म्हणण्याप्रमाणे या दिवशीं चंद्र पृथ्वीच्या जास्तीत जास्त जवळ येतो.

वैदिक कर्मकांडावरील ज्यांचा विश्वास उडून गेला आहे, त्यांनीहि वैदिक ब्राह्मणांना बोलावून त्यांच्याकडून मंत्रजागर करवावा. वेदमंत्रांचे शुद्ध, सुस्वर उच्चारण आजकाल ऐकायलाहि मिळत नाही. जुन्या संस्कृतीचा हा अवशेष खचित टिकविण्यासारखा आहे. या पूर्णिमेला गायनाची बैठक तर झालीच पाहिजे.

तरुण पिढी अल्पायुषी कां होत आहे या जिद्दाच्या प्रश्नाची चर्चा  
एका काळीं महाराष्ट्रांत डॉ. भांडारकर आणि न्या. रानडे यांनीं मोठ्या आस्थेनें  
केली होती.

त्या काळाला पुष्कळ वर्षे लोटली. देशाची परिस्थिति बदलली. सामाजिक  
राहणीत प्रचंड क्रांति झाली आहे. बालविवाहावर खापर फोडण्याचे दिवस  
आतां राहिले नाहीत. ब्रिटिशांचे राज्यहि अस्ताला गेले. तरीहि तरुण पिढीचें  
अकालीवार्धक्य आणि अल्पायुषित्व अजून दूर झालें नाहीं. बालसंगोपनशास्त्रांत  
पुष्कळच प्रगति झाली आहे. आहाराचें शास्त्रीय पृथक्करण करून चौरस आहार  
कोणता हेंहि ठरावण्यांत येत आहे. प्रत्येक श्रमिकाला जीवनवेतन मिळालेंच पाहिजे  
असा आग्रह राष्ट्रहितचिंतकांनीं धरला आहे. लहानमोठ्या म्युनिसिपालिट्यांमार्फत  
गोशाळांची स्थापना करून राष्ट्रांतील अर्भकांना गाढीचें दूध मुबलक मिळवें अशा  
सूचना होऊं लागल्या आहेत. पडद्यांत राहिल्यामुळे स्त्रियांना पंडुरोग आणि  
क्वथरोग कसा होतो याचाहि अहापोह त्या त्या समाजाच्या पुढाऱ्यांपर्यंत पोचूं  
लागला आहे. शरीराला ज्याप्रमाणें फुफ्फुसें आवश्यक त्याप्रमाणें प्रत्येक शहराला  
क्रीडांगणें आणि सहलीचीं मैदानें आवश्यक आहेत हें नगरपित्यांना पटूं  
लागलें आहे. खेळ खेळणें हा शाळेतील विद्यार्थ्यांचा अनुाडपणा नसून राष्ट्र-  
संघटनेचें तें एक आवश्यक अंग आहे असें शिक्षणशास्त्र आतां कबूल करूं  
लागलें आहे. तळणीचे किंवा गरम मसाल्याचे चमचमीत पदार्थ खाणें किंवा  
गोडीच्या लोभानें शिळी, कुजकट मिठाभी खाणें हें किती चुकीचें आहे हें आतां  
सामान्य जनतेलाहि हळूहळू समजू लागलें आहे. म्युनिसिपालिट्यांदेखील  
गृहचनेवर देखरेख ठेवून आणि आहाराचें नियंत्रण करून जनतेचें आरोग्य  
सुधारण्याचा प्रयत्न करीत असतात.

व्यक्तीची चिंता व्यक्तीला जेव्हां असह्य होते तेव्हां ती समाजांने वाहिली  
पाहिजे हा सिद्धांत आपल्यानें रुढ होऊं लागला आहे आणि म्हणून गोरगरिवांना

आणि मजूर-कारागिरांना निश्चितपणे जगातां यावे यासाठी निरनिराळ्या योजना सर-काराच्या मार्फत अंमलांत आणण्याचें घाटूं लागले आहे. आणि ते साध्य व्हावे म्हणून समाजसत्ता स्थापन झाली पाहिजे असेंहि आतां राष्ट्रनेत्यांना वाटूं लागले आहे.

अतिव्या विविध दिशांनीं प्रयत्न होवू लागल्यानंतर आपल्या समाजांतील अकालिक मरणप्रमाण कमी झालेंच पाहिजे. पण दीर्घायुष्याला बाधक अशीं नवीन नवीन तत्त्वेहि येऊं लागली आहेत. नाटकें, सिनेमा आणि जागरणें, विलासाचे निर निराळे प्रकार आणि द्वेष, मत्सर व चढाओढ त्यामुळे उत्पन्न होणारीं महायुद्धे-यांचें प्रमाण अतिके काहीं वाढलें आहे कीं मनुष्यजातच निःशेष होते कीं काय अशी शंका जगांतील जाणत्या लोकांना येऊं लागली आहे.

तेव्हां भांडारकर आणि रानडे यांनीं उठविलेला प्रश्न आतां फारच मोठ्या पायावर, व्यापक दृष्टीनें आमूलाग्र संशोधन करून धसाला लावला पाहिजे. पुराणांनीं ठरवून टाकलें होतें कीं कलियुगांत मनुष्याची अुंचीहि कमी होणार आणि आयुष्यहि कमी होणार. जगाचा अनुभव याच्या अुलट आहे. ज्या समाजांतील राहाणी व्यव-स्थित आणि निश्चित आहे त्या समाजांतील संततीची अुंची या कलिकालांतहि पिढी-दरपिढी वाढतच चालली आहे. आणि घट्ट गेलेलें आयुष्यमान आतां हळूहळू वाढूं लागलें आहे. मनुष्याचें आयुष्य दैवाधीन नसून प्रयत्नाधीन आहे हें आतां पूर्णपणें सिद्ध झालें आहे. म्हणून या सर्व गोष्टींचा अुहापोह धर्मशास्त्राप्रमाणें नव्हे तर जीवनशास्त्राप्रमाणें करून त्याचे सिद्धांत धर्मशास्त्राला अपंग करण्याचे दिवस आले आहेत.

ता. २५-२-४७

## कार्यक्रम

बरील विवेचनांतच वैयक्तिक आणि सामुदायिक कार्यक्रम सहजासहजी येउन जातो.

( आश्विन व. १४ आणि अमावास्या )

### १ बळीचें राज्य.

बळिराजानें दानाचें ऋत घेतलें होतें. मागणारा जें कांहीं मागेल तें बळिराजा त्याला देओ. बळिराज्यांत जीवहिंसा, सुरापान, अगम्यागमन, चेरी आणि विश्वास-घात या पंचमहापापांचें नांवाहि अकू येत नव्हतें. सर्वत्र दया, दान आणि उत्सव चालत होते. बळीनें शेवटीं वामनमूर्ति श्रीकृष्णाला सर्वस्व अर्पण केलें. बळीच्या या दानशौर्याचें स्मारक म्हणून श्रीविष्णूनीं बळीच्या नांवानें तीन अहोरात्रांचा सण ठरविला. तीच आपली दिवाळी. बळीच्या राज्यांत आळस, मलिनता, रोग आणि दारिद्र्य यांचा अभाव होता. बळीच्या राज्यांत किंवा लोकांच्या हृदयांत अंधकार नव्हता. सर्वजण प्रेमानें राहात असत. द्वेषाला, मत्सराला किंवा असूयेला कांहीं कारणच नव्हतें. बळीचें राज्य अितकें कांहीं लोककल्याणकारी होतें कीं प्रत्यक्ष श्रीविष्णु त्याचे द्वारपाळ होऊन राहिले होते. म्हणूनच, बळिराजाच्या स्मारकाप्रित्यर्थ या सणापूर्वी लोकांनीं चिखल, दलदल आणि घाण काढून टाकावी, जेथें जेथें अंधार असेल तेथें तेथें दीपावलीची शोभा करावी, लोकांचे प्राण ह्ण करणाऱ्या यमराजाचें तर्पण करावें, पूर्वजांचे स्मरण करावें, मिष्टान्न भक्षण करावें, आणि सुगंधी धूप, दीप, पुष्पपत्रांनीं सुंदरता अेके ठिकाणीं आणावी असें ठरविण्यांत आलें आहे. या दिवसांत संध्याकाळचीं शोभा अितकीं कांहीं मनोहारी असते कीं यक्ष, गंधर्व, किन्नर, औषधि, पिशाच, मंत्र आणि मणि हे सारेच उत्सवाचा नाच करीत असतात. बळिराजाचें स्मरण करून लोक चित्रविचित्र रंगांच्या रांगोळ्या काढतात, पांढरे शुभ्र तांदूळ-लावून तद्गतहेचीं सुंदर चित्रे बनवितात, गाओ बैल वगैरे गृह्य पशूंना शुंगारून त्यांची मिरवणूक काढतात, श्रेष्ठ आणि कनिष्ठ सगळे अेक होऊन याष्टिका-कर्षणाचा खेळ खेळतात. याष्टिकाकर्षण हा युरोपीयन लोकांचा दोर खेंचण्याच्या ' टग् ऑफ वॉर ' सारखा अेक खेळ आहे. यालाच आपण ' गजग्राह ' असें नवें

नांव दिले आहे. पूर्वीच्या काळीं राजे लोक दीपावलीच्या दिवशीं आपल्या राजधानीतील सर्व मुलांना सार्वजनिक आमंत्रण देत असत आणि त्यांचे खेळ करवीत असत.

सुगंधी द्रव्यांचे मर्दन करून आंघोळ करणे आणि नानातऱ्हेचे दिवे रांगेने लावणे व मित्रांबरोबर मिष्टान्नाचे भोजन करणे हा दिवाळीचा मुख्य भाग आहे. बळिराज्यांत प्रवेश करावयाचा असेल तर द्वेष, मत्सर, असूया, अपमान वगैरे सर्व विसरून जाऊन सर्वांशीं अकरूप होऊन जावयाचे आणि अशा रीतीने निष्पाप होऊन नव्या वर्षात प्रवेश करावयाचा हा आपला प्राचीन रिवाज आहे.

याच दिवशीं सत्यभामेने श्रीकृष्णाच्या मदतीने नरकासुराचा नाश केला होता आणि सोळा हजार राजकन्यांना मुक्त केले होते.

दीपावलीच्या अुत्सवांत स्त्रियांची अुपेक्षा केलेली नाही. स्त्री-पुरुषांमधील सर्व संबंधांत भावाबहिणीचा संबंध शुद्ध सात्विक प्रेमाच्या आणि समानतेच्या अुल्लासाचा असतो. पतिपत्नींचा संबंध अथवा आर्जोमुलांचा संबंध अितका व्यापक आणि अितका सात्विक अुल्लासयुक्त असत नाही.

घनतरोदशीपासून भाऊबीजेपर्यंतच्या पांची दिवसांशीं यमराजाचे नांव जोडलेले आहे. त्याचा काय बरे अुद्देश असेल ?

अिंद्रप्रस्थाचा राजा हंस मृगया करीत फिरत होता. त्याचे हैम नांवाच्या अेका लहानशा राजाने आतिथ्य केले. त्याच दिवशीं हैमाच्या येथे पुत्रोत्सव होता. राजा आनंदोत्सव करतो आहे अितक्यांत भवितव्यतेने येअून सांगितले कीं विवाहानंतर चौथ्याच दिवशीं हा पुत्र सर्पदंशाने मरेल. हंसराजाने या पुत्राला वांचविण्याचा निश्चय केला, यमुनेच्या अंका डोहांत अेक सुराक्षत घर बांधले आणि तेथे हैम राजाला राहाण्यासाठीं वालावले. सोळा वर्षांनंतर राजपुत्राचा विवाह झाला. चौथ्याच दिवशीं अशा दुर्गम स्थानीं सुद्धां अेक सर्प पंगट झाला आणि राजपुत्र मेलाल. आनंदाची घटिका शोकाने भरून गेली. वरर यमदूतांनासुद्धां या करुण प्रसंगी दया आली आणि त्यांनीं यमराजाजवळ मागून घेतले कीं दीपावलीच्या पांच दिवसांत जे दीपोत्सव करतील त्यांच्यावर असा कठीण प्रसंग न याव'.

ही झाली धनत्रयोदशीची कथा. नरकचतुर्दशीदिवशीं तर यमराजाचें आणि भीष्माचें तर्पण मुद्दाम सांगितलें आहे. दिवाळी हा अमावास्याचा दिवस. त्यादिवशीं यमलोकावासी पितरांचें पूजन आणि पार्वण श्राद्ध करावेंच लागतें. पाडव्याच्या दिवशीं यमराजासंबंधीची कांहीं कथा सांगितलेली नाही, पण असे समजायला हरकत नाही कीं यमराजमुद्घां त्यादिवशीं नवें वहीखातें उघडत असतील. भाऊबीजेच्या दिवशीं यमराज आपली बहिण जी यमुना तिच्या घरीं जेवायला जातात. दीपावलीच्या स्वच्छंदाबरोबरच यमराजाचें स्मरण करून देण्यांत अत्सवकारांचा अद्देश कांहींहि असला तरी त्याचा परिणाम फार चांगला होत असला पाहिजे यांत शंका नाही. ज्यानें अत्सवांतहि संयम राखला तोच यमराजाच्या पाशांतून मुक्त राहूं शकेल.

नवेबर १९२२

## २ दिवाळी

दिवाणखान्यांत अखादी सुंदर वस्तु ठेवण्याची चाल प्रत्येक घरांत असते. बाहेरचा कोणीहि मनुष्य आला म्हणजे त्याची नजर तिच्याकडे जाते आणि त्याच्या तोंडून सुद्गार निघतो, 'अहाहा, किती सुंदर वस्तु! कुठून बरं आणली ही तुम्ही?' पण अजबघरांत (म्युझियममध्ये) तर जिकडे पहावें तिकडे सुंदरच सुंदर वस्तू असतात; बघून माणूस खुष खुष होऊन जातो; पण त्याचबरोबर तो तितकाच गोधळूनहि जातो! यांतले काय पहावें नि काय पाहूं नये असें त्याला होतें!

आपली दिवाळी ही सणांचे असेच अेक, अजबघर आहे किंवा सर्व सणांचे तें स्नेहसंमेलन आहे म्हटलें तरी चालेल. दिवाळीचा सण पांच दिवसांचा मानला गेला आहे. पण खरें पद्दातां येत नवरात्रापासून त्याची सुरुवात होते आणि भाऊबीजेच्या भेटींत त्याचा आनंद कळसाला पोचतो.

शास्त्रांत प्रत्येक सणाचें माहात्म्य आगे कथा दिलेली असते. दिवाळीविषयी अतिशय कांी कथा आहेत कीं 'दिवाळी माहात्म्य' लिहूं म्हटले तर अेक मोठें



पुराणच होशील. धनत्रयोदशीची कथा वेगळी, नरकचतुर्दशीची वेगळी, अमावास्येची तर अेक खास कथा आहे. त्यानंतर नव्या वर्षाचा प्रारंभ होतो आणि बीजेच्या दिवशी भाऊ वहिणीच्या घरचा पाहुणा बनतो. दिवाळी हा गृहस्थाश्रमी सण आहे, जनतेचा सण आहे. नारळी पूर्णिमेच्या दिवशी धर्म आणि शास्त्र प्रधान असते; दसऱ्याच्या दिवशी युद्ध आणि शस्त्र प्रधान होते; दिवाळीच्या दिवशी लक्ष्मी आणि धन प्रधानपद घेते; आणि होळी म्हणजे खेळाचा आणि रंगरागाचा सण. जसे माणसांत चार वर्ण तसे सणांतहि असे चार वर्ण पडले आहेत !

पूर्वीच्या काळीं नारळी पूर्णेमेच्या दिवशी आपले लेक जलपर्यटनाला निघत आणि समुद्रापलिकडच्या देशांच्या परवासाला जात. दसऱ्याच्या दिवशी राजे आणि योद्धे आपल्या सरहद्दीची शीव ओलांडून शत्रूवर चढाओढी करायला निघत. आणि दिवाळीच्या दिवशी राजे आणि व्यापारी दोघे स्वदेशी येअून कौटुंबिक सुखाचा लाभ घेत.

पुराणांत कथा आहे कीं नरकासुर नांवाचा अेक पराक्रमी राजा प्राग्ज्योतिष प्रांतांत राज्य करीत होता. प्राग्ज्योतिष म्हणजे आजचा भूतानच्या दक्षिणेकडील मुलख. नरकासुर दुसऱ्या राजांशी लढत असे ते घटकाभर सहन करतां येअील, पण त्या दुष्टानें स्त्रियांनाहि पीडा द्यायला सुरुवात केली. त्याच्या कैदखान्यांत सोळा हजार राजकन्या होत्या. श्रीकृष्णांनीं विचार केला कीं ही स्थिति आपली नामुष्की करणारी आहे. नरकासुराचा नाश केल्यावांचून आतां गत्यंतर नाहीं. सत्यभामा म्हणाली, ' स्त्रियांचा अुद्धार करण्याकरितां तुम्ही चालला, मग मी कां घरा राहूं ? नरकासुराशी मीच लढेन. तुम्ही मदत म्हणून राहा हवे तर.'

श्रीकृष्णांना कबूल केले. त्या दिवशी रथांत सत्यभामा पुढे बसली होती; श्रीकृष्ण मार्गे मदत म्हणून होते. चतुर्दशीदिवशी नरकासुराचा नाश झाला, देश स्वच्छ झाला, लोकांनीं आनंदोत्सव केला. नरकासुराचा भयंकर जुलूम नाहींसा झाला हें दर्शविण्यासाठीं लोकांनीं रात्री दीपोत्सव केला आणि अमावास्येच्या रात्रीसुद्धा पूर्णिमेची शोभा आणली.

पण हा नरकासुर अेक वेळा मारला म्हणजे मेला असे होत नाहीं. त्याला दरवर्षी मारावें लागतें. पावसाळ्यांत सर्वत्र चिखल होतो, त्यांत पाने गळून पडतात,

शेण वगैरे पडते, आळ्या होनात आणि गांवाच्या आसपास अशा रीतीने नरक तयार होतो. पावसाळ्यानंतर भाद्रपदांत अन्ह तावने त्यामुळे त्या नरकाची दुर्गंधी हवेमध्ये पसरते आणि पुष्कळ लोक आजारी पडतात. म्हणून बहाद्दर स्वयंसेवकांच्या आरोग्यसेनेने फावडी कुदळी घेऊन या नरकाशी लढण्यासाठी जावे, गांवाच्या आसपासच्या नरकाचा नाश करावा आणि घरांत येऊन अंगाला तेल चोळून स्नान करावे. गोशाळा तर स्वच्छ केलेलीच असावी. तेथील मच्छर नाहोसे करण्यासाठी राती तेथेहि दिवा लावावा आणि धूर करावा आणि प्रसन्न मनाने मिष्ट पक्वान्नांचे भोजन करावे.

X

X

X

X

दिवाळीनंतर नवे वर्ष सुरू होणे आणि नवे धान्य घरी येणे. वेदकाळापासून आजतागायत हिंदु घरांतून हा नवान्नाचा विधि श्रद्धापूर्वक पाळण्यात येतो. आपल्या महाराष्ट्रांत या दिवशी जेवण्यापूर्वी अन्ना कडू फळाचा रस चाखण्याची चाल आहे. तिचा अर्थ असा की कडू मेहनत केल्यावांचून मिष्टान्न मिळत नाही हे दर्शविण्याचा असेल. भगवद्गीतेंतहि म्हटले आहे कां आरंभी विषासारखे आणि अन्ता अमृतासारखे असेल तेंच सात्त्विक सुख. गोत्र्यांत दिवाळीच्या दिवशी पोह्याचें मिष्टान्न करतात आणि जितकें म्हणून अष्टमित्र अपतील त्या सर्वांना त्या दिवशी बोलावतात; म्हणजे प्रत्येकांने प्रत्येक अष्टमित्राच्या घरी गेलेंच पाहिजे. प्रत्येकाच्या येथे फळाहार असतो. त्यांतून एक तुकडा चाखून माणसाने दुसऱ्याच्या घरी जावे. व्यवहारांत कडूपणा आला असो, वैर-झगडे झालेले असोत, कांहींहि झालेले असो, दिवाळीच्या दिवशी सर्व कांहीं मनांतून काढून टाकून पुनः मैत्रीप्रेमाचे संबंध जोडले पाहिजेत. व्यापारी दिवाळीच्या वेळेला जसे अेकूण देणेंघेणें संपवून घेऊन नव्या वहीत बाकी ओढीत नाहीत, तसे प्रत्येकजण वर्षारंभी हृदयांत कसलेहि वैर-द्वेष शिल्लक ठेवीत नाहीत. ज्या दिवशी गांवांतून नरक निघून जातील, हृदयांतून पाप निघून जातील, रात्रीमधून अंधार निघून जातील आणि डोक्यावरील कर्ज दग झेलील त्या दिवसापेक्षा अधिक पवित्र दिवस कोणता असू शकतो !

ता. ३०-११-२१

### ३ मरणाचा उत्सव

ज्याच्याविषयी सोळा आणि खासरी आहे, ज्याविषयी यत्किंचित्हि शंका नाही, अशी वस्तु आयुष्यांत कोणती आहे? अेकच. आणि ती म्हणजे मरण.

राजा असो, रंक असो, म्हातारी कुब्जा असो, को लावण्यवती जिंदुमती असो, बाघ असो नाहीतर गाय असो, ससाणा असो नाहीतर कबुतर असो, मृत्यूची भेट प्रत्येकाला ठेवलेलीच आहे. आतां प्रश्न असा आहे की या निश्चित अतिथीचे स्वागत कोणत्या पद्धतीनें करावे?

आपण जसें त्याला ओळखीत असूं तसेंच त्याचे स्वागत करणार. मरणाचें स्वरूप फणसासारखें आहे. वर पहावे तर सगळे कांटेच; आंतला स्वाद कोणाला माहींत? मरण म्हणजे घटकाभर विहरांति; मरण म्हणजे दोन अंकांमधला पडदा, मरण म्हणजे वाणीच्या अस्खलित प्रवाहांत येणारी विरामचिन्हें. अंग्रज कवी बीजेच्या चंद्राचें स्वागत करतांना 'बालचंद्राच्या बाहुंत कवटाळलेला वृद्ध चंद्र,' असें त्याचें वर्णन करतात. अमवास्येपर्यंत जुना चंद्र सुकून जातो, क्षीण होतो; आतां त्याला आपल्या पायांनीं चालतां कसें येणार? म्हणून त्याच्या पोटां अवतरलेला बालचंद्र आपले बारीक हात पसरून त्या म्हाताऱ्या काळ्या चंद्राला अुचलून दुसऱ्या दिवशीं पश्चिमेच्या रंगभूमीवर घेऊन येतो आणि सगळ्या जगानें टाळ्या वाजवून केलेलें स्वागत स्वीकारतो. यालाच मुसलमान लोक 'ओद का चांद' म्हणून सत्कारतात. मरण हें पुनर्जन्माकरितांच आहे. प्रत्येक नवी पिढी जुन्या पिढीचें तेज घेऊन जवानीच्या आवेशांत पुढें सरसावत असते; आणि जुनी पिढी म्हातारपणाचें परावलंबन अनुभवीत लुप्त होऊन जाते.

म्हातारा वढलेला हिवाळा प्रफुल्ल नववसंताला आपलें बोट धरायला लावून घेऊन येतो हें कसें विसरतां येतील? हिवाळ्याच्या कडाक्याच्या थंडींतच वसंताचा प्रसव आहे हें विसरून कसें चालेल?

दिवाळीच्या दिवशीं वसंताच्या अपेक्षेनें, वसंताच्या मार्गप्रतीक्षेनें जर आपण दीपोत्सव करूं शकतो, मिष्टान्नभोजन करूं शकतो, आनंदाचा-मांगल्याचा

अनुभव घेऊं शकतो तर मरणाचा आपल्याला आनंद कां होऊं नये? मरणाची रडगाणीं रडूं नका, मरणाचें स्वागत करा, मरणांतच नवयौवन देण्याची, नवजीवन देण्याची शक्ति आहे, दुसऱ्यांत ही शक्ति नाही, हें दिवाळी आपल्याला शिकवते.

दिवाळीचा सण हा मरणाचा उत्सव आहे; मरणाचें अभिनंदन आहे; मरणावरील श्रद्धा आहे. निराशेंतून उत्पन्न होणाऱ्या आशेचें स्वागत आहे.

रुद्र तोच शिव; मरणाचें दुसरें रूप म्हणजे जीवन.

यमानें आपल्या बहिणीच्या घरीं जावें: मरणानें नित्यनूतनतेच्या घरांत उत्सव करावा हें कोणाला आवडणार नाहीं ?

मरण हा अग्नि नाहीं, तर तेजस्वी रत्नमणि आहे.

ऑक्टोबर. १९२५

## ४ धाकट्या भावाशिवायची दिवाळी.

दिवाळीच्या दिवशीं घरचे सर्व कुटुंबीजन गोळा होतात.

दूर देशां गेलेले लोकहि शक्य तर दिवाळीच्या वेळेला परत घरीं यायला आतुर असतात. दिवाळी म्हणजे मिष्टान्नाचा दिवस. त्या दिवशीं सारे अिष्टजन जमले नाहींत तर मिष्टान्न मिष्ट कसें लागेल ? भाऊ रुसून गेला असला तर त्या दिवशीं त्याची समजूत काढून त्याला आपण घरीं आणतो. आपण भावाशीं वाओट वागलों असलों तर त्याची माफी मागून प्रेमाच्या दोरीनें त्याला बांधून ओढून आणतो. दिवाळीच्या दिवशीं ऐकहि भाऊ दूर राहूं नये अशी आपली माझ्यांत मोठी अिच्छा असते.

आपण ऐका भावाला—आणि नोंहि सर्वांत लहान भावाला—केव्हांचा दूर ठेवला आहे, जाणूनबुजून दूर ठेवला आहे, त्याचा तिरस्कार करून त्याला दूर ठेवला आहे, तरी तो रुमलेला नाहीं. विचारा कांहींसा निराश झाला आहे, कांहींसा आशाशुक्त डोळ्यांनीं घराकडे पहात आहे. अजून तो आपला हिस्सा मागत नाहीं. हक्क सांगत नाहीं. तुम्ही ठेवला त्या स्थितीत राहायला तो तयार आहे; फक्त त्याला घराच्या आंत स्थान पाहिजे आहे. भाऊ म्हणून आम्हीं त्याला बोलवावें

याचाच तो भुकेला आहे. त्याच्यावांचून आपलो दिवाळी साजरी कशी होणार ! त्याच्या शिवाय मिष्टान्नांत गोडी कोठून येणार ! दिवाळीच्या दिवशी आपण अन्नकूट जरी केला तरी श्रीश्वर त्याच्या अंघ्रि शिखराकडे पहात नाही; तो धाकट्या भावाच्या प्रेमभुकेल्या डोळ्यांमधून आपणांकडे पहात असतो. धाकट्या भावाला जोंपर्यंत आपण ' भाऊ ' म्हणून प्रेमाने आंत बोलावीत नाही तोपर्यंत श्रीश्वराला ' त्वमेव माता च पिता त्वमेव ' असे म्हणण्याचा आपल्याला काय अधिकार ?

ऑक्टोबर १९२५.

## नरकचतुर्दशी

आश्विन व० १४

१ दिवस

या दिवशी अकिरडे काढून त्यांतील खत शेतांत टाकावे, किंवा खड्ड्यांत पुरून ठेवावे, सर्वत्र आणि विशेषतः खेड्यांतून, गांवांतील सर्व तरुणांनी आणि सशक्त लोकांनी प्रथम ठरविलेल्या योजनेप्रमाणे गांवाची सामुदायिक सफाई करावी. जागा, सार्वजनिक असो किंवा खासगी असो, कोठेहि घाण राहाता कामा नये. खासगी जागेत मालकाच्या सहकार्याने साफसफाई सहज करता येईल. जर सफाई न झाली तर सण तहकूब करण्याची तयारी असली पाहिजे. सफाईनंतर तेलाने मालिश करून गरम पाण्याने अंग धुवावे. प्रथमपासून तयारी करून चुन्याने रंगविलेल्या घरावर चुना-हळदीच्या किंवा दुसऱ्या रंगाच्या बारीक रेधा काढल्या. भिंती चित्ते काढून सजवाव्या.

नरकासुराची कथा वाचावी.

## दिवाळी

अमावास्या

१ दिवस

हा सण अितका कांहीं जागृत सण आहे कीं त्यासंबंधीं नवीन कांहीं सूचना करण्याची आवश्यकता नाही. मुलांनीं घरीं जाऊन आजीबापांना भेटावें. अिष्ट-मित्रांनीं अक्रमेकांना भेटून दिलसफाआ करावी. आवडती वस्तु अक्रमेकाला भेट म्हणून पाठवावी.

प्रत्येकानें रात्रीं निजण्यापूर्वी सगळ्या वर्षाच्या संकल्पांमधून किती संकल्प पार पडले हें तपासावें. नव्या वर्षीं जीवनांत नवीन काय आणतां येण्यासारखें आहे, जुन्यांपैकीं काय सोडून देण्यासारखें आहे अित्यादि सर्व गोष्टींचा विचार करून निजावें.

दिवाळी म्हणजे दीपावली, दीपोत्सवी. या दिवशीं दिव्यांचा अुत्सव केलाच पाहिजे.

—--

# विक्रम वर्षारंभ

: : ३१

कार्तिक शुद्ध १

( बलिप्रतिपदा )

१ दिवस

हा दिवस मुख्यत्वे मित्रांना भेटण्याचा तसाच गुरुजनांना भेटून त्यांचा आशीर्वाद घेण्याचा दिवस आहे. नव्या वर्षाचा नवा संकल्प आणि संबंध वर्षाची कांहीतरी निश्चित योजनाहि या दिवशी करावी. ज्यांना विचार करता येतो त्यांनीं ऐक्येन तास शांतपणे ऐकांतांत बसून प्रार्थनापूर्वक नव्या वर्षाचा संकल्प आणि तो पार पाडण्यासाठीं सविस्तर कार्यक्रम मनांत बसवावा आणि ज्यांच्यापुढे असा संकल्प उघड सांगणे शिष्ट आहे त्यांना तो सांगून आपल्याजवळ अवश्य टिपून ठेवावा.

---

# कुठे आहे भाअूबीज ?

: : ३२

( कार्तिक शु. २, यमद्वितीया )

हिंदु समाजांत स्त्रियांची स्थिति जशी असावी तशी नाही. अितकीं वर्षे चर्चा चालली आहे, पुष्कळ कुटुंबांत फेरफार झाला आहे, लोकमतांतहि पुष्कळ बदल झाला आहे, तरीहि स्त्रियांची स्थिति अजून संतोषकारक झाली आहे असें म्हणतां येणार नाही. परिस्थितीच्या दडपणाने नाबिलाज झाल्यावांचून जीवनांत कसलाहि फेरफार करायचा नाही अशा प्रकारची मुमूर्षु जडता समाज जोंवर सोडणार नाही तोंवर अगीच स्थिति राहाणार.

ही स्थिति म्हणजे काय ? ही स्थिति म्हणजे स्वभावाचें पारतंत्र्य, हृदयाची दुर्बलता, आणि सामाजिक उन्नतीच्या श्रेष्ठ तत्त्वाविषयी नास्तिकता. चालू परिस्थितीने व्याकुळलेले मन प्रसन्नता मिळविण्यासाठी हिंदु आदर्शांतील वैभक्ताळाचीं चित्रे दृष्टोपुढे अुभीं करण्याला धडपडत असते, आणि या व्यापारांत आनांपर्यंत आपल्याला निराश्र ह्वाण्याची पाळी आलेली नाही. मदालसा, मैनावती, मुमित्रा, विदुला किंवा जिजाबाजी यांसारख्या आदर्श माता आपल्याअिकडे आहेत. आदर्श पत्नीच्या बाबतींत तर हिंदुस्थान जगांतील अितर सर्व देशांच्या नेहमीं आघाडीवर राहिल. सीता-सावित्रीपासून त्यांची नामावलि सुरू करणें सोपें आहे, पण या नामावलीला शेवट कुठे आहे ?

आदर्श मातांचीं आणि आदर्श पत्नींचीं अुदाहरणें आपल्याकडे ढिगावारी आहेत ; पण आदर्श ब्रह्मचारिणीविषयी मात्र तसे म्हणतां येणार नाही. प्राचीन युगांत नारीला अुपवीत दिलें जात असे अशी थोडीशी वचने आणि सुलभा, गार्गी, शबरी आणि मैत्रेयी अितकींच लोकविश्रुत अुदाहरणें आहेत. वेदवती, धृतरात्रता, वडवा, शुतावती अित्यादि नावे नावेच राहिलीं आहेत. मोक्ष हाच परम पुरुषार्थ मानणाऱ्या ब्रह्मचारिणी स्त्रियांची अितकीं कमी उदाहरणें असावीत ही स्थिति खचित शोभास्पद नाही.



स्त्रियांचे सामाजिक स्वातंत्र्य जेथे मान्य केले जात नाही तेथे त्यांच्या पारलौकिक स्वातंत्र्याविषयी म्हणजेच मोक्षवाचिण्या कोणाला अत्साह वाटणार ? हिंदू, ख्रिस्ती, बौद्ध आणि मुसलमानी धर्मांत परमलोकप्राप्तीच्या बाबतीत स्त्रियांच्या शक्तीविषयी थोडीफार शंकाच प्रदर्शित केली आहे. आर्य आनंदाने बुद्ध भगवानाला जेव्हा सरळ प्रश्नच टाकला तेव्हा बुद्धभगवानांनी शेवटी कबूल केले की, 'निर्वाण मिळविणे हे स्त्रियांच्या बाबतीत अशक्य नाही.' या प्रसंगासंबंधी कुमारस्वामीसारखे आधुनिक संस्कारी पुरुषसुद्धां आपल्याला विचारातात की 'प्रांपंचिक वृत्ति पुरुषा-पेक्षा स्त्रियांमध्ये अधिक आहे ही गोष्ट खरी नाही का ?' बंकिमचंद्रहि आपल्या 'आनंदमठ' कादंबरीत, मोक्षधर्मांशी स्त्रियांचे हाडवैर आहे, असे अस्पष्टपणे सुचवितात.

अशा प्रकारची समजूत जेथे आहे तेथे आदर्श ब्रह्मचारिणी कमीच असणार तर काय ? आणि मोक्षप्राप्तीची अिच्छाच जेथे मंद असेल तेथे ब्रह्मचर्यासारखी कठिण दीक्षा घेणे कोणाला सुचणार ? (यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति)

'तेऽपि यान्ति परां गतिम्' असे सांगून गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णाने शूद्रांबरोबर स्त्रियांनाहि आश्वासन दिले; पण भगवन्तांनी अेवादी आदर्श ब्रह्मचारिणी तयार केली असेल तर त्याचा अुल्लेख पुराणकारांनी कुठे केलेला नाही.

वीरमाता, वीरांगना, वीरकन्या असे बहादुरीचे आदर्श आपल्याअिकडे भरपूर नसले, तरी पुष्कळ आहेत. तेजस्वितेच्या बाबतीत अेकटी द्रौपदी आणि झांशीची लक्ष्मीबाई आपल्यापुढे असल्या तरीहि आपल्या समाजाचे मुख अज्ज्वल करण्यासाठी त्या पुरेशा आहेत.

आदर्शांच्या प्रकारांत अेक अुणीव मात्र आपणाला अतिशय बोचल्यावांचून राहाणार नाही. गृहस्थाश्रम आणि संन्यास, मोठमोठे संघ आणि अविभक्त कुटुंबे, कन्नौजोहि वर्णन वाचा आणि वाटेल ते आदर्श निरीक्षण करा. आपल्याअिकडे आदर्श भाअूबहिणींची चित्रे नाहीतच म्हटले तरी चालेल. श्रीभगवन्तांनी सुभद्रेपेक्षा-सुद्धां द्रौपदीचे बंधुत्व अधिक संभाळले हा अेक अज्ज्वल दृष्टांत सोडून दिला तर शिल्लक काय राहाते ? महेन्द्र आणि संघमित्रा यांना आदर्श मिशनरी म्हणतां येतील. पण त्यांनी कांही आदर्श बंधुभगिनीचे अुदाहरण घालून दिले आहे असे म्हणतां येणार नाही; आदर्श बंधुभगिनीचा विचार करतांना हृदय अुचंबळून सोडणाऱ्या

प्रेमाने कांहीं यांचें स्मरण होत नाही. आय आणि आर्ष कवी वाल्मिकीलासुद्धा मानवी जीवनाचे सगळे संबंध सुचले, पण अेक भाऊबहिणीचा आदर्श रेखाटण्याचें कांहीं त्याला सुचलें नाही. त्या बिचाऱ्या शान्तेचासुद्धा त्याला उपयोग करून घेतं आला नाही; पौराणिक आणि ऐतिहासिक साहित्यांत बंधुभगिनीचा आदर्श रूढ झालेला कुठेहि पहाण्यांत येत नाही, अितकेंच नव्हे तर कल्पित साहित्यांतसुद्धा आपल्या कवींनी भाऊबहिणीचा अुज्ज्वल आदर्श रेखाटण्यांत आपल्या प्रतिभेचा अुत्कर्ष कुठेहि दाखविलेला नाही. सम्राट शरीहर्ष आपली बहीण राज्यश्री हिला सोडविण्याकरितां जंगलाकडे धांवला आहे हा प्रेमळ परसंग अन्य देशांतील कवींच्या हातीं आला असता तर त्याच्यावर त्यांनीं कितीं अमर काव्यें लिहिलीं असतीं कोण जाण ?

आपल्या कवींनीं हा अक्षम्य प्रमाद कां बरें केला ? जिला भाऊ नाहीं अशा कन्येबरोबर लग्नसुद्धां करूं नये अितक्यापर्यंत सांगणाऱ्या आपल्या शास्त्रकारांनींसुद्धां भावाबहिणीच्या संबंधांवर आपली धर्मबुद्धि रिती केली नाही. याचें काय कारण ? बालविवाह ? मुलगी आठ दहा वर्षांची होण्यापूर्वीच लग्न होऊन सासरीं जातें, मग भावाबहिणीच्या संबंधांच्या विकासाला अवकाश कुठून राहणार ? पण आपल्या अिकडे पूर्वीपासून कांहीं बालविवाह होत नव्हता. वेदामध्ये यमयमी या प्रख्यात जोडीचा काव्यमय अुल्लेख आहे. यम मृत्यु पावला तेव्हां यमीचे अरू कांहीं केल्या थांबेचनात. सगळ्या देवांनीं यमीला शांत करण्याचा प्रयत्न केला, पण तिचें सांत्वन होईना. शेवटीं देवांनीं रात्र निर्माण केली. रात्र झाली आणि भावाच्या मरणानें दुःख यमी थोडेसें विसरली. या रात्रीनंतरच आज आणि काल अया भेद सुरू झाला. त्यापूर्वी नेहमीं आजच होता.

वेदांनीं यमयमीच्या बंधुभगिनी—प्रेमाचें वर्णन तर सुरेख केलें, पण त्यांनीं या रूपकाचा अगदी चुथडा केला आहे. याच कारणानें मला वाटतें आपल्या कवींचा जो अेकदां विरस झाला त्यानंतर त्यांना भाऊबहिणीचा काव्यमय आणि आध्यात्मिक संबंध रेखाटण्याला अुत्साहच मुळीं राहिला नसावा. कच आणि देवयानी यांच्या संबंधांतसुद्धां काम असेंच बिघडून गेलें आहे, त्यामुळें कवी भावाबहिणीच्या पवित्र संबंधाविषयीं नास्तिक बनले असावेन ! युगानुयुगे भारतवासी

दरवर्षी भाअूवीजेचा सण साजरा करोत आले आहेत ; तरी अेकाहि कवीला भाअू-  
बहिणीच्या संबंधाला प्राधान्य देअून महाकाव्य लिहायचें सुचलें नाहीं.

निराश झालेलें मन जेव्हां आपली हताश दृष्टि लोकसाहित्याकडे टाकते तेव्हां ती दृष्टि आनंदाश्चर्यानें ओलां होते. भावाबहिणीचा संबंध अनादि आहे, हृदयसहज आहे. सार्वभौम आहे. लोकहृदय तो कसा विमरणार ? लोकगीतांत आणें लोककथांमध्ये जिकडे पहावें तिकडे भावाबहिणीच्या मधुर संबंधाच्या आठवणी विगुरल्या आहेत. भविष्याचा सामाजिक आदर्श घडविणारे आजचे कवीजन हो ! या न नांगरलेल्या ऋषेत्त्राकडे दृष्टि टाका, आणि स्त्रीपुरुषांमधील हा अक्रमेव निर्विकारी, निष्काम आणि समान संबंध रेखाटण्यांत आपलें शक्ति-सर्वस्व खर्च करा.

## भाअूबीज

कार्तिक शुद्ध २

( यमद्वितीया )

१ दिवस

सर्व सणांत या सणाचें काव्य कांहीं वेगळेंच आहे. ज्या शाळेंत मुलांच्या-बरोबर मुलींनाहि स्थान आहे, तेथें तर हा दिवस विशेषप्रकारें साजरा करतां येतील. त्या दिवशींचा नास्ता ( न्याहारी ) अथवा सगळें भोजन मुलींनोच तयार करावें आणि सर्व मुलांना वाढावें. मुलांनीं स्वतः तयार केलेली अशी कोणतीहि उपयोगी वस्तु भगिनींना द्यावी हाहि रिवाज चांगला आहे. स्वतः कांतलेल्या सुताच्या खादीचा तुकडा, अखादें पुस्तक, दौत किंवा अशीच कांहींतरी दुसरी वस्तुहि देतां येतील.

भाअूवीजेच्या दिवशीं प्रत्येक विद्यार्थ्यानें घरीं आपल्या बहिणीला पत्र मात् अवश्य लिहावें. अशा पत्रांच्या नकला गोळा करून त्या खाजगी रीतीनें वाचल्या तर त्याला कांहीं हरकत नाहीं. मात्र हें कृत्रिम देतां कामाचें नाहीं. कृष्ण आणि द्रौपदी ही गोष्ट अखाद्यानें लिहून आणावी किंवा त्यावर कविता रचावी.

संस्थेमध्ये सर्व विद्यार्थी सर्वच विद्यार्थिनींचे भाअू आहेत. त्यांत अमुकच बहिणीला किंवा भावांना विशेष पसंती द्यायची असे असूं नये.

# महाअेकादशी

: : ३३

कार्तिक शु. ११

अर्धा दिवस

या दिवशीं देवशयन आणि प्रबोधन यांचें रहस्य अेखाद्या शिक्षकानें सांगावें. चातुर्मास्याचें उद्यापन करावें. तुळशीच्या गोष्ठीविषयीं थोडेसें विवेचन व्हावें. महाअेकादशीदिवशीं सगळ्यांनीं चार वाजतां स्नान करून सामुदाअिक प्रार्थान करावी. कार्तिक-स्नानाचें माहात्म्य विशेष सांगितलें आहे. प्रार्थनेत गीतेच पंधरावा अध्याय म्हणावा. झाडांचीं आळीं साफ करून झाडांना पाणी देण्याकडे या दिवशीं थोडा वेळ सर्वांनीं घालवावा, हा या दिवसाचा महायज्ञ. महाअेकादशीचा फलाहार हा आहेच. शक्यतर दशमीच्या संध्याकाळीं कांहीं खाऊं नये. महाअेकादशी दिवशीं संगीतयुक्त भजनाला विशेष वेळ दिला पाहिजे.

अेकादशी दोन येतील तर संस्थांमध्ये दुसरी पसंत करावी. वेण्णवधर्मांत भक्ति, चारित्र्याची शुद्धि आणि माणसांमधील समानता या तीन्हीवर विशेष जोर कसा दिला आहे तें समजावून द्यावें.

---

# स्वातंत्र्याचा आद्यप्रणेता

: : ३४

( कार्तिक व. १३ )

महाराष्ट्रामध्ये संतमताचा प्रचार करणारा पहिलाच पुरुष अनेक रीतींनी अद्वितीय व्हावा हा कांहीं सामान्य योगायोग नव्हे. सनातन धर्माचे रुढिधर्माचे रूप धारण केले, जिकडे तिकडे उच्चनीच भाव बोकळा, आणि लोकांनी ज्ञानाची भाषा सदाचाराची अपासना सोडून कर्मठपणांतच जीवनाची कृतार्थता मानली, अशा वेळी ज्ञानेश्वराचा प्रादुर्भाव झाला. वर वर्णिलेली दुरवस्था वाढावयाचीच होती, तिची शीग चढली नव्हती. परंतु नैतिक सृष्टीची रचनाच अशी आहे की पापाच्या प्रारंभा-बरोबरच त्याच्या परिमार्जनाचा संभव होत असतो, आणि ही दोन्ही तत्त्वे वाढीस लागून यथाकाळी पापाचे पारिपत्य होतं आणि धर्माची संस्थापना होते. ज्ञानेश्वर-काली ज्या संतमताचा अंकुर फुटला त्याची फळे महाराष्ट्राला रामदास आणि तुकाराम यांच्या काळी चाखावयास मिळाली.

ज्ञानेश्वर-संन्याशाचा मुलगा-धर्मपरायण असूनहि धर्म-बहिष्कृत आणि धर्मबहिष्कृत असूनहि धर्मविद् आणि धर्मकृन् झाला. समाजाची शासनसत्ता आणि रुढिधर्माची मर्यादा त्यांना मान्य असूनहि समाजाने त्यांना जवळ केले नाही आणि ज्या स्वातंत्र्याची अिच्छा सुधारकांना अहर्निश असते ते स्वातंत्र्य समाजाने त्यांच्या-वर लादले. ज्ञानेश्वर प्रायश्चित्त घेण्यास तयार होते; त्यांना. उपनयन-विधि हवा होता; ब्राह्मण्याचे निदर्शक असे यज्ञोपवीत, त्यांना आपल्या खांद्यावर हवे होते; त्यांनी जसा आपल्या नम्रतेचा आपल्या समाजाला परिचय करून दिला त्याच-प्रमाणे रेव्याकरवी वेद बोलवून आपल्या सामर्थ्याचाहि परिचय दिला. लोकांत म्हणत आहे की 'चमत्कारावांचून नमस्कार नाही.' ज्ञानेश्वरांनी चमत्कार करून दाखविले, रुढीग्रस्त समाजाने त्यांना नमस्कार घातला पण जानवे घातले नाही. अशा रीतीने निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव आणि मुक्ताबाजी ही चार भावंडे शास्त्रधर्म आणि रुढिधर्म यांच्या कैचीतून आपोआपच मुक्त राहिली. जे स्वातंत्र्य मीराबाजीला प्राणदंड देऊन विकत घ्यावे लागले ते मुक्ताबाजीवर 'नको नको' म्हणत असतां

लादले गेले. म्हणूनच ती स्वातंत्र्योपासक झाली, विजेसारखी चमकली, आणि चेंगटपणाने जीवनाला चिकटून राहाणाऱ्या रूढीप्रतिनिधी चांगदेवाच्या गुरुस्थानी जाऊन पोचली. चांगदेवाने अनुचपणाचा अभिमान सोडला तेव्हाच त्याचा अुद्धार झाला; आणि विसोबा खेचर ? तो तर भगवद्भक्त नामदेवाचा ज्ञानी गुरु, त्यालाहि या ज्ञानी भावंडांकडूनच दीक्षा मिळाली होती.

ज्ञानेश्वराचे वडील तेहि शास्त्रमर्यादा पाळणारे, पत्नीची अनुमति मिळविल्यावांचून काहीं त्यांनीं संन्यास घेतला नव्हता. त्यांना संन्यासदीक्षा देणारे त्याचे गुरु हेही रूढीधर्म पाळणारे; सुवासिनी वधून त्यांनीं तिला आशीर्वाद दिला, यांत रूढींचेच पालन केले. पण रूढी स्वभावतःच आंधळी असते. तिचे राज्य केवढे, कां मोठे असेना, सुव्यवस्थित नसावयाचेच. ज्ञानेश्वरांच्या संबंध चरित्रांत जेवढे म्हणून असंग आहेत ते सर्व रूढीनिष्ठांना रूढीं पाळणे कसे अशक्य झाले हे दाखविणारेच आहेत.

अशा या ज्ञानेश्वरांनीं गीतेवर टीका केली तेथें देखील भाष्यकार श्रीशंकराचार्यांना वाट पुसत जाऊनसुद्धां त्यांना आपले स्वतंत्र दर्शन व्यक्त करावे लागले; आणि जणू काय रसेश्वराच्या त्या ग्रंथांत स्वातंत्र्य पूर्णपणे व्यक्त झाले नाही म्हणून निवृत्तिनाथांनीं त्यांचेकडून 'अनुभवामृत' लिहून घेतले.

असा हा महाराष्ट्राचा आद्य संतपुरुष राजनिष्ठ आणि धर्मनिष्ठ असूनहि स्वातंत्र्याचा पुरस्कर्ता आणि प्रणेता झाला, आणि त्याने महाराष्ट्राला जी नवी प्रेरणा दिली ती रूढीचे खडक फोडीत फोडीत महाराष्ट्राला सजीवन करीत आली आहे.

ज्ञानदेव जसे ज्ञानेश्वर होते तसे रसेश्वरहि होते. 'ज्ञानेश्वरी' ही विचारी परंपरापरायण लोकांच्या हातीं सांपडल्यामुळे लोकांनीं तिचा पूर्ण आणि खराखुरा उपयोग केलाच नाही. ज्ञानेश्वरीला तिचे खरे वाचक यापुढेच मिळणार आहेत.

## ज्ञानेश्वर—पुण्यतिथि

कार्तिक व. १३

१ दिवस.

संस्कृतमध्ये ज्याप्रमाणे अनुष्टुभ् त्याप्रमाणे मराठीत ओवी. कोणताहि रस घ्या आणि कसलीहि भव्य कथावस्तु घ्या, अनुष्टुभ् आणि ओवी यांपैकीं एकहि वृत्त अपुरे पडणार नाही. महाराष्ट्रीयव असल्याने मी अगदीं लहानपणापासून आओच्या मांडीवर डोकें ठेवून ओव्या ऐकल्या आहेत. आणि हरिदास—पुराणिकांच्या तोंडून 'ओवी ज्ञानेशाची' हा आर्याखंडाहि अकला आहे; पण ओवीचें संपूर्ण दर्शन झालें हिमालयाच्या पायथ्याशीं गंगातटाकीं हृषीकेश येथें. ओवीचा सागरगंभीर प्रवाह वाहूं लागला म्हणजे पेंजेनें हवा तो रस आळवूं शकतो याचा साक्षात्कार त्या पवित्र स्थानीं ज्ञानेश्वरी माथुलीनें करून दला आणि तेव्हांपासून निश्चय झाला कीं जर ज्ञानेश्वरमहाराजांचा उत्सव साजरा करावयाचा तर तो ओव्यांचे भक्तियुक्त पारायण करूनच करावयाचा. महाराष्ट्रांत एकेकाळीं ज्ञानदेवांचे अभंग परत्येक महाराष्ट्रीयान्या नित्यपाठाची वस्तु होती. ज्ञानेश्वरांनीं लहानलहान कितीतरी प्रकारें लिहिलीं होती आणि महाराष्ट्रांतील वृद्ध स्त्रिया ओलेत्यानेंच तो म्हणत असत. तीं सर्व प्रकारें मागच्या पिढीबरोबर लुप्त झालीं. आतां जीं म्हणून हातीं लागतील तीं केवळ मुद्रित करून संताप न मानतां कंठीं धारण करण्याची प्रथा पुनः सुरू केली पाहिजे.

ज्ञानेश्वरांच्या उत्सवाच्या दिवशीं चारी वर्णांच्या लोकांना उत्सवाला बोलावून त्यांना ज्ञानेश्वरांचे चरित्र ऐकविलें. पाहिजे, आणि सर्वांनीं मिळून शपथा घेतल्या पाहिजेत कीं आम्ही आमच्या जीवनांत कोणत्याहि प्रकारचा अुच्चनीच भाव बाळगणार नाहीं. शबरी, मीरा, मुक्ताबाई, सुलभा वगैरे कन्यांचें चरित्रकीर्तनहि या दिवशींच करावें. ज्ञानेश्वरीपाठ संबंध न करतां त्यांतून निवडक वेचांचें पठण व्हावें.

# युद्धगीतेची जयंती

: : ३५

( मार्गशीर्ष श. ११ )

धर्मयुद्धाची अखंड प्रेरणा देणाऱ्या भगवद्गीतेची आज जयंती आहे. गीता हा ग्रंथ नाही, ती राष्ट्रमाता आहे. तिचा संदेश भारताच्या द्वारां साऱ्या दुनियेसाठी आहे. गीता जेव्हा प्रथम गायिली गेली तेव्हा वर्षांची सुरुवात मार्गशीर्ष महिन्यापासून होत असे. मार्गशीर्षाला वैदिक लोक ' अग्रहायण ' म्हणत असत; आजही गुजरातेतील व उत्तर हिंदुस्थानाच्या खेड्यांतील लोक त्याला ' अग्रहण ' म्हणतात. गीतेत भगवान् म्हणतात की महिन्यांमध्ये श्रेष्ठ महिना जो मार्गशीर्ष तो मी आहे. आणि या महिन्यातही मोक्षदा अष्टादश्याच्या दिवशी गीतामातेचें स्मरण होणें स्वाभाविक आहे. गीतेचें स्मरण झालें की गीतेनें हृदयांत जन्म घेतला म्हणायचा. तिथेंच तिचें मंदिर बांधण्यासाठी आपण गीताजयंती साजरी करतो. गीतामातेसाठी दगडा-मातीचें घर कसलें बांधायचें ? गीतेची स्थापना हृदयमंदिरांतच करावी. गीतेची पूजा तांदूळ, पानें किंवा फुलें यांनीं होणार नाही. गीतेला सगळें जीवन अर्पण केलें तरच तिला संतोष होईल.

गीता सांगते, सुखदुःखाच्या योगानें सहज दडपून जाण्याअितके पोचट होऊं नका, जयपराजयाचेसुद्धां तुम्हांला क्षिति नसावी. जे निश्चयी आहेत, आग्रही आहेत, हट्टी आहेत ते शेवटीं मनांत असलेलें प्राप्त करून घेतातच; म्हणून निर्मळ व्हा, वीर व्हा; दूरच्या यात्रेला निघालेल्या लोकांना वाटेत थंडीहि सहन करावी लागते अन् अन्हाहि सहन करावें लागतें; वाटेत दिवसहि लुगवेल आणि रात्रहि पडेल. यात्रा तर चालविलीच पाहिजे. समर समाजाची अशी जीवनयात्रा व्यक्तिगत स्वार्थासाठीं नसावी, आकुंचित स्वार्थासाठीं नसावी. या यात्रेला निघालेल्या लोकांनीं ' सर्वभूतहितेऱताः ' असलें पाहिजे. त्यांच्या मनांत कोणाविषयी द्वेषभाव तर असतांच कामा नये. गीताधर्मी लोक केवळ ईश्वरालाच ओळखतात. सर्व प्राणी ईश्वराचीच लेकरें असल्यामुळे ते कोणाचा द्वेष करीत नाहींत. त्यांची झोबी केवळ



पाप, अनाचार आणि अत्याचार यांच्याशीच अखंड चालणार. कामरूपी, वासनारूपी दुरासद अशा शत्रूला असहकाराच्या शस्त्राने छेदून ते अविचल पद प्राप्त करून घेणार. या युद्धाचा दीक्षा जे घेतात त्यांच्यासाठी गीताजयंती आहे. धर्मयुद्धाला पाठ फिरवू नये. पाठ फिरविल्याने स्वधर्म आणि कीर्ति या दोहोंचा नाश होतो आणि पदरांत केवळ पाप आणि फजीतीच येऊन पडते. धर्मयुद्धांत गमाविणे असतच नाही. जिंकले तरी धर्माचाच विजय आहे, हरले तरी धर्माचाच विजय आहे !

गीता म्हणते, आपण मूठभर आहोत अशा चिंता कधीहि करू नये.. आपण आपले हृदय अन्नत करावे, आपण इरेष्ट व्हावे. लोक आपोआप आपल्या मार्गे येतात. इरेष्ट माणसांनी जिंकडे प्रयाण केले त्यांच्यामार्गे लोक यायचेंच. आपण आळशी झाले, आपण थांबले तर प्रजेचा नाश केल्याचे पाप आपल्या माथे आहे.

धर्मवीरांचे शिक्षण कसे असावे हेहि गीतेने आपल्याला सांगितले आहे. धर्मवीर इंद्रियांच्या लोभांत फसणार नाही, सुखदुःखांत वाहात जाणार नाही, लाभहानीं-मुळे लुब्ध होणार नाही की दडपून जाणार नाही. तो वीर आहे. ऋषि कामांत तो आपले जीवन अभूषणार नाही. तो श्रीवराचा सैनिक आहे. धर्माची ग्लानि जेव्हा त्याला दिसते, अधर्माचे अभ्युत्थान जेव्हा तो पहातो, तेव्हा भगवान् स्वतः येणार आहेत असा विश्वास ठेवून भगवन्ताचा धर्मसंस्थापनेचा संदेश ऐकण्यासाठी तो सज्ज रहातो; ज्यांची कृत्ये दुष्ट आहेत त्यांच्या बाजूला तो राहात नाही. साधूंच्या रक्षणासाठी तो नेहमी कटिबद्ध राहातो. कर्म करायचें म्हणजे कष्ट आहेत या विचाराने किंवा भीतीने तो कर्माचा त्याग करित नाही. थंडी अन्ही न म्हणतां, लाभहानीचा विचार न करतां, मनांत कसलाहि मत्सर न येऊ देतां. यद्दृष्टेने जें मिळेल तेवढ्यांत संतोष मानून तो लढतच राहातो. मोठा यज्ञ आरंभिल्यानंतर तो जे कांहीं करतो तें यज्ञासाठीच. यज्ञ करून जें अुरेल तेवढेंच खाण्याचा आपला अधिकार आहे हें जाणूनच तें तो घेतील. महाप्रबळ शत्रूला छेदण्यापूर्वी तो आपल्या हृदयांत असलेल्या दुर्बलतेचा आणि संशयवृत्तीचा अुच्छेद करतो. संशयवृत्ति गेली, अविश्वास गेला म्हणजे सहजशरद्धेच्या योगाने तो वज्रकाय होतो. श्रीवराचें कार्य करतांना संशय कसला, चिंता कसली ? धर्मवीर म्हणतो, मी कांहीं करितच नाहीं. तो जशी प्रेरणा देतो तसे मी करतो. आणि यांत मरण आलें तरी काय झालें ? अका

जन्मानंतर दुसरा जन्म यायचाच आहे. या जन्मी चांगलें काम केलें असेल आणि वीराचें मरण मिळविलें असेल तर नवा जन्म आजच्याहून वाढीस तर खात्रीनें मिळणार नाही. चांगलाच मिळेल. श्रीश्वराचें स्मरण कायम ठेवून लढावयाचें आहे. श्रीश्वराचें ध्यान कायम असेल तर अंती श्रीश्वराकडेच जातां येतील.

गीता म्हणते की, लोकांचें जीवन-मरण, कल्याण-अकल्याण काळपुरुष परमात्म्याच्या हातीं आहे. त्याला जसे करायचे असेल तसे होतील. आपण त्याच्या हातांतील निमित्तमात्र वाहुली आहोंत. भूतमात्राचें कल्याण मनांत बाळगून कसलाहि रागद्वेष मनांत न ठेवतां आपण प्रभूचें वचन पाळावें. निर्वैरा राहिलो तरच प्रभूजवळ पोचूं. आपण त्याचें ध्यान धरावें. तो आपला बुध्दार्थ करील.

तमाम दुनियेची सत्ता आणि मुखें आपल्याच हातीं राहावीं अशा आग्रहानें प्रवृत्ति करणारे राक्षस कितीतरी असतात. मौजमजा हें त्यांचें ध्येय अस्ते. त्यासाठीं न्यायअन्यायाचा कसलाहि विचार न करतां ते जगांतील धन खोचानें ओढतात. 'पहा, अितकें आज मला मिळालें, हे माझे मनोरथ आतां तृप्त होतील, अितकें धन माझ्याजवळ आहेच, अितकें मिळेल, अितक्या शत्रूंना मीं मारलें, दुसरेहि मी मारीन, मी जगाचा स्वामी आहे, मलाच भोग भोगतां येतात; सुखसामर्थ्य हें माझेंच आहे, माझी जात सर्वांत श्रेष्ठ, माझ्यासारखा कोणी नाही, जगाचें कल्याण मीच करीन, मी जगाचा पुढारी आहे,'-अशा तऱ्हेचे ते मनांत मनोरे रचीत असतात. असल्या प्रकारचे मनोरथ बाळगणारे, दंभानें जगाला फसविणारे दीनांच्या देहांत वास करणाऱ्या श्रीश्वराचा अपमान करणारे लोक कितीक पडले आहेत.

सैतान या जगाला पचवून बसला आहे ! त्याच्या जागीं श्रीश्वराचें राज्य स्थापन केलें कीं झालें आपलें काम. या अनित्य आणि दुःखपूर्ण जगांत सुख भोगायला कोण बसला आहे ? श्रीश्वराची ही सेवा लाभली आहे म्हणूनच जीवनांत गोडी भरली आहे.

## गीताजयंती

मार्गशीष शु. ११

अर्षा दिवस

हा नवा उत्पन्न केलेला सण आहे. 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्' या वचना-  
वरून हा दिवस नक्की करण्यांत आला आहे. अत्यंत प्राचीन काळीं मार्गशीर्ष  
महिन्यापासून वर्षारंभ होत असे. या दिवशीं संबंध गीतापाठ झाला पाहिजे.  
लो० टिळकांची 'अग्रहायणा' संबंधीची कल्पना आणि ज्योतिःशास्त्रांतील  
अयनचलन या दिवशीं समजावून देतां येतील. गीतेच्या संदेशाचे विवेचन आणि  
श्रीकृष्णाच्या विभूतीविषयीहि चर्चा व्हावी.

हा दिवस थोडासा पायीं प्रवास करण्यांत जर घालविला तर तें अिष्ट आहे. मार्गशीर्ष महिन्यांत फारसे सण नाहींत. पूर्णिमेच्या दिवशीं सकाळीं एका गांवांत स्नान करावें, दुसऱ्या गांवांत ' जाअून जेवावें, आणि तिसऱ्या गांवांत रात्रीचा मुक्काम करावा, असा कार्यक्रम अवधूताप्रमाणें ठेवता येईल.

रिक्स्ती धर्म ही एक प्रकारची गुरुपूजा आहे. म्हणून आज ' Imitation of Christ ' ( ख्रिस्ताचें अनुसरण ) हें पुस्तकहि वाचावें.

शीख लोक हे एकप्रकारें गुरुउपासकच म्हणायचे. त्यांनीं शुद्ध भक्ति आणि सदाचार यांचें मोठें धार्मिक साहित्य आपल्याला दिलें आहे. यांतूनहि आज पारायण करावें; अुदा० जपजी, सुखमनी. यांखेरीज शीख गुरूंनी जो सात्विक बलिदानाचा लोकोत्तर आदर्श साध्य करून दाखविला त्याविषयींच्या गोष्टीहि विद्यार्थ्यांना सांगतां येतील. गुरुपूर्णिमा आणि दत्तजयन्ति या दोन सणांमध्ये शीखसंप्रदाय आणि गुरुभक्ति यांविषयीं पुष्कळ सांगतां येतील.

## ( पौषमास )

पौषमासीं महाराष्ट्रांत एकजण दुसऱ्याला भेटला कीं संक्रान्तीचा तिळगुळ अकमेकाला द्यायचाच. अकमेकाला तिळगुळ देऊन, तिळगुळ घ्या आणि गोड बोला असें आम्ही म्हणतो; कारण तिळांत जेहू आंहे आणि गुळांत गोडी आहे. सर्वःशीं प्रेम आणि गोडी राहावी या संकल्पाची ही निशाणी आहे. वेदामध्ये अक मन्त्र आहे:

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

[ सर्व प्राणी माझ्याकडे मित्राच्या डोळ्यांनीं-स्नेहभावाने-पाहोत; मी सर्व प्राणिमात्रांना स्नेहभावाने पाहतो; आपण सर्वजण स्नेहभावाने पाहू या. ]

या वैदिक मन्त्राचेंच महाराष्ट्रांतील भाविक लोकांनीं असें गमतीचें आणि मिष्ट रूपान्तर केले आहे.

× × × ×

जशी माणसांची माणसांवर छाप पडते तशीच निसर्गाचीहि माणसांवर छाप पडत असते-त्यांच्या शरीरावरच नव्हे तर मनावर, त्यांच्या राहणीकरणीवर, त्यांच्या आदर्शावर, त्यांच्या सामाजिक जीवनावर.

अंखाच्या श्रेष्ठ अथवा पूज्य विभूतीचा जसा आपल्या जीवनावर परिणाम होतो तसाच परिणाम नैसर्गिक घटनांचाहि होतो. कोणा आत्तेष्टांच्या मरणाने जसे आपण हतोत्साह होतो तद्वत् सूर्याचें खग्रास ग्रहण पाहूनहि आपण विमनस्क होत असतो. महायुद्ध आणि दुष्काळ या दोहोंचाहि आपल्यावर सारखाच परिणाम होतो. पुत्तोत्सव आणि वसंतोत्सव यांत सारखेपणा नाहीं असें कोण म्हणेल ? श्रीकृष्णाने कंसावर, रामाने रावणावर, बुद्धाने मारावर विजय मिळविल्याला आज

हजारों वर्षे लोटलीं तरी त्या विजयाचा दिवस जेव्हां पुनःपुनः येतो तेव्हां त्या विजयाचा संदेश आपल्याला पुनःपुनः मिळतो. अन्धाने थंडीवर मिळविलेला विजय प्रभावांत कांहीं यादून कमी प्रतीचा नसतो. दरवर्षी ही गोष्ट होत असली तरी तेवढ्याने कांहीं ती कमी परिणामकारक ठरेल असे नाही. सूर्योदय रोज होतो, तरी सर्व देशांत आणि सर्व भाषांतील कवींना आणि रसिकांना सूर्योदयाची शोभा आणि त्याची अपमा अतसाहृदायकच वाटते.

मकरसंक्रान्ति ही दिवसाचा रात्रीवरील विजय, अन्हाचा थंडीवरील विजय, पृथ्वीचा निद्रेवरील विजय सुचविते. आपाढ महिन्यापासून दीर्घतमा रात्रीचा विजय होत होता, दिवसेंदिवस पृथ्वी कमी होत होती, सर्वत्र अकस्मातची ग्लानि पसरली होती, सूर्याचे किरण कमी होत होते. दीपोत्सव करून आपण कसावसा नव्या वर्षाचा उत्सव साजरा केला; पण थंडीची कठोरता मात्र वाढतच गेली. महात्मा सविता जणू दक्षिणेकडे वंदिवासांतच पडला असावा. तो केव्हां वरं सुटेल ?

आपत्तीलाहि अंत असतोच. सूर्याचे दक्षिणेकडील संक्रमण पुरे झाले आणि उत्तरायणाचा सुरुवात झाली. सवित्याचे किरण जास्ती जास्ती पसरू लागले, दिवसाची पळे वाढू लागली, रात्रीची कमी व्हायला लागली, रात्रीच्या साम्राज्याचा क्षय सुरू झाला अशी चिन्हे स्पष्ट दिसू लागली, आणि महात्मा सविता दक्षिण दिशेच्या बंधनांतून आतां जहर मुक्त होणार अशी खात्री व्हायला लागली. झाले, हा भावी मुक्तीचा आनंद म्हणजेच मकरसंक्रमण.

हे मकरसंक्रमण आपण कसे साजरे करावे ? गंगा नदीच्या तीरी जाऊन पहा. तिकडे असंख्य भाविक लोक गंगेच्या पटावर झोपड्या बांधून कितीतरी दिवसांपासून तेथेच पडलेले आहेत, गंगा-यमुनांचा हिंदुधर्माच्या सरस्वतीशी जेथे संगम होतो तेथे हजारो लोक प्रयागस्नानासाठी येत असलेले मी आत्तांच पाहून आलों आहे. सूर्योदयापूर्वी उठून नामस्मरण करीत आणि भीष्ममाता गंगेचा किंवा धर्मभगिनी यमुनेचा जयजयकार करीत ते स्नानाला जातात. यमुनेत स्नान करणारा काय यमाला भिभील ? गंगेत स्नान करणाऱ्याची दडता काय भीष्मासारखी होणार नाही. प्रयागाचे स्नान म्हणजे निर्भयतेची आणि दडतेची दीक्षाच आहे.

मकरसंक्रमण हा जसा विजयाचा उत्सव आहे तसाच स्नेहाच्या आणि गोडीच्या वृद्धीचाहि उत्सव आहे. तसाच भुकेनें आणि थंडीनें कृषीण झाळेच्या लोकांनीं लांडग्यासारखे अकमेकाबरोबर लढावे यांत नवल नाहीं; पण प्रकाशाच्या आणि समृद्धीच्या वेळीं तें सर्व विसरून गेलें पाहिजे. म्हणूनच हिंदुस्तानांतील अनेक प्रांतांत उत्तरायणाच्या सुरुवातीला तीळ आणि गूळ अकमेकांना देण्याचा रिवाज आहे. हिवाळ्यांत तो अक पैष्टिक घुराक आहे, अकव्याचकरितां नव्हे, तर स्नेह-माधुर्याची वृद्धि सुचविण्याकरितां ( तिळांत स्नेह-संकृतांत ' स्नेह ' म्हणजे तेल-आणि गुळांत माधुर्य आहे. ) सर्व धान्यांत तिळाची उत्पत्ति सर्वांत जास्त असते. म्हणूनच त्याची-प्रेमाची देवघेव कल्याणकारक मानली आहे.

मकरसंक्रांतीच्या दिवशीं अकमेकाला तिळगूळ देऊन अकमेकांच्या जुन्या अपराधांची क्षमा मागण्याची प्रथा जर मनापासून स्वीकारण्यांत आली तर समाजांत अक्य आणि अत्साह अवश्य वाढेल आणि वाढत्या सूर्याप्रमाणें देशाचें सौभाग्यहि वाढेल.

उत्तरायणाचा हा संदेश अन्नतिकारक आहे. स्वराज्याच्या दिवसांत तो आपण विसरून जातां कामा नये.

उत्तरायणानंतर वसन्तपंचमी, त्यानंतर रथसप्तमी करून शेवटीं भोगविलासांना जाळून टाकून संयमधर्म स्वीकारण्यासाठीं हॉलिकोत्सव करायचा असतो. अतुचक्राच्या परिवर्तनांतहि धर्म वास्तव्य करतो. निसर्गाशीं ज्याचा सहकार तुटलेला नाहीं त्यालाच तो प्राप्त करून घेतां येतो.

## मकरसंक्रान्ति

पौष मास

१ दिवस.

मकरसंक्रमणाचा दिवस कोणता हा झगडा यानंतर सुरू व्हायचा आहे. सायन पंचांगवाले डिसेंबरच्या २३ तारखेलाच चिकटून राहातील; आणि सामान्य पंचांगे आपली जानेवारीच्या १३-१४ तारखेपर्यंत वाट पहातील.

मकरसंक्रांतीचा दिवस आपली पंचांगाची पद्धति समजून घ्यायला आणि समजावून घ्यायला अनुकूल आहे. या दिवशी तिळगुळाचा परचार करण्याजोगा आहे. संबंध पौष महिनाभर जरी तीळ खाल्ले तरी बरेच आहे. अुतरत्या हिवाळ्यांत स्निग्ध अन्न पौष्टिक असते. पण मुख्य प्रवृत्ति पतंग उडविण्याची असावी; मात्र त्याचा दोरा स्वदेशी असला पाहिजे. मुलें जर बाजारांतून आयते तयार पतंग घेऊन येतील तर हा सण ठेवण्यांत कांहीं अर्थ नाही. पतंग घरांतच तयार व्हावेत आणि अेकत्र मिळून उडवावेत. पतंग बनविण्याचें अेक विशिष्ट शास्त्र आहे.

अितिहासाच्या आणि समाजशास्त्राच्या रसिक अध्यापकांनं या दिवशी जीवनसंक्रमणावर किंवा राष्ट्रीय संक्रमणावर व्याख्यान दिलें तर तें अेकण्यासाठी तयार राहिलें पाहिजे.

---



( माघ शुद्ध ५ )

वसंतपंचमी म्हणजे अतुराजाचें आगमन.

माघ शुक्ल पंचमीला आपण वसंतपंचमी म्हणतो. पण प्रत्येक मनुष्याची याच दिवशीं वसंतपंचमी असते असें नाही. थंड्या रक्ताच्या माणसाला वसंतपंचमी अितक्या लवकर येत नाही.

वसंतपंचमी हें निसर्गाचें यौवन आहे. ज्याची राहाणी निसर्गाहून भिन्न झालेली नाही, निसर्गाच्या रंगानें जो रंगतो, तो वसंताचें आगमन, न सांगतां अनुभवतो. नदीच्या कृषीण प्रवाहांत अंकाअेकी घोडापूर आलेला जसा आपण पहातो. तसा वसंत येतांनाहि आपल्याला बरोबर दिसतो. मात्र सर्वोच्या हृदयांत अेकाच वेळीं तो प्रवेश करीत नाही.

वसंत जेव्हां येतो तेव्हां यौवनाचा अुन्माद बरोबर घेअून येतो. यौवनांत सुंदरता असते, पण नेहमीं कृषेम असतेच असें नाही. यौवनांत शारीरिक आणि मानसिक स्वास्थ्य संभाळणें फारच कठीण असते, तीच स्थिति वसंताचीहि आहे. ताहण्याप्रमाणें वसंत हाहि लहरी आणि चंचल असतो. घटकेंत थंडी तर घटकेंत अून्ह; घटकेंत कंटाळा तर घटकेंत अुल्लास. गेलेली शक्ति हिंवाळ्यात परत मिळवितां येते, पण हिंवाळ्यांत मिळवलेली शक्ति वसंतांत संभाळणें ही कांहीं सोपी गोष्ट नाही. वसंतांत संथम पाळला गेला तर वर्षभर आरोग्य संभाळतां येअील. वसंतअूतंत प्राणीमात्रावर आकर्षक कान्ति येते, पण ती तितकीच धोक्याची असते.

वसंताच्या अुल्लासांत संथमाची भाषा शोभत नाही, सहनहि होत नाही. पण त्याचवेळीं त्याची अत्यंत जरूर असते. कृषीण झाळेच्या माणसानें पथ्य पाळलें तर त्यांत आश्चर्य तें काय ? त्यांत लाभ तरी कसला ? कसेबसें जगणें यांत काय स्वारस्य ? जतन केलेला वसंत हाच जीवनाचा ' लाहो ' आहे.

वसंत हा अध्व्या असतो. यांतहि निसर्गाचे तारुण्यच प्रकट होते. फुलें आणि फळें कितीक येतात आणि कितीक कोमेजूनहि जातात. जणू काय निसर्ग हिवाळ्यातील कंजुषपणाचा सूडच घेत असावा. वसंतातील समृद्धि ही कांही शाश्वत समृद्धि नव्हे. दिसते तितकें टिकत नाही.

राष्ट्राचा वसंतहि पुष्कळ वेळा अध्व्या असतो. कितीक फुलें आणि फळें मोठी आशा दाखवितात. पण परिपक्व होण्यापूर्वीच करपून गळून पडतात. शरदृतू-पर्यंत टिकतात तीच खरी. राष्ट्राच्या वसंतकालीं संयमाची वाणी अप्रिय असते, पण तीच पथ्यकर असते.

अुत्सवांत विनय, समृद्धीमध्ये मनःस्थैर्य, यौवनांत संयम हेंच सफळ जीवनाचें रहस्य आहे. फुलांच्या सुगंधाची फळांच्या रसामध्ये परिणति होणे यांतच त्याचें सार्थक आहे.

वसंतपंचमीचा अुत्सव शास्त्रकारांनीं निर्माण केलेला नाही, धर्माचार्यांनीं मान्य केलेला नाही. कवींनी आणि गायकांनी, तऱ्हाणी आणि रसिकांनी तो बसविला आहे, कोकिकांने त्याला आमंत्रित केले आहे आणि फुलांनी त्याचें स्वागत केले आहे. वसंत म्हणजे पद्यांचें गाणें, आम्रमंजरीचा सुगंध, शुभ्र अभ्रांची विविधता आणि पवनाची चंचलता. पवन हा तर नेहमीच चंचल, पण वसंतअतूंत त्याची विशेषभावानें क्रीडा चालते. जिकडे जातील तिकडे भरवेगानें जातील, जिकडे वाहील तिकडे भरवेगानें वाहील, जेव्हां गातील तेव्हां भर आवेशानें गातील, नाही तर घटकेंत पडूनहि राहिल.

वसंतापासून संगीताचें नवीन सत्र सुरू होतें. गायक हे अष्टौप्रहर वसंताचे आलाप घेऊं शकतात. ते पूर्वेरात्र पद्मायचे नाहीत की अुत्तर रात्र पद्मायचे नाहीत.

संयम, औचित्य आणि रस या तिहींचा संयोग होतो तेव्हांच संगीताचा प्रवाह सुरू होतो. जीवनांतहि अेकटा संयम स्मशानवत् होतील; अेकटे औचित्य दंभरूप होतील; आणि अेकटा रस व्षणजीवि विलासितेंतच खपेल. तैन्हींचा संयोग हेंच जीवन आहे. वसंतअतूंत निसर्ग आपल्याला रसाचा पूर देतो. अशावेळी संयम आणि औचित्य ही आपली पुंजी असली पाहिजे.

फेब्र. १९२३.

## वसंत-पंचमी

माघ शु. ५

१ दिवस

हा निसर्गाचा सण आहे. शास्त्रांत त्याला स्थान नाही. खरें पाहतां आपल्याला आपल्या मनाला येतील तो दिवस वसंतोत्सवाकरितां नक्की करतां येतील. या दिवशीं सकाळच्या वेळीं सुंदर सफायी करून नंतर संबंध दिवसांत संगीताचे दोन जलसे ठेवणें हेंच अचित वाटतें. ' सफायी ' मध्ये कपडे धुणें, अंथरण, सामान-सुमान वगैरे अन्हांत ठेवणें, घर आंतून बाहेरून साफ करणें, आणि आसपास सर्वत्र स्वच्छ व्यवस्था ठेवणें यांचा समावेश होतो. गाण्याची मैफल अेक सकाळीं नव्ही दहा वाजतां किंवा दोनप्रहरीं दोन वाजतां आणि दुसरी संध्याकाळीं प्रार्थनेनंतर, अशी ठेवली तर भिन्न भिन्न वेळचे राग चांगल्या प्रकारें गातां येतील आणि अेकसारखा ताण पडणार नाही. आणि भरपूर उत्साह असेल तर अेक जलसा आणि अेक नाटक असेंहि ठेवतां येतील. आपल्या उत्सवामुळे दिवसाच्या मुख्य कार्यक्रमांत गवय तर फेर पडूं देतां नये.

# मंगलमूर्ति भीष्म

: : ३९

( माघ शु. ८ )

आज भीष्माष्टमीचा पवित्र दिवस आहे. भारतीय युद्धानंतर बाणांची सख्या करून अर्ुतरायणाची वाट पहाणाऱ्या आणि दरम्यानच्या काळांत मानवजातीला धर्माची प्रतिष्ठा संभाळील अशा राजनीतीचा उपदेश करणाऱ्या अखंड ब्रह्मचारी भीष्माचार्याचा हा पुण्यदिवस आहे.

महाभारताच्या मंगलमूर्ती तीन : भीष्म, कृष्ण आणि व्यास. या त्रिमूर्तीतहि प्रधान स्थान भीष्माचेंच. कृष्णाचें विभूतिमत्त्व दिव्य असल्यामुळे त्याला भव्य नाही म्हणतां येणार. व्यास अखाद्या बानप्रस्थापरमाणें दूरदूरच राहातात. समस्त महाभारतावर आपली मंगल छाया पसरविणारे अकटे धर्मात्मा भीष्म हेच होत. ते सागरारखे गंभीर, हिमालयासारखे अतुंग-पंचड आणि अनन आकाशाअितके शांत, निर्मळ आहेत.

भीष्म हे कृष्णाच्या अुत्तम भक्तांपैकीं अेक आहेत.

परह्लाद-नारद-पराशर-पुण्डरीक-

व्यासाम्बरीष-शुक-शौनक-भीष्म-दाल्भ्यान् ।

स्वभांगदार्जुन-वसिष्ठ-विभीषणादीन्

पुण्यान् इमान् परमभागवतान् स्मरामि॥

अशा रीतीनें ज्या ज्या परमभागवतांचें रोज सकाळीं अुठून आपण स्मरण कातो त्यांच्यामध्येहि भीष्मांचें स्थान वेगळेंच आहे. अिनर भागवत भगवंताच्या आधीन राहून त्याच्या प्रेरणेला अनुरूप असें वर्तून ठेवतात. भीष्मांच्या नशीब! आपल्या परमप्रभूला अखंड विरोध करणेंच आले. आणि तसें असूनहि त्यांची विरोधभक्ति मात्र नव्हती.

भीष्म आणि कृष्ण यांचा राष्ट्रपुरुष म्हणून विचार करतानाहि त्यांचा आत्यंतिक स्वभावभेद स्पष्ट दिसून येतो. दोषेहि धर्मनिष्ठ, धर्मआपराधणहि

धर्मकार; परंतु दोघांचे जीवनतत्त्वज्ञान अगदीं भिन्न. भीष्मांचें जीवनतत्त्व बह्वंशीं प्रभु रामचंद्रांच्या जीवनतत्त्वासारखें आहे. दोषेहि मर्यादापुरुषोत्तम, स्वतःला धर्मपरतंत्र मानणारे आणि धर्म पालनासाठीं कसलाहि त्याग शीतलवृत्तीनें करणारे. मनुष्यजातीला अुदाहरण घालून देणारे हे दोषेच. यांच्या दुसऱ्या बाजूला कृष्ण जसा प्रतिष्ठाभंजक तसाच मर्यादाभंजक, धर्ममार्गातील प्रत्येक नियमाला अपवाद कसा असू शकतो, हे दाखविण्यासाठींच जणू त्यांनें अवतार धारण केला होता. बंकिमचंद्रांनी कृष्णाचें अेक चरित्र लिहिलें आहे. चरित्र नव्हे, कृष्णावर घेतलेल्या आक्षेपांचें अेक मोठें खंडनच आहे तें. न्यायनिपुण लोक आपलें बुद्धिसर्वस्व खर्च करून श्रीकृष्णाची बाजू न सांवरतील तर त्याच्या अेकाहि कृत्याची योग्यता ध्यानीं यायची नाहीं. हालानें पिचत पडलेल्या वासरांला मरणाच्या स्वाधीन करून जसें गांधीजींनी अहिंसाधर्माचें पालन केलें, असेंच कांहींतरी करून प्रत्येक खेपेला श्रीकृष्णांनी धर्मपालन केलें असावें असा भास होतो. धर्माच्या सिद्धांताच्या मुळाशीं जाऊन त्याच्या तत्त्वार्थ-पालनासाठीं शब्दार्थांला विरोध कसा करावा याचाच श्रीकृष्णानें अभ्यास केला असला पाहिजे.

देवव्रतानें (भीष्माचार्यांनीं) भरज्वानींत अेक भीष्मप्रतिज्ञा करून राज्याचा आणि स्त्रीचा त्याग केला. या अेका प्रतिज्ञापालनासाठीं त्यांनीं चोहोंबाजूंनी आपली हानि होअूं दिली. प्रतिज्ञापालनाचें प्रयोजन संपलें तरीसुद्धां त्यांनीं ती प्रतिज्ञा सोडली नाहीं. आणि त्याचें नशीब तरी किनी विचित्र. त्यांनीं राज्याचा स्वीकार केला नाहीं तरी पण त्याचा सारा भार मात्र त्यांनाच वाहावा लागला. भावाभावांमध्ये झगडा होअूं नये म्हणून त्यांनीं लग्न टाळलें परंतु त्यांना कितीतरी वियोग आणि कितीतरी लग्नें लावावीं लागलीं. फार काय सांगावें? स्वयंवरांत भाग घेऊन त्यांनीं यौवनसंपन्न मुलींनाहि जिंकून आणलें? आणि भावाभावांमधील जो झगडा टाळण्यासाठीं त्यांनीं अखंड ब्रह्मचर्य स्वीकारलें त्याच झगड्यापायीं आपल्या अिच्छेविरुद्ध असत्पक्षाच्या बाजूनें लढून आणि लाखो लोकांचा संहार करून त्यांना स्वतःचे प्राण अर्पण करावे लागले! भीष्म-प्रतिज्ञा हीं जशी जगताला आदर्शभूत आहे तसें त्यांचें ब्रह्मचर्यहि तितकेंच अलौकिक आहे. या ब्रह्मचर्याच्या बळावर ते परमज्ञानी, परमसमर्थ आणि धर्मज्ञ झाले अितकेंच नव्हे तर अिच्छामरणीहि झाले. परंतु त्यांच्या या प्रतिज्ञेचा कौरवकुळाला किंवा आर्यसंस्कृतीला काय लाभ झाला? कांहीं नाहीं तरी निदान आपण सत्याप्रीत्यर्थ युद्ध करीत आहों अेवढें तरी समाधान

त्यांना मिळायला पाहिजे होते. राज्यावरील हक्क सोडून ते राजाचे सेवक झाले. आपली सर्व अिमानदारी त्यांनी सिंहासनाला अर्पण केली; जें मी घेतों तें या गादीचें अन्न आहे, गादीची जी आज्ञा होईल ती शिरसाबंध मानली पाहिजे, अशी सनदशीर वृत्ति त्यांनी धारण केली. खरेखर भीष्मासारखा तंत्रवादी (Constitutionalist) दुसरा कोणी झाला नसेल. परंतु, तंत्रालाच देव समजून वागल्यानें त्यांनीं राष्ट्रहिताचा मात्र सत्यानाश केला.

X

X

X

X

महाभारतांतील धर्मधुरंधर दोनः श्रीकृष्ण आणि भीष्म. श्रीकृष्णाचा उपदेश भगवद्गीतेत सामावला आहे. भीष्मांचा उपदेश अेकत्र केलेला मिळत नाही. त्यांचा प्रसिद्ध राजधर्म शांतिपर्वीत आहे. पण भीष्मांनी आपल्या शिकवणीचें सार देह सोडण्याच्या वेळी तीन ओळींतच दिलें आहे. महाभारताने भीष्माचार्यांचें अिच्छामरणी असें वर्णन केले आहे. राजा युधिष्ठिराला जेवढें सांगायचें होतें ते सर्व भीष्मांनी सांगून टाकलें. त्या नंतर भगवान् श्रीकृष्णाकडे वळून देह सोडण्याची भगवंताकडून अनुज्ञा मागितली. पितृभक्त आणि निष्पाय भीष्मांना श्रीकृष्णाने अनुज्ञा दिली. सारे पांडव पितामहांच्या आसपास गोळा झाले. त्यावेळी त्यांना आणि त्यांच्या द्वारा सर्व भारतवासीयांना भीष्माचार्यांनी खालील वचनें सांगितलीः

प्राणानुत्सृष्टमिच्छामि तत्रानुज्ञानुमर्हसि ।

सत्येषु यत्तितव्यं वः सत्यं हि परमं बलम् ॥

आनृशंस्यपरैर्भाव्यं सदैव नियतात्मभिः ।

ब्रह्मण्यैर्धर्मशीलैश्च तपोनित्यैश्च भारताः ॥

“सत्याकरितां निरंतर प्रयत्न करा. सत्य हेंच परमबल आहे, सदादिन स्वतःच्या मनावर, हृदयावर ताबा ठेवून दयाभाव अंगी वाणवून घ्या. दृष्ट वृत्तीला वश होवूं नका. प्रजेला शिक्षण देणाऱ्या वर्गाचें नेहमीं पोषणक रीत राहा. धर्माच्या प्रेरणेप्रमाणे चाला; आणि आपली सगळी शक्ति कमावीत राहा. ”

आजसुद्धां भारतवासीयांना दुसरा उपदेश काय असणार ?

—

## भीष्माष्टमी

माघ शु. ८

१ समय

हा जुदा सण जवळजवळ विसरला गेला होता. कित्येक ठिकाणी त्याचे पुनरुज्जीवन होऊं लागले आहे. आपल्याभिकडेहि तसा प्रयत्न झाला पाहिजे. भीष्म ब्रह्मचारी, दृढव्रत, भगवद्भक्त आणि नीतिज्ञ होते. महाभारतामधून भीष्मांच्या चरित्राचे सार काढून हा गंगाप्रसाद विद्यार्थ्यांना द्यावा-विशेषकरून कर्ण आणि भीष्म यांचा संवाद अवश्य द्यावा. हा दिवस शुद्ध सात्त्विक आहार घेऊन प्रार्थना-पूर्वक ब्रह्मचर्याचे व्रत घेण्याचा आहे. हा सण जर समाजांत मूळ धरील तर त्यांत आणखी पुष्कळ भर घालतां येण्यासारखी आहे. आदर्श ब्रह्मचाऱ्यांची नामावली तयार करून त्यांचीं चरित्रे या दिवशीं सांगावीं. अुदाहरणार्थ रामकृष्ण परमहंस आणि शारदादेवी, ओशु, शुकदेव, योगवासिष्ठांतील चुडाला, हनुमान, वनवासी लक्ष्मण, रामदास इत्यादि.

या दिवशीं लाठी, कवायत आणि संघऱ्यायाम ठेवतां येतील.

# समर्थ संत

: : ४०

माघ व० ९

१ दिवस.

लोकसंग्रह हा रामदासांचा धर्म होता. जनतेतील धर्मवृत्तीपासून धर्मतेज कसे उत्पन्न करावे याची त्यांनी अखंड काळजी वाहिली. ब्रह्मचारी आणि गृहस्थाश्रमी असे दोन प्रकारचे सेवक त्यांनी तयार केले, आणि संस्था कशा चालवाव्यात याचे बाळकडू त्यांनी महाराष्ट्राला दिले.

आखाडे, मास्ती, मठ आणि भिक्षा या त्यांनी स्थापन केलेल्या चार संस्था; मर्यादापुरुषोत्तम रामाची अुपासना हा त्यांचा युगधर्म. रामदासांचे कार्य म्हणजे संन्याशाचा विराट् संसार.

रामदासांचे मिशन अशाप्रकारचें असल्यामुळें लग्नापासून जीव घेऊन पळ काढणाऱ्या या ब्रह्मचाऱ्याला शिष्यिणी कराव्या ठागल्या आणि लोकांप्रवादि सहन करावा लागला. इतर संतांनी सदाचाराचा प्रचार केला. रामदासांनी सदाचारी लोकांचे संघटन केले.

शिवाजीच्या अतिहासांत रामदासांचे आणि रामदासी संप्रदायाचे स्थान कोणते आहे या विषयाच्या चर्चेनें भलते रूप धारण केल्यानें रामदासांचा बराचसा कार्यभाग वर्तमानकाळीं नासला आहे. एका बाजूनें अतिशयोक्ति झाली म्हणजे दुसऱ्या बाजूनें तितकाच निकराचा आणि आंधळा प्रतिकार करणें हा आपल्या महाराष्ट्राचा स्वभावगुण आहे. त्याची मीमांसा करून तो दूर करण्याचा उपाय शोधणें हा दासनवमीचा प्रधान कार्यक्रम ठरविला पाहिजे. ' वारकरी आणि धारकरी ' असा वाद माजविणें म्हणजे रामदासांचा खून करून त्याच जागीं इतर संतांचा बळी देणें आहे

रामदासांच्या कार्यांत धर्मांतराला आळा घालण्याचा अेक भाग असल्यानें त्यांनी वर्णाश्रमाच्या रुढीला, जातीभेदाला आणि कांहीं अंशीं अस्पृश्यतेला अुच दून



धरलें असेल. पण तेवढ्यामुळे त्यालाच महाराष्ट्रधर्म समजणें म्हणजे रामदासांना न जाणणें आहे.

दासनवमीच्या दिवशीं दासबोधाचें पारायण न ठेवतां त्यांतोळ निवडक वेच्यांचें वाचन झालें पाहिजे. अखाद्या ग्रंथाचें पारायण म्हणजे त्याचें मारण आणि अुच्चाटण आहे. अर्थाकडे ध्यान न देतां अतिशय वेगानें अमुक वेळांत तो ग्रंथ ओढून काढणें आणि नंतर सावकाशीनें प्रसादाचें भक्षण करणें याचें नांव पारायण अशी स्थिति झाली आहे. या प्रकारानें पाप वाढत नसलें तरी पुण्यसंचय खात्रीनें होत नाहीं.

मनाच्या श्लोकांचा नित्यपाठ महाराष्ट्रांत शिथिल झाला आहे. ' मनाचे श्लोक ' ही समर्थीची मुख्य शिकवणूक आहे. तिचा नित्यपाठ पुनः जागृत केला पाहिजे. हा सत्पुरुषधर्म पुनः जागृत झाला तरच आपल्या समाजाचा अुद्धार होऊंल.

दासनवमीच्या दिवशीं आखाड्याच्या अुत्सवाबरोबर बालचर, बालचमू आणि व्रतचारी वगैरे संस्थांचे अुत्सवसुद्धां केले पाहिजेत.

रामदासांची भिक्षा आज मुष्टिफंडाच्या रूपानें नवा अवतार घेऊं शकते. मुष्टिफंडांतल रहस्य हे आहे कीं, अधिक दिलें असतां तें घेऊं नये. ज्याप्रमाणें सर्वांचें अुत्पन्न सारखें असलें पाहिजे अशी अेक कल्पना आहे त्याचप्रमाणें गरीबांच्या मदतीनेंच चालणारीं समाजहिताचीं कामें करावयाचीं असतील तर सर्वांवर भार सारखा पडावा. अेखाद्याचा अुत्साह जास्ती आहे अेवढ्यासाठीं त्याच्यावरच सगळा भार पडूं नये, अशी कल्पना नियमाच्या मुळाशी आहे.

आपल्या प्रांतांत टिकटिकाणीं मुष्टिफंड सुरू होऊन बंद पडले आहेत याचें कारण मुष्टिफंडाच्या प्राप्तीच्या मानानें श्रम अधिक पडतात. प्रारंभिक अुत्साह शेवटपर्यंत टिकत नाहीं ( पण जीं कामें अखंड चालावयाचीं आहेत त्यांना शेवट अमा नसतोच ). आणि मुष्टिफंडाच्या जोरावर जीं कामें हातीं घेतलीं जातात तीं केवळ मुष्टिफंडाच्या अुत्पन्नांतूनच चालणारीं असलीं पाहिजेत, ही मर्यादाहि ध्यानांत घेतली

जात नाही. मुष्टिफंड मागण्यासाठी शाळेंतील मुलांना वापरणे ही मोठीच चूक आहे. ज्यांनी जीवनरहस्य ओळखले आहे आणि ज्यांनी स्वार्थत्यागपूर्वक देशसेवा करण्याचे व्रत घेऊन दीक्षित जीवन पसंत केले आहे अशांनीच मुष्टिफंड मागावा. शाळेच्या मुलांना भिक्षा मागावयास लावले असता त्यांचा तेजोबध होतो.

वारकऱ्यांच्या तत्त्वज्ञानाला कंटाळून राष्ट्रीय वृत्तीच्या रजोगुणी लोकांनी रामदासी संप्रदाय चालविण्याचे घातले होते. पण त्यांतील तत्त्व ओळखून व ते संभाळून त्यांत कालोचित रूपांतर करण्याची कला त्यांचेजवळ नसल्याने भुताप्रमाणे सुलब्ध पायांनी पुढे जाण्याचा प्रयत्न त्यांनी केला. जिवंत शरीरांत ज्याप्रमाणे हळूहळू जीवनानुकूल फेरबदल होत असतात त्याचप्रमाणे सामाजिक संस्थांतहि झाले पाहिजेत.

रामदासी संप्रदाय महाराष्ट्रांत चांगलाच रुजला होता. आधुनिक धर्मपरायण राष्ट्रसेवक हे त्या संप्रदायाचे उत्तराधिकारी आहेत. पण समर्थभक्तांमध्ये समाजशास्त्राचे आकलन नसल्याने आणि राष्ट्रसेवकांमध्ये धर्माचे भव्य दर्शन नसल्याने अष्ट कार्य घडून आले नाही.

१९-१२-३९

# महाशिवरात्र

: : ४१

( माघ वद्य १४ )

१

( अेक पत्र )

...तुम्ही आज महाशिवरात्रीचा सण करा प्रकरें! घालवीत असाल याचाच विचार सारखा मनांत येत आहे. शिवरात्रीचा सण हा उत्सव, नसून व्रत आहे. शिवरात्रीचा सण शैवसंप्रदायी मानला जातो म्हणून वैष्णव त्याविषयी छुदासीन असतात. हा शैव-वैष्णवाचा भेद अेके काळीं आपल्या देशांत बराच तीव्र होता. माणसांत जेवर भांडणाची वृत्ति आहे तेावर वाटेल तो भेद पुढे करून तो भांडेल. थेट दक्षिणेकडे शैव-वैष्णवांनी जुन्याकाळीं परस्परांचे रक्त कांहीं थोडे नाही वाहविले !

शिवरात्रीचे माहात्म्य तुम्हां सर्वांना माहीतच आहे. 'हरणांचे संस्मरण' याविषयी तुम्हीं वाचले अेकले आहेच. वचन पाळण्याचा निर्धार, मातृवात्सल्य आणि दुसऱ्यासाठी स्वात्मार्पण हा बोध तुम्ही या गोष्टीतून घेतलाच असेल. पण दुसऱ्या अेका दृष्टीने शिवरात्रीचे महत्त्व मला स्फुरत आहे.

आपल्या धर्मांत जीवदयेचा बोध अेका सर्वोच्च आणि शुद्ध भूमिकेवरून केला गेला आहे. तिर्यश्च अर्थात् मनुष्येतर प्राणी हेहि श्रीश्वरावीच लेकें आहेत. श्रीश्वराच्या हृदयांत आपल्या अितकेच त्यांच्याविषयीहि वात्सल्य वसत आहे. मूक पशुपक्ष्यांनाहि आपल्यासारख्याच भावना असतात. त्यांना दुःखी करणे हा अधमपणा आहे. पशूंना पीडा दिल्याने अश्वर विशेष नाराज होतो हा बोध आपल्या धर्मांत अनेक सुंदर आणि परिणामकारक रीतींनी केला गेला आहे. पशू दयापात्र नसून आपल्या प्रेमाचे अधिकारी आहेत हा आपला धर्मसिद्धांत आहे. जीवदया नव्हे तर जीवमात्राविषयी आत्मौपम्य-प्रेम ही भावना आपल्या धर्माला मान्य आहे, अभीष्ट आहे.

जीवप्रेमाचा पहिला पक्षपाती म्हणजे आपला वाल्मीकी. त्याने रामायणांतील गोष्टीत देव, राक्षस, माणसे यांच्याबरोबर पशुपक्षांनाही सारखेच स्थान दिले आहे. तिर्यग् योनींताहि वीर, मुत्सद्दी, साधू आणि प्रेमसेवक असतात याविषयी-जणू आपण कांहीं नवीन गोष्ट सांगत नाही, स्वाभाविकच लिहीत आहो अशा पद्धतीने- वाल्मीकीने गान केले आहे. भक्तशिरोमणि हनुमान, अग्रशासन, सुग्रीव, आर्तत्राण जटायु आणि सेतुपति जांबुवान यांच्यविषयी मनांत दयाभाव उत्पन्न होत नाही, आदरभावच अद्भुततो. ते पशुपक्षी आहेत ही गोष्टहि आपण विसरून जातो. अतिका समभाव हाच जीवप्रेमाचा खरा पाया आहे.

वसिष्ठ आणि कामधेनु, दिलीप आणि नंदिनी, मुंगूस आणि राजसूय यज्ञ, गज-गराह, वेदांतील सरमा आणि चोरी करणारे पणी लोक (फेनीशिअन्स), धर्मराजाचा श्वान, दमयंतीचा हंस, नळ आणि कर्कोटक, भगवान् मनुळा वांचवणारा मत्स्य, रामाला मदत करणारी खार-असे अक न दोन असंख्य प्रसंग आपल्या धर्मग्रंथांतून वर्णन केलेले आहेत, त्यामुळे प्राण्यांविषयी समभाव दृढ होतो. आपले कित्येक अवतारसुद्धां मनुष्येतर आहेत. जातककथा, पंचतंत्र, हिनोपदेशांतील गेष्टी या सर्व याच दिशेने काम करतात. 'हरणांचे संस्मरण' सुद्धा आपल्यांत मनुष्येतरांविषयी प्रेम आणि समभाव उत्पन्न करते.

तेव्हा शिवरात्रीच्या दिवशी आपण काय करू या ? सिद्ध्या म्हणेल गोरक्षणासाठी १००० वार सूत कातू या. किशोरलालभाऊ म्हणतील, आपल्या आश्रमांत विनवारी कुर्ती आहेत त्यांना आपण कां आपलेसे करू नये ? प्रत्येक कुट्याला जर आपला म्हणून आपल्या ग खायला घालणारा कोणी आहे असे वाटू लागले तर तो आर्य बनेल आणि नालायक कुट्यांना येथे येथू देणार नाही. डाव्याभाऊ म्हणतील की प्रथम गाडीत शक्य तर न बसण्याचा आणि ओझे कमीन कमी ठेवण्याचा नेम जर आपण पाळू तर जीवप्रेमाचे सार्थक होईल. मगनलालभाऊ म्हणतील मुले कुट्यांच्या मार्गे लागून त्यांना मारतात तेवढे बंद केले म्हणजे पुष्कळ झाले. ठाकोरभाऊ म्हणतील खोल्या स्वच्छ ठेवून त्यांत जाळी होअूच न देणे हे जीवदयेचे सुंदर अंग आहे. माझ्यासारखा म्हणेल की रात्री नदीच्या पाण्यांत पडून आंत निजलेल्या माशांना त्रास नाही दिला म्हणजे शिवरात्रीच्या

परसंगी माशांना शिव-रात्रि होतील. शंकर म्हणेल अनुद्धाळ्यांत चिमण्यांच्यासाठी प्यायला पाणी ठेवणें हें अगत्याचें आहे. प्रत्येक प्रस्तावांत कांहींना कांहीं सौंदर्य आहे, आणि हे सारेच नियम आश्रमजीवनांत शोभण्यासारखे आहेत.

मग शिवरात्रीचें स्मरण करून तुम्ही कोणता नेम घेता बोला ! हें काम प्रेमाचें आहे आणि प्रेमानेंच करायचें आहे. हें व्रत जाहीर करण्याची आवश्यकताच आहे असें नाही. आपली निवड करावी आणि त्याप्रमाणे अनुत्साहपूर्वक चालू लागावे.

## २. हरणांचें संस्मरण

अेक विशाल अरण्य होतें. वीसवीस तीसतीस कोसपर्यंत माणसाची झोंपडी कीं प्रवाशाची कामचलाऊ चूलहि कुठें आढळायची नाही. त्या अरण्यांत अेका रमणीय तलावाच्याजवळ कित्येक हरणें राहात असत. तलावाच्या कांठीं अेक बेलाचें झाड होतें. या झाडाखाले पाषाणरुपानें महादेव वास करीत होतें. हरणें रोज तलावांत स्नान करायचीं. महादेवाचें दर्शन घ्यायचीं आणि चरायला जायचीं. दुपारां येऊन बेलाच्या सावलींत विश्रांति घ्यायचीं, आणि संध्याकाळीं तलावाचें पाणी पिऊन महादेवाचें दर्शन घेऊन झोपून जायचीं. कोणत्याहि शास्त्रानें अध्ययन न करतांच हरणांना धर्माचें ज्ञान झालें होतें, त्यामुळें तीं संतोषपूर्वक आपलें निर्दोष जीवन घालवात होती.

माघ महिना होता; कृष्णपक्षांतोळ चतुर्दशी. अेक भयंकर पारधी त्या वनांत शिरला. नुकतीच संध्याकाळ झाली होती. पारध्याला भूक फार लागली होती. पारध्याची भूक म्हणजे सामान्य नव्हे. दुसरें कांहीं मिळालें नाहीं तर कच्चेव्या कच्चे मांससुद्धां दाढेखालें रगडून तो खातील. पण या आपल्या पारध्याला स्वतःच्या भुकेचें दुःख वाटत नव्हतें. घरांत कच्चीबच्चीं भुकेली आहेत, त्यांना काय देऊं ? कोणत्या तोंडांनं घरीं जाऊं ? शिकार नाहीं मिळाली तर रित्या हातांनीं घरां जाण्यापेक्षा रानांतच रात काढावी; कदाचित् कांहीं हातीं लागेलहि. असा विचार करीत तो तलावाजवळच्या बेलावर चढून बसला.

आपल्या कच्च्याबच्च्यांचे भरणपोषण करण्यासाठी स्वतः कष्ट सांसावे आणि जीव धोक्यांत घालावा अंदाज आपला धर्म असे तो मानीत होता. याहून व्यापक, धर्माची त्याला जाणीव नव्हती.

रात्र झाली. कृष्णपक्षातील काळीकुट्ट रात्र. डाळ्यांत घोट घातले तरी दिसायचे नाही. पारध्याने तलाव दिसावा म्हणून आड येणारी बेलाची पाने तोडून खाली फेकून दिली. अितक्यांत दोन चार हरणे पाणी पिण्यासाठी जवळ आली. झाडावरोल पारध्याला पाहून ती चपापली; आपण आतां वांचत नाही अशी त्यांची खात्री झाली. निराश स्वर्णने ती बोलली: ' भो भो व्याध, आपल्या धनुष्यावर बाण चढवू नकोस. आम्ही मरायला तयार आहोत, पण घरी जाऊन आमच्या मुलांवाळांना आणि आप्तेष्टांना भेटून येण्याअितका वेळ आम्हांला दे. सूर्योदय होण्याच्या आंत आम्ही येथे येऊन हजर होऊं. '

पारधी खदखदा हंसला. ' तुम्ही काय मला मूर्ख समजतां आहां ? अशी हातांत सांपडलेली शिकार मी घालवू होय ? माझी मुलेंबाळें भुकेनें तडफडत आहेत तीं ? '

'आम्हीपुद्द्यां तुझ्या मुलांवाळांसारखीच आमच्या मुळांवाळांची आठवण करून तुझी परवानगी मागत आहों. आम्ही वचन पाळनें कीं नाहीं याची ऐकवार परीक्षा तर पहा. '

पारध्याच्या मनांत शरद्धा आणि कौतुक अत्पन्न झालें. बरोबर सूर्योदयाच्या अगोदर येण्याची पुनः ताकीद देऊन त्यानें हरणांना परवानगी दिली आणि बेलाची पाने तोडीत तोडीत त्यानें झाडावरच ती रात्र काढली. शरद्धायुक्त पारध्याच्या हातांतून आपल्या डोक्यावर पडलेल्या बित्त्वदलांनी महादेव संतुष्ट झाले.

अगदीं सूर्योदयाची वेळ झाली, आणि हरणांचा एक मोठाचामोठा कळस तेथे येऊन दाखल झाला. तीं हरणे घरीं गेलीं, मुलांवाळांना भेटलीं, आपापल्या शिंगांनी त्यांनीं अक्रमेकांना खजविलें. अगदीं छोट्यां छोट्यां पाडसें होतीं त्यांना गेटभर चाटून घेतलें, घडलेली हकिकत सर्वांना सांगितली आणि त्यांचा निरोप मागितला.

'अरे, दुष्ट पारध्याला दिलेलें वचन कसलें पाळायचें ? शंभे प्रति शाक्यं कुर्यात् । पायांत जितका जोर असेल तितका उपयोगांत आणून येथून मुकाट्यानें पळून जा.-' अशी सल्ला देणारें त्यांत कोणी निघालें नाहीं. आप्तेष्ट बोलले:

‘चला, आम्हीहि तुमच्याबरोबर येते. स्वेच्छेने मरण पत्करल्याने मोक्ष मिळतो. तुमचा अपूर्व आत्मयज्ञ बघून आम्ही पावन होऊं.’

मुलंबाळें बरोबर निघाली. पारध्याच्या हिंसकपणाची कसोटी घेण्यासाठीच जणू सारेजण निघाले असावेत !

सूर्योदय होण्यापूर्वीच हा कळप येथून दाखल झाला. रात्रीची हरणे पुढे आली आणि म्हणाली: ‘चल बाबा, आम्ही वधासाठी तयार आहो.’ दुसरी हरणेहि म्हणाली ‘आम्हांलाहि मार. तुझ्या मुलांबाळांची भूक तरी शमू दे.’

पारध्याची हिंसावृत्ति रात्रीप्रमाणेच नाहीशी झाली. संबंध दिवसाचा अपवास आणि संबंध रात्र जागरण यांमुळे त्याची वृत्ति अंतर्मुख झालीच होती. त्यांतहि या प्रतिज्ञापालक हरणांचे धर्माचरण पाहून तर तो चकितच झाला. त्याच्या हृदयांत नवीन प्रकाश पडला. प्रेमशौर्याची दीक्षा त्याला मिळाली. तो झाडाखाली सुतरावा आणि हरणांना शरण गेला. दोन पायांच्या माणसाने चार पायांच्या पशूंचे पय धरले. आकाशांतून श्वेतपुष्पांची वृष्टि झाली. कैलासाहून मोठे विमान उतरले, त्यांत पारधी आणि हरणे बसली आणि कल्याणकारी शिवरात्रीचे माहात्म्य गात गात शिवलोकाला गेली. आजहि ती आकाशांत दिव्य रूपाने प्रकाशत आहेत. ÷

महाशिवरात्रीचा दिवस म्हणजे या धर्मेनिष्ठ सत्यव्रती हरणांच्या स्मरणाच दिवस. ✕  
मार्च, १९२२

÷ मृगनक्षत्र आणि व्याघ्र.

✕एकादशी, अष्टमी, चतुर्थी, शिवरात्र हे सर्व हिंदु महिन्यांत नेहमी येणारे सण आहेत. एकादशी ही वैष्णवांनी लोकप्रिय केली आहे; गणपतीचे अुपासक विनायकी आणि संकष्टा चतुर्थीचे व्रत करतात; देवीचे उगासक अष्टमीचे व्रत आचरतात. शिवरात्र ही दरमहिन्याला कृष्णपक्षांतील चतुर्दशीच्या दिवशा येते. शैव लोक शिवरात्र करतात. एकादशीत जशा आषाढी आणि कार्तिकी एकादशी या महा-एकादशा तशीच माघ महिन्यांतील शिवरात्र ही महाशिवरात्र.

महिन्यांतील प्रत्येक सणाचे माहात्म्य आणि त्याविषयी अेक कथा असतेच. त्यांत महाशिवरात्रीची कथा वरीलप्रमाणे आहे .

कथेच्या या पुरातन क्षेत्राकडे लोककथांचा संग्रह करणाऱ्या संशोधकांचे लक्ष वेळे पाहिजे .

## महाशिवरात्र

माघ वद्य १४

अर्धा दिवस

हा सण अपरिग्रहाचा आणि भूतदयेचा आहे. महाशिवरात्रीच्या दिवशीं अेकठ्या शिवउपासकांनीच नव्हे तर सर्वोनी जर उपवास केला, आणि आपल्या जीवनकरमांतून अनावश्यक वस्तूंचा त्याग किती होअूं शकेल याचा विचार केला तर फार चांगले. आपला सर्वांत मोठा परिग्रह म्हणजे लोभ आणि आळस हा होय तो कमी व्हावा असा कांही अिलाज शोधून काढण्यापार्थी जर आज थोडासा वेळ खर्च झाला तर तो अिष्ट आहे. अपरिग्रही महादेवाच्या दर्शनाला जाण्याची चाल तर चालू ठेवण्यासारखी आहेच. महादेवाच्या घरीं सर्वदा मुक्तद्वार असतें. शिक्षकांनीं या दिवशीं महादेवाची अेखादी चांगली धर्मबोधक गोष्ट मुलांना सांगावी. महादेवाला आन्याचा मोहोर काढून वाहातात हें चुकीचें आहे असें कारणें दाखवून समजावून दिलें पाहिजे.

‘हरणांचें संस्मरण’ हा माझा लेख शिवरात्रीचें माहात्म्य दाखवितो.



## राष्ट्रमाता कस्तुरबा

: : ४२

म. गांधीसारख्या थोर पुरुषाची सहधर्मचारिणी म्हणून पु० कस्तुरबांविषयी राष्ट्राला आदर वाटणे स्वाभाविक आहे. दरवर्षी किंवा वेळोवेळी काँग्रेसचे राष्ट्रपती बदलतात. पण राष्ट्राने महात्माजींना 'वापूजी' या नांवाने राष्ट्रपित्याच्या स्थानी कायमचें स्थापिलें आहे. आणि म्हणूनच कस्तुरबा या 'बा' या अकाव्शी नांवाने राष्ट्रमाता झाल्या आहेत.

पण महात्माजींच्या संबंधामुळेच नव्हे तर स्वतःच्या आंतरिक सद्गुणांच्या आणि निष्ठेच्या परिणामामुळे देखील कस्तुरबा राष्ट्रमाता झाल्या आहेत. दक्षिण आफ्रिकेत काय आणि हिंदुस्थानांत काय, सरकारशी लढा देतांना जेव्हां जेव्हां चारित्र्याची, तेज प्रकट करण्याची पाळी आली तेव्हां तेव्हां कस्तुरबा त्या दिव्यांतून यशस्वी रीतीने पार पडल्या आहेत.

आणि त्याहुन विशेष म्हणजे आर्थे सती स्त्रीचा जो आदर्श झपाट्याने बदलणाऱ्या आजच्या युगांत देखील हिंदुस्थानाने सुराशी जतन करून ठेवला आहे त्या आदर्शाची जिवंत प्रतिमा म्हणून राष्ट्र कस्तुरबांना ओळखीत आहे.

अशा त्रिविध लोकोत्तर योग्यतेमुळे कस्तुरबांची संबंध राष्ट्र आज पूजा करीत आहे.

पु० कस्तुरबा अशिक्षित होत्या. त्यांचे भाषाज्ञान सामान्य खेडवळाच्या ज्ञानाहुन अधिक होतें असेहि म्हणतां येणार नाही.

दक्षिण आफ्रिकेंतच जाऊन राहिल्यामुळे त्यांना थोडेंसे अंग्रजी समजत असे आणि २५-३० अंग्रजी शब्दहि बोलतां येत असत. मि० अँड्र्यूजसारखे परदेशी पाहुणे घरी आले असतां तेवढ्या शब्दांच्या भांडवलावर त्या आपलें काम

---

जिन्हा हॉल मुंबयी येथें ता. २२ फेब्रुवारी १९४७ रोजी मुंबयीच्या सर्व स्त्रीसंस्थांच्या वतीने भरलेल्या सभेपुढे दिलेलें व्याख्यान.

भागवीत असत, आणि केव्हां केव्हां तर त्यांच्या त्या संभाषणांतून अभावितपणें विनोदहि उत्पन्न होत असे.

कस्तुरबांना गीतेविषयी असाधारण आस्था होती. कोणीहि शिकविणारे भेटलें म्हणजे त्या मोठ्या भक्तीनें गीता शिकावयास बसत. पण त्यांचें गाडें कधींच फारसे पुढे गेलें नाहीं. तरीहि अगदीं आगाखान जेल-महालामध्ये देखील त्यांनी पुनः पुनः गीतेची संथा घेण्याचा प्रयत्न चालू ठेवला होता.

त्यांचा निष्ठेचा दुसरा ग्रंथ म्हणजे तुलसीरामायण. मोठ्या मुश्किलीनें मिळणाऱ्या दुपारच्या अर्ध्या तासांत मोठमोठ्या बटवटीत टाडपाच्या तुलसी रामायणाचे दोहे चष्मा चढवून वाचीत बसलेल्या त्यांना पाहून मोठी गंमत वाटत असे. कस्तुरबांना रामायण देखील नीटसे कधीं वाचतां आलें नाहीं. पण जरी त्यांना राष्ट्रीय संत तुलसीदासांनां केलेलें सती सीतेचें वर्णन नीटसे समजलें नाहीं तरी त्यांना प्रत्यक्ष सती सीता होतां आलें.

जगामध्ये अमोघ अशा दोन शक्ति आहेत. एक आहे शब्द, आणि दुसरी आहे कृति. शब्दांनी सारी पृथ्वी हालवून सोडली आहे यांत शंका नाहीं; पण अंतिम शक्ति कृतीचीच आहे. महात्माजींनी या दोन्ही शक्तींची असाधारण सुपासना केली आहे. पू० कस्तुरबांनी या दोहोंपैकी अधिक श्रेष्ठ शक्तीची नम्रपणें सुपासना करून संतोष मानला, आणि जीवनसिद्धीहि मिळविली.

द० आफ्रिकेच्या सरकारनें त्यांना तुरुंगांत डांबलें. कस्तुरबांनी आपला बचाव केला नाहीं, किंवा अखादें सळसळणारे निवेदनहि बाहेर पाडलें नाहीं. 'महात्माजींची मी धर्मपत्नी नव्हे असें ठरविणारा कायदा मला मोडलाच' पाहिजे ' असें म्हणून त्या सरळ तुरुंगांत गेल्या. तेथें त्यांचो ही तेजस्विता मोडून काढण्याचा सरकारनें प्रयत्न केला. पण सरकारचा त्यावेळचा तो हट्टच मोडून गेला.

डॉक्टरांनी त्यांना धर्माविरुद्ध आहार घेण्यास सांगितलें त्यावेळीं देखील त्यांनी धर्मनिष्ठेवर व्याख्यान दिलें नाहीं; फक्त अवढेंच सांगितलें: 'मला निषिद्ध आहार घेऊन जगायचें नाहीं, मरण येणार असेल तर येवो.'

कस्तुरबांची कसोटी केवळ सरकारनेंच केली असें नाहीं. प्रत्यक्ष महात्माजींनी कितीतरी वेळां त्यांना 'माझा त्याग कर,' 'माझ्या घरांतून चालती हो,'

‘ माझ्या म्हणण्याप्रमाणे तुला वागलेच पाहिजे ’ असे म्हणून त्यांना छळून घेतले. पण कोणत्याही वेळी त्या त्यांना हार गेल्या नाहीत. स्त्रींचे कर्तव्य पतीला अनुसरण्याचे आहे अशी त्यांची निष्ठा असल्यामुळे मनांत कोणताच किंतु टिकवून देता त्या धर्माच्या बाबतीत पतींचे अनुकरण करीत राहिल्या.

कस्तुरबांचे प्रथम दर्शन मला शांतिनिकेतनमध्ये घडले. १९१५ च्या प्रारंभी जेव्हा महात्माजी तेथे आले होते तेव्हा स्वागताचा सर्व समारंभ संपल्यानंतर सर्वानी निघण्याची तयारी केली. आंगणांत मध्यभागी एक चौथरा होता. महात्माजी म्हणाले, “ आम्ही दोघे यावरच निजूं.” शेजारी शेजारी अंधरणे घालून बापू आणि बा निजले आणि आम्ही सर्व मंडळी अंगणाच्या आसपास आपापली अंधरणे करून झोपून गेलो. त्यादिवशी मला वाटले की आपल्याला नव्याने आर्जिवाप मिळाले.

बांचे मला शेवटचे दर्शन, सरकारने त्यांना मुंबईत बिलाहैसमधून पकडून नेले त्यावेळी झाले होते. सरकारने सकाळी महात्माजींना पकडले त्यावेळी कस्तुरबांना सांगितले की ‘ तुमची अिच्छा असल्यास तुम्हीद्विबरोबर या’. बा म्हणाल्या, ‘ पकडत असाल तर अेओन, सुखासुखी येण्याची तयारी नाही.’ अलट महात्माजी ज्या सभेत बोलणार होते या सभेत जाण्याचा त्यांनी निश्चय केला. पतीला पकडल्यानंतर त्यांचे काम पुढे चालविण्याची जबाबदारी बांनी अनेकवेळां ब जावनी होती. संध्याकाळी त्या व्याख्यानाला निघाल्या. सरकारच्या अमलदारांनी येऊन त्यांना सांगितले की ‘ माताजी, सरकारचे म्हणणे आहे की आपण कष्ट घेऊ नयेत. घरीच असावे. सभेत जाण्याची दगदग कां करता?’ बांनी त्यांना देशसेवेचे महत्त्व समजावले नाही; देशद्रोह करणारे कुत्रे म्हणून त्यांची निर्मर्त्सनाहि केली नाही. त्यांनी अेकच शब्दांत सरकारच्या सूचनेची बोलवण केली. - ‘सभेत जाण्याचा माझा निश्चय आहे, आणि मी जाणारच.’ सरकारने त्यांना पकडून तुरुंगांत ठेवले. आगाखान पॅलेसमध्ये खाण्यापिण्याचे हाल नव्हते. जागा हवाशीर होती. महात्माजींचा सहवास होता. पण कस्तुरबांना आपण कैदेत आहोत हा विचारच असह्य होई. ‘ नको येथील हें वैभव, आपली सेवाग्रामची शोषडीच बरी ’ असे त्या वारंवार म्हणत. सरकारने त्यांच्या शरीराला कोडून ठेवले पण त्यांच्या आत्म्याला हें सहन झाले नाही. पिंज्यातला पक्षी ज्याप्रमाणे प्राणत्याग

करून बघनमुक्त होतो त्याचप्रमाणे सती कस्तुरबांनी सरकारच्या तुरुंगांत आपला देव ठेवला, आणि त्या स्वतंत्र झाल्या. त्यांच्या या मूक पण तेबस्वी बलिदानापुढे साम्राज्याचा पाया ठासवला आणि त्यांची हिंदुस्थानातील सत्ता खिळखिळी झाली. कस्तुरबांनी आपल्या कृतिनिष्ठेपुढे दाखवून दिले की शत्रूच्या आणि साहित्याच्या होंगरापुढे कृतीचा एक खडाच अधिक मूल्यवान् आणि अधिक पाणीदार असतो, शत्रूशास्त्रांत निपुण असणाऱ्या लोकांना कर्तव्याकर्तव्याची नेहमीच विचिकित्सा करावी लागते. कृतिनिष्ठाना असली बुविचा कधीच भोवत नाही. कस्तुरबांच्या पुढे त्यांचे कर्तव्य अगदी दिव्यासारखे स्पष्ट असे. केव्हाहि कसलीहि चर्चा होऊं लागली म्हणजे आपल्या हातून अमुकच होणे योग्य आहे आणि अमुक होणे योग्य नाही, अशा दोन वाक्यांत त्या निर्णय देत असत.

आश्रमांत कस्तुरबा सर्वांच्याच माता असत. स्त्रियांरहाश्रम म्हणजे नत्त्वनिष्ठ महात्माजींची संस्था. अग्रशासन मगनलालभाजी ती संस्था चालवीत असत. अशा ठिकाणी प्रेमाचा आणि वात्सल्याचा विशेष ओलावा मिळत असे तो कस्तुरबांकडूनच. पुष्कळ वेळां तर बा आश्रमांचे नियम देखील धाब्यावर बसवीत. आश्रमांतील मुले भुकेजलीं म्हणजे त्यांची दाद त्यांच्याकडेच लागावयाची. नियमनिष्ठांनीं वांच्याविरुद्ध पुष्कळदां तक्रारी करून पाहिल्या. शेवटीं महात्माजींना हार खाऊन ठरावे लागले कीं आपले नियम बांना लागू नाहीत.

आश्रमांत थोर थोर पुढारी येवत किंवा लहानसान कार्यकर्ते येवत, त्यांच्या खाण्यापिण्याची वास्तुपुस्त अगदीं प्रेमाने करावी कस्तुरबांनीच. आणि त्यांना आळस असा कधीच नव्हता. जिवारच्या दुखण्यांतून अुल्या तरी अंगांत थोडी शक्ति येतांच आश्रमाच्या स्वयंपाकघरांत जाऊन त्या कामाला लागवयाच्या. अगदीं शेवटीं शेवटीं त्यांचे हातपाय थकले होते, शरीर सुरकतून गेले होते, तोंडांत एकहि दांत उरला नव्हता, डोळे निस्तेज झाले होते. तरीहि त्या स्वयंपाकघरांत जाऊन पोचावयाच्या आणि झेपेल ते कान अंतःकरणपूर्वक करावयाच्याच. त्यांना भेटावयास गेले आणि त्यांनीं कांहीं खावयास दिले म्हणजे लहान मुलाप्रमाणे हात पुढे करतांना मला असाधारण धन्यता वाटे.

त्या जरी अशिक्षित होत्या, संस्था चालविण्याची जबाबदारी किंवा महत्त्वा-  
'कांक्षा जरी त्यांच्यांत नव्हती, तरी देशांत काय चाललें आहे याची सूक्ष्म माहिती  
त्या प्रश्न विचारून किंवा वर्तमानपत्रें चाळून घेत असत.

दोन तीन वेळां महात्माजी जेलमध्ये असतांना कस्तुरबांना राजकीय परिषदांचें  
किंवा शिक्षण संस्थांचें अध्यक्षस्थान घ्यावें लागलें होतें. त्यांचें अध्यक्षीय  
भाषण मला लिहून द्यावें लागलें होतें. मी त्यांना म्हणालों, 'मी माझ्या पदरचा  
अेकहि मुद्दा भाषणांत आणणार नाही; तुम्ही सांगाल तेंच ठीकठाक भाषेंत  
सजवून देओन' थोडी कांकू केल्यानंतर त्या भाषणाचे मुद्दे सांगत त्यावेळीं  
त्यांची ती शक्ति पाहून मी तर चकितच होओ.

अध्यक्षीय भाषण कोणाकडूनहि लिहून घेणें सोपें असतें, पण परिषद  
संपल्यानंतर उपसंहार करावयाचा तो स्वतःच्या परत्युत्पन्नमतीच्या जोरावरच  
करावा लागतो. प्रत्येक वेळेला कस्तुरबांनी केलेले उपसंहार, अगदीं सोप्या भाषेंत  
कां असत ना, परिपूर्ण होते. त्यांच्या त्या भाषणांत परिस्थितीची जाणीव, भाषेची  
सावधगिरी आणि खानदानीचा थोरपणा अत्कटपणें दिसून येओ.

आजच्या काळीं स्त्रीजीवनासंबंधीचा आपला आदर्श आपण बराच बदलला  
आहे. आज कोणी स्त्री कस्तुरबाप्रमाणें अशिक्षित राहिली आणि कसल्याच  
महात्त्वाकांक्षेचा तिच्यांत अुदय दिसला नाही तर आपण तिचें जीवन यशस्वी  
किंवा कृतार्थ झालें असें म्हणणार नाही. असें असूनहि पू. कस्तुरबा वारल्याबरोबर  
संबंध राष्ट्रांनै स्वयंस्फूर्तीनै त्यांचें स्मारक करण्याचें ठरविलें आणि सहजासहजीं  
गोळा न होणारा प्रचंड निधि गोळा करून दाखविला. यावरूनच सिद्ध होतें कीं  
आपला प्राचीन तेजस्वी आदर्श अजूनहि राष्ट्रमान्य आहे, आपल्या संस्कृतीची  
मुळें अजूनहि चांगलीच भरभक्कम आहेत.

हा सर्व थोरपणा कस्तुरबामध्ये आला कोठून? त्यांची जीवनसाधना कोणत्या  
प्रकारची होती? शिक्षणाच्याद्वारा बाहेरून असें त्यांनी कांहीच घेतलें नव्हतें.  
त्यांच्यामध्ये खरोखर म्हणजे आर्यआदर्शाला साजेसें कौटुंबिक सद्गुणच होते.  
असाधारण संधि मिळतांच आणि तितकीच असाधारण कसोटी येथून पडतांच त्यानी  
आपल्या स्वभावसिद्ध कौटुंबिक सद्गुणांना व्यापक केलें आणि त्यांच्या जोरावरच  
प्रत्येक वेळीं जीवन-सिद्धि मिळविली. सूक्ष्म प्रमाणांत किंवा लहानशा पायावर  
जी शुद्ध साधना केली जातें तिचें तेज अितकें कांहीं लोकोत्तर असतें कीं कितीहि

मोठा प्रसंग असो किंवा व्यापक प्रमाणावर कसोटी होवो, चारित्र्यवान् मनुष्याला स्वतःच्या शक्तीचा फक्त गुणाकारच करावयाचा असतो.

सती कस्तुरबांनी अगदीं बाळबोधपणे पातिव्रत्याची, कुटुंबवत्सलनेची आणि तेजस्वितेची कास धरली, आणि तेवढ्या जोरावर महात्मार्जांच्या माहात्म्याला त्या पुऱ्या पडल्या. आज हिंदु, मुसलमान, पारशी, शीख बौध्द, ख्रिस्तो सर्व धर्मांच्या लोकांचा बनलेला हा विशाल देश अत्यंत निष्ठेने कस्तुरबांची पूजा करित आहे आणि स्वातंत्र्यापूर्वीच्या शिवरात्रीच्या दिवशी त्यांचें स्मरण करून स्वतःची तेजस्विता परजीत आहे.

## सौ. कस्तुरबा-दिन

( महाशिवरात्र किंवा ता. २२ फेब्र. )

हा दिवस महाशिवरात्रीला किंवा २२ फेब्रुवारीला पाळावयाचा असतो. या दिवशी कस्तुरबांच्या गुणसंकीर्णनाखेरीज कस्तुरबा-स्त्री-सेवानिधीच्या द्वारां होत असलेल्या राष्ट्रव्यापी कार्यांची माहिती लोकांना द्यावी मागामलेल्या जातीच्या स्त्रियांना त्यांच्या मुलांबाळांसकट आमंत्रण देऊन, त्यांना साधा पण पंढर असो फराळ द्यावा स्त्रीजीवनांतील निरनिराळ्या प्रश्नांचा अहापोह करणारी व्याख्याने ठिकठिकाणीं करावीत. अशी व्याख्याने निदान अर्धो तरा स्त्रियांनी दिलेलीं असावीत. लहान मुलांना दुधाचा पुरवठा कसा होऊल या विषयीच्या योजनांची चर्चाहि याच दिवशीं करून संघटित योजना आखण्यांत याव्या. बालशिक्षणाची चर्चाहि या दिवशीं करणे योग्य होऊल. या दिवशीं जेथे शक्य तेथे हरिजनाना बरोबर घेऊन मोठ्या मोठ्या मंदिरांत हरिकीर्तन करावें.

## ( फाल्गुन पूर्णिमा )

प्रत्येक सणांत कांहींना कांहीं ग्रहण करण्याजोगें असतें. पण आजच्या आपल्या होळीच्या सणांत असें कांहीं मिळण्याजोगें आहे का ? गेल्या वीस पंचवीस वर्षांत ज्या पद्धतीनें हा सण साजरा करण्यांत येतो ती पद्धति पहातां या सणासंबंधीं कांहींहि असाह वाटण्याजोगा नाही. याचा जुना अतिहास किंवा पौराणिक कथा का हे आनी, या सणावर काहीं सुंदर प्रकाश पाडिल म्हणवें तर तसेंहि वाटत नाही. तरी अवढें मात्र कवूल केलें पाहिजे कीं होळी हा अतिशय जुना सण आहे. हिवाळा पुरा होतांच अंक मोठी थोरली होळी पेटवून आनन्दोत्सव करण्याचा रिवाज प्रत्येक देशांत आणि प्रत्येक काळीं चालूच आहे. या उत्सवांत संयमाचा लगाम दिला सोडून स्वच्छंदाचा थोडासा अस्वाद घेण्याची लोकांची अिच्छा असते.

हिंदुधर्मांत माणसांना जात असते अतिकेंच नव्हे तर देव, परमेश्वरी आणि सण यांना सुद्धां जात असते. अष्टावसु जातीनें वैश्य आहे, नाग आणि कबूतर ब्राह्मण आहे आणि पोपट हा वाणी आहे, तसा होळीचा सण हा जातीनें शूद्र आहे. अवढ्याचसाठीं कां होळीचा कार्यक्रम कोणत्यातरी काळ्या विघडलेल्या शूद्रांनीं तयार केला आणि त्यांचा हक्क संभाळण्यासाठीं अंतर वर्णांनी त्याचा स्वीकार केला ? होळीच्या दिवशीं अंत्यजांना शिवावे असा अंक नियम पुराणांत आहे त्याचा अुद्देश काय असावा ? द्विज लोक तेवढे संस्कारी म्हणजेच संयमी आणि शूद्र तेवढे स्वच्छंदी असें समजूनच होळीमध्ये अंतर स्वच्छंद ठेवला आहे काय ? होळीच्या दिवशीं राजा आणि प्रजा अंक होऊन अंकमेकांवर रंग अडवितात ते काय निदान वर्षांचे चारपांच दिवस तरी समानतेचें तत्त्व अनुभवण्यासाठीं ?

होळी म्हणजे कामदहन, वैराग्याची साधना. विषयाला काव्याचें मोहक स्वरूप दिल्यानें तो वाढतो. त्यालाच बीभत्स स्वरूप देऊन त्याला नागडा अघडा करून त्याचें खरें स्वरूप समानापुढें अुभें करून विषयाविषयी शिसारी अुत्पन्न

करण्याचा अद्देश तर यांत नसेल ? संबंध हिंवाळाभर ज्याच्या मोहांत आपण सांपडलों त्याची फजीती करून त्याला जाकून टाकून पश्चात्तापाची विभूति शरीराला चर्चून वैराग्य धारण करण्याचा अद्देश यांत असेल काय ?

प्राचीन काळच्या लिंगपूजेची विडंबना तर यांत नसेल ?

पण होलिका म्हणजे वसंतोत्सवहि आहे. हिवाळा गेला, वसंताचे नूतनजीवन वनस्पतींमध्येमुद्घां आलें, तेव्हां हिवाळ्यांत सांठविलेलीं सर्व लाकडे गोळा करून शेवटची शेकोटी पेटवून थंडीला निरोप देण्याचा तर हा उत्सव नसेल ? आणि ती हुंडा राक्षसी कोण ? ती लाहान मुलांना पीडा करते म्हणे. होळीच्या दिवशीं सगळीकडे आग पेटवून आरडा ओरड करून तिला पळवून लावण्यांत येते. यांत काय काव्य किंवा रहस्य असावें ?

लोकांमध्ये अश्लीलता आहेच. तिला मारून ती मरायची नाही. 'तुभ्यस्तु दुर्जनः' या न्यायानें तिला वर्षांतील अेक दिवस दिल्यानें ती हीन वृत्ति सगळें वर्ष मग ताब्यांत राहाते असें कित्येकजण म्हणतात. खरोखर तसें जर असेल तर ती भयंकर चूक आहे. अग्नीला तूप दिल्यानें तो कांहीं ताब्यांत राहात नाही. पाप आणि अग्नि यांच्याशीं स्नेह कशाचा ? वसंताचा उत्सव औश्वरस्मरणपूर्वक सौम्य रीतीनें साजरा केला पाहिजे. दिवाळीत उत्सवाचा आनंद काय कमी असतो ? लाकडे जाकून होळी केल्यानें काय खरा वसंतोत्सव होतो ? होलिका अेक राक्षसी होती. तिला जाळण्याचा हा सण आहे असें जर मानलें तर चोरून आणलेल्या लाकडांनीं आपण तिला जाळूं शकणार नाही. होलिका राक्षसी प्रह्लादाच्या निवैर पावित्यानेंच जळेल.

आपले सण आपल्या राष्ट्रीय जीवनाचे आणि आपल्या संस्कृतीचे प्रतिबिंबरूप आहेत कीं नाहीत याचा आपण विचार केला पाहिजे. मनुष्यमात्र उत्सवप्रिय आहे. पण स्वतंत्र माणसांचा उत्सव निराळा असतो आणि गुलामांचा निराळा असतो. जो स्वतंत्र आहे, ज्याच्या माथ्यावर जबाबदारी आहे, ज्याला अधिकार चालवावयाचा आहे, त्याची अभिरुचि साधी आणि प्रांतिष्ठित असते. जो परतंत्र आहे, ज्याला जबाबदारीची जाणीव नाही, ज्याच्या जीवनांत महत्त्वाकांक्षेला स्थान नाही त्याची



अभिरुचि बेडौल आणि अतिरेकी असते. अका ग्रंथकाराने लिहिले आहे की स्त्रियांना विविध प्रकारचे रंग पसंत पडतात आणि चित्रविचित्र पोषाखाकडे त्यांचे लक्ष वेधते याचे कारण त्यांची परवशता हे आहे. स्त्री जर स्वःधीन झाली तर तिचा वेषहि साधा आणि शुभ्र होईल. स्त्रियांच्या बाबतीत ही गोष्ट खरी असो वा नसो, प्रजेच्या बाबतीत मात्र ती अगदी खरी आहे. प्रजा जेव्हा अधिकारविरहित, परतंत्र, वालिश वृत्तीची आणि बेजबाबदार होती त्या काळीच मूर्खपणाच्या कृत्यांनी भरलेला हा सण साजरा करण्याचे प्रचलित झाले असावे.

रोमन लोकांत सेंटनेलिया नांवाचा एक गुलामांचा सण होता. त्यादिवशीं गुलाम आपल्या धन्याबरोबर जेवित, सोंगट्या खेळत, मोकळेपणाने बोलत आणि मौज करित. अतिका आनंद भोगल्यानंतर पुनः वर्षभर गुलामीत राहाण्याची त्यांना हिंमत येई.

स्वराज्यवादी प्रेजेने अधिक गंभीर होणे जरूर आहे. आपली योग्यता काय आपली स्थिति काय याचा विचार करून तिला माजेल असे जीवन घालविले पाहिजे. वसंतात्मक करावयाचा अगेल तर ममाजांत नवे जीवन उत्पन्न करून हा सण साजरा केला पाहिजे. कामदहन करायचे असेल तर ब्रह्मचर्यव्रत धारण करून पवित्र झाले पाहिजे. होलिकोत्सव हे गुलामांना अक्रमेव आशवासन असेल तर तो अतिसव स्वराज्याप्रीत्यर्थ तरी अक्रमेव काढून टाकला पाहिजे. भाषेनधून शिष्यांचा कोश कमी होऊन यावद्दल दुःख मानण्याचे कारण नाही. होळीचे दिवस शहरे आणि खेडी स्वच्छ करण्यांत आपल्याला घालविता येतील. मुलांना मर्दानी कसरत आणि खेळ खेळण्यांत आणि दारूच्या व्यसनांत सांपडलेल्या लोकांच्या वस्तीत जाऊन दारुनिषेधाचा व्यक्तिगत उपदेश करण्यांत हे दिवस घालविता येतील, आणि स्त्रिया स्वदेशीची गाणी गात गात खादीचा प्रचार करू शकतील.

प्रत्येक सणावर स्वराज्यसंस्करण झालेच पाहिजे, कारण स्वराज्य म्हणजे आत्मशुद्धि आणि नवजीवन.

# होळी

फाल्गुन पूर्णिमा

१ दिवस

होळीचा सण हा काढून टाकण्याजोगा आहे. या दिवशीं करावयाच्या जुन्या कार्यक्रमांत अन्नतीचा अेकहि अंश नाही. तरी हा सण देशभर अितका रूढ आणि लोकप्रिय आहे कीं त्याचा जर आऩण अपुऩ्ण केला नाही तर तो आपलाच दोष म्हणावा लागेल. आजपर्यंत होळीच्या दिवशीं संस्कारी लोकहि असंस्कारी बनले आहेत. अितःपर संस्कारी म्हटले जाणारे लोक जर असंस्कारी लोकांची सेवा करण्यांत हा दिवस घालवितील तर या सणाचे सार्थक होईल. होळीच्या दिवशीं आपण विशेषकरून हरिजनांना बोलवावे, समानभावाने त्यांचे स्वागत करावे, त्यांचीं सुखदुःखे समजून घ्यावी; अथवा हरिजनवस्तींत जाऊन कोरडा अपदेश न करतां सक्रिय सहानुभूति दाखवावी. त्यांच्या मुलांना आपल्या येथे खेळायला बोलवावे. हुतुतु, आठ्यापाठ्या वगैरे खेळ त्यांच्याशीं खेळावे.

होळीचा सण हा मैदानी आणि मर्दानी खेळांसाठीं विशेष अनुकूल आहे. दिवसां तऩ्हतऩ्हच्या कसरतींची चढाओढ व्हावी. त्यानंतर सगळ्यांनी जेवावे. रात्री चांदण्यांत आठ्यापाट्या खेळाव्या.

होळी पेटविण्याची पथा काढून टाकलेली बरी. गरजेच्या वस्तू गंमतीने जाळून टाकणे आपल्या समाजाला परवडणार नाही. गवत, गोवऩ्या वगैरे शेतीला अपयोगी असणाऩ्या वस्तू जाळणे म्हणजे शेतीसंबंधी बेदरकारी दाखविणे आहे. तरीपण गोशाळेत धूर करून जनावरांचे ढांसांपासून रक्षण करतां येईल, हे समजावून द्यावे.

होळीच्या दिवशीं कच्च्या आंब्याचे निरनिराळे पदार्थ बनवून खाण्यांत औचित्य आहे.

त्या दिवशीं आपल्या सहवासांत येणारे मजूर, नोकर तसेच अितर गरीब लोक यांना बरोबर घेऊन खाण्याची प्रथा फारच चांगली आहे. सर्वांना मिळतील अशा प्रकारचे पदार्थ खान्यांत असावेत.

होळीच्या दिवशीं मद्यपाननिषेधाचें काम होऊं शकलें तर तें सर्वोत्तम चांगलें. हरिजनांमध्ये झालेल्या अनेक सार्धूच्या चरित्राचें संकीर्तन या दिवशीं विशेषेंकरून व्हावें, अुदा० गुहक, नंदनार, चोखामेळा अि०

---

( फाल्गुन व० २ )

ज्ञानदेव, तुकाराम आणि समर्थ हेच काय ते महाराष्ट्राचे खरे राजे होत. यांना महाराष्ट्राच्या हृदयावर आपले सिंहासन जे स्थापन केले ते आजवर अबाधित आहे. या तिषांमध्येदेखील महाराष्ट्राचा हृदयेश्वर म्हणजे तुकाराम. ज्ञानेश्वर योगमार्गीतून आणि ज्ञानमार्गीतून भक्तिमार्गीत आले, रामदास कर्ममार्गी आणि अण्णासाहेब-मार्गीतून भक्तीला संपूर्ण शकले, तुकारामांनी ' आधी, मधी आणि अंती ' असे भक्तीचे ओळखले आणि मग ज्ञान, योग, अण्णासाहेब आणि कर्म ही सर्व या भक्तीच्या मार्गामाग आपोआप आली.

“ सत्य असत्याशी मन केलें ग्वाही । मानियेलें नाहीं बहुमता ॥ ” या ओंका ओळखित तुकारामांचे आत्मचरित्र आणि तत्त्वज्ञान येथून गेले आहे. ' मेणाहून मज्जु असलेला ' हा विष्णुदास कवीहि लोकांचा दास झाला नाही. " लोक तैसा ओर धरीनां धरवेना " हे प्रथमपासून पाहिल्यामुळे लोकांविषयी तुकाराम निःस्पृह आणि निर्भय झाले होते. एका निरावर येथून ते म्हणाले की, " माझे बरे वाईट करण्याचे काय या लोकांच्या हाती आहे की मी यांची मुर्त ठेवावी ? यांनी मला मुक्त म्हटल्याने मी काही मुक्त होऊ शकत नाही, आणि मी मोक्षाचा अधिकारी झालो तर हे सगळे मिळून मला काही अडकवून ठेवू शकणार नाहीत. ”

जे हृदयांत तेच मनांत, जे मनांत तेच जनांत अशी ज्याची स्थिति असेल त्याचा मार्ग बऱ्याच अंशी सोपा होतो. तुकारामांनी हा प्राज्ञ मार्ग स्वीकारला होता यांमुळे त्याला बरीचशी ओझीं अचलावीच लागली नाहीत.

तुकाराम जातीने वाणी होता. पण तो स्वतःला शूद्र म्हणून घेत असे, अजबचेच नव्हे तर तो म्हणतो की ईश्वराची कृपा की मी शूद्रवंशांत जन्मलो, नाहीतर मी दुर्माने मेले असते. वेदांत्यांनादेखील त्याने असा शब्दांत सांगून बोटविले की, ' अद्वैती तों माझे नाही समाधान. ' अतः असा चित्तशुद्धि आणि ज्ञान याबाबतीत त्याचेजवळ यत्किंचितहि कमतरता नव्हती.

तुलसीदास किंवा पुंडलीक अथवा वाल्मीकि यांमारुह्या संतांच्या जीवनांत अेकाअेकीं परिवर्तन झालेले आढळते. दुनियादारीमध्ये-परंपचामध्ये-मुरलेले हे लोक अेकाअेकींच ठेच लागून अुलटतात आणि त्यांच्या जीवनांत कायमचें परिवर्तन होते. नामदेव किंवा तुकाराम किंवा अेकनाथ यांचें असें नाहीं. लहानपणापासून यांचा ओढाच परमार्थाकडे. दुष्काळांत अेक पत्नी वारल्यामुळें तुकारामाचें वैराग्य दृढावलें असें म्हणतां येअील. पण भक्ति तर त्यांना आनुवंशिक संस्कार म्हणूनच मिळाली होती. दुष्काळामुळें अेक पत्नी वारली याचा तुकारामांच्या मनावर जो परिणाम झाला त्याच्यापेक्षां दुसऱ्याच अेका गोष्टीचा अधिक दळदार परिणाम त्यांच्या मनावर झाला. दुष्काळाचे दिवस होते. लोक अन्नाला मोताद झाले होते. अशा वेळीं तुकारामाचा भावाशीं मतभेद झाला. लोकांकडे थकलेल्या बाकीचा तगादा लावून आपल्या चरितार्थाची सेव्य करावी असें भावाचें म्हणण. तुकारामाला वाटलें जशी आपली अडचण तशीच लोकांची. यावेळीं बाकी-वसुलीचा आग्रह करूं नये. मतभेद तुटेना तेव्हां दोघां भावांनीं कर्जेरोखे आणि हिशेबाच्या वह्या वांटून घेतल्या आणि फारकत केली. तुकारामांनीं आपला शुभ संकल्प डळमळित होअूं नये म्हणून आपले रोखे आणि वह्या स्वेच्छेनें इंद्रायणींत बुडविल्या. अशा रीतीनें तुकारामांनीं आपला संसार स्वेच्छेनें बुडविला.

पुढें ब्राह्मणेतराला शास्त्रवचनें-आणि तींही मराठींत-लिहिण्याचा अधिकार काय असा प्रश्न अुठवून त्यांच्या समकालीन लोकाग्रणींनीं त्यांचेकडून त्यांच्या अभंगांच्या वह्या बुडविल्या. मग मात्र तुकारामाच्या मनाची कालबाकालव झाली. आपण परंपंच बुडविला आणि परमार्थादि बुडविला, आतां आपल्या वांढ्याला काय राहिले असें वाटून त्यांना भयंकर दुःख झालें. रामकृष्णप्रमाणे तुकारामालादेखील आपल्या सर्व अडचणी आणि शंका आपल्या अुपास्यदेवतेला अर्पण करण्याची संवय होती. तुकारामांनीं विठोबाच्या दारीं धरणे धरलें आणि जेव्हां खुद्द विठोबानें हृदयाचें समाधान केलें तेव्हांच तो जगावयास तयार झाला. तुकारामाच्या जीवनांत ह्याच परसंग खरोखर क्रांतिकारी होता.

समाधान झाल्यानंतर तुकारामांनीं समाजसेवा सुरू केली. लोकांचीं तेलांचीं नळकांडीं गळ्यांत बांधून लोकांना तीं घरोघर पोंचविण्याचें काम तुकाराम पहिल्या-

पासून करीतच. पण आतां त्यांनीं उपदेश करण्यालाहि आरंभ केला. तुकारामाला शिष्य किती होते हा एक न सुटलेला प्रश्न आहे. आपली सेवा करणाऱ्या शिष्यांना बोधामृत पाजण्याची जबाबदारी समजून ज्याप्रमाणें बुद्ध भगवानांनीं प्रारंभ केला, त्याचप्रमाणें तुकारामांनीं आपल्या धर्मपत्नीला दीक्षा देऊन उपदेशाचा प्रारंभ केला. तुकाराम पत्नीला सांगून सांगून काय सांगणार ? संसारीसुखांत कांहीं अर्थ नाही—' किंचित हें सुख टाकी वो थुंकोनी ' पत्नीला पतीचा उपदेश पटावयाला फार वेळ लागला नाहीं. तिनें घरीं असलेनसलेलें ब्राह्मणांना दान देऊन टाकलें. तेवढ्यांत तुकारामानें कुंपणावर वाळन असलेलें पत्नीचें लुगडेंदेखील ब्राह्मणपत्नीला देऊन टाकलें. बदलावयाला अेक लुगडें देखील पुरतें नाहीं हें पाहून मात्र त्या माझुलीला 'अुलटीं अुपरति' झाली.

तुकारामाचा स्वार्थावरचा विश्वास अुडाला होता. जिजाबीचा आतां परमार्थावरचा विश्वास अुडाला. अशा दोघांचा जीवनक्रम कसा चालला असेल याची कल्पना सहज होण्यासारखी आहे. मुलाबाळांनाच काय तुकारामाला खाअुं घालण्याचा भार देखील त्या साध्वीवरच येअून पडला. नवराबायकोचा जरी असा असहकार असला तरी या प्रेमळ दंपतीनें खूप वर्षे संसारसुख अनुभवले आणि शेवटपर्यंत आपापला आग्रह कायम ठेवला.

शिष्य करण्यांत पहिलाच असा अनुभव आल्यामुळें कदाचित असेल पण तुकारामानें शिष्य करण्याच्या भानगडींत न पडतां ' मेघवृष्टीनें उपदेश करण्या ' चा प्रारंभ केला. आतां त्यांना छळणाऱ्या अेकांच्या समाजकंटकाला अुपरति होअून जर तो तुकारामाचा शिष्य झाला तर तुकाराम त्याला काय करणार ?

कोणी साधु झाला म्हणजे त्याचें सत्त्व कसाला लावणारें कोणीतरी भेटतेंच. तुकारामाची कसोटी कांहीं कमी झाली नाहीं. छळणाऱ्यांनीं त्याला छळून घेतलें. त्याच्या तितिक्षेची पारख करणारी ' झांढिपी ' त्याच्या घरीं होतीच. तुकारामाच्या सडेतोड उपदेशानें आणि दंभस्फोटानें भेदू लोकांचे हाल कमी झाले नसतील; पण तुकारामाला विष देअून मारण्यापर्यंत या लोकांची मजल गेली नाहीं. कारण हिंदु-

स्थान म्हणजे कांहीं गरीस नव्हे. त्यांनी फक्त कढत कढत पाणी तुकारामावर ओतून आपल्या रागाचे पारणे फेडले !

घरीं सुख नसलेल्या या सत्पुरुषाला कांहींतरी सुख यावे म्हणून त्यांच्यावर मुग्ध झालेली एक स्त्री त्यांचेकडे आली. पण 'आम्ही तसठे नव्हेत माथुली, तू दुसरीकडे जा' असे सांगून त्यांनी तिची बोळवण केली, आणि 'तुझे हे पतन नाश्याने बघवत नाही' म्हणून हृदयाची वेदना त्यांनी व्यक्त केली.

कामक्रोधाच्या बाबतीत कसोटी झाली. त्यांतून पार पडल्यानंतर त्याहून कठीण कसोटी करण्याचे ओश्वराला सुचले. त्याने शिवाजीच्या कावीं छत्री, जोडे, घोडे, अब्दागिरी आणि दक्षिणा पाठवून तुकारामाला राजदरबारचे आमंत्रण दिले. या संकटाला मात्र तुकाराम खरोखर घाबरला. त्याने ताबडतोब ओश्वराची मदत मागितली आणि त्याची कृपा भाकून त्याला सांगितले की देवा, असले कसोटी करू नकोस. आलेली लष्करी मागल्या पायी परत करून त्याने शिवाजीला निराप पाठविला की, घरीं जरी अपासमार असली तरी आम्ही विष्णुसेवक दीन आहोत असें समजू नको. तू समर्थालाच शरण जा, आणि ओश्वर-कार्य करीत राहून अनाथाच्या काजा साह्य हो. '

'कामः क्रोधस्तथा लोभः' या त्रिनयाचा ज्याने त्याग केला तो नरकाचे द्वार टाळूच सदेह स्वर्गाला गेला तर आश्चर्य काय ? ज्याचा देह विकारी असेल त्याला आत्मनाश टाळण्यासाठी देह सोडून स्वर्गाला जावे लागते. येथे ती अडचण धुरली नव्हती.

तुकारामांनी कांहीं नव्या प्रकारचा उपदेश केला नाही. सनातन काळापासून जगांतले सर्व संत जे सांगत आले आहेत तेच त्यांनी सांगितले ; पण 'आधी करून सांगितल्या' मुळे त्यांच्या वाणीमध्ये जिवंतपणा आला. त्यांचा उपदेश तेजस्वी ठरला, आणि तेव्हापासून लक्षावधि महाराष्ट्रीयानीं वैराग्याची ध्वजा सभंघ देशांत मिरविली आणि नांदवि शी. तुकाराम शास्त्रधर्माचे प्रतिनिधि नसून हृदयधर्माचे प्रतिनिधि होते. सत्त्वगुणांचे तेज काय असते हे दाखविण्यासाठीच ते या जगांत आले होते. राजकारण समर्थ आणि छत्रपति यांच्या हातीं

सोपवून देऊन अध्यात्मकारण आणि समाजकारण त्यांनी जनतेच्या मदतीने चालविले. रामदासांनी शिवाजीला भगवाझेडा दिला, तुकारामांनी महागण्डूच्या हाती वारकऱ्याची पताका दिली. दोघांनी अंकुच काम केले, पद्धत मात्र निराळी.

महाराष्ट्राची राजधानी कोणती ? रायगड, सातारा आणि पुणे कां पंढरपूर, देहू आणि आळंदी ? शिवकाली किंवा पेशव्यांच्याकाली या पश्चाचे उत्तर सहज देतां आले नसते. आज तशी स्थिति नाही.

१८-१२-३९.

## तुकाराम-पुण्यतिथि

फाल्गुन व० २

एक समय

नदीच्याकाठी किंवा समुद्रतीरावर अखादे तीर्थक्षेत्र आणि मंदिर असा-  
वयाचेंच. पण गिरसप्पाच्या कांठीं मात्र मंदिर नाही हें एक मोठें आश्चर्य आहे.  
संतपुरुषांनीं जेथे देह ठेवला तेथें भक्तांनीं मंदिर बांधून तीर्थक्षेत्र बनविलें नाहीं  
असें क्वचित्च घडतें. देहूला तुकारामाचें मंदिर नाहीं हें एक असेंच आश्चर्य आहे.  
तुकारामांनीं बांधलेलें एक विठोबाचें लहानसें मंदिर आहे खरें, पण तें कांहीं तुकारामाचें  
मंदिर म्हणतां यावयाचें नाहीं. सदेह स्वर्गाला गेल्यानंतर मंदिर कसें बांधावयाचें ?  
तुकारामाची पुण्यतिथि साजरी करण्याचा प्रकार निराळा आहे आणि तो म्हणजे  
'ज्ञानबातुकारामा' चा जयघोष करित पंढरपुरची वारी करणाऱ्या दिव्या काढून.

तुकारामाची पुण्यतिथि साजरी करावयाला भजनाचा कार्यक्रम सर्वांत मुख्य  
असला पाहिजे; आणि तुकारामाचे अभंग म्हणणें, त्यावर निरूपण करणें आणि  
सामाजिक सदाचाराची चिंता वाहाणाऱ्या लोकांचीं व्याख्यानं करणें हा भाग मुख्य  
असला पाहिजे; आणि तुकारामाच्या दयार्द्र नजरेतून जा वगळली गेलीं नाहींत



अशा पांखरांना खाऊं घालणें हाहि या दिवसाचा अेक गोड कार्यक्रम असला पाहिजे. पण कवुतरांचीं खुराडीं बांधून त्यांचेसाठी पायली पायली दाणे ओतणें हा मात्र प्रकार होअूं नये. स्वतंत्रवृत्तीने राहाणाऱ्या पांखरांना परावलंबी आणि रोगी बनविण्याचें पाप आपण कां घ्या? आपण शेती करतो आणि सृष्टिमातेकडून धान्य मिळवितों. त्या धान्यावर या अुडत्या लेकरांचा हक्क कमी नाही हें ओळखून त्याचेसाठी त्यांचा भाग राहूं देणे हा अेक भूतयज्ञ आहे अेवढें ओळखलें पाहिजे.

ज्या अतूंत पक्ष्यांना दाणें कोठेहि सांपडत नाहीत आणि गवताचें बीदेखील कुजून गेलेले असतें अशा वेळीं पक्षासाठी दाणें टाकण्याची पद्धत सुरू केली पाहिजे.

ऑस्ट्रेलिया कनानें हिंदुस्थानांत येतांच अिकडील राजांशीं करारमदार करून अंग्रजांखेरीज अितर युरोपियनांना या देशांतून बहुतेक हांकून काढले. त्याचप्रमाणें कावळे आणि चिमण्या यांनीं अितर सर्व गरीब आणि गोजिरवाण्या पक्षांना मनुष्यवस्तींतून हांकून लावले आहे. यामुळे पांखरांना खाऊं घालण्याचा भूतयज्ञ शहगांतून चालण्याजोगा नसून तो शेतांतच केला पाहिजे. तुकारामदिनी या पक्षनांचा अूहापोह करणें उपयोगीं होतील.

# धर्मरक्षक शिवाजी

: : ४५

( फाल्गुन वद्य ३ )

अकदां सत्याग्रहाश्रमांत शिवाजी महाराजांची जयंती साजरी करण्यांत आली होती. त्याप्रसंगीं पू० गांधीजी बोलले होते कीं, ' शिवाजी महाराजांच्याविषयीं इतिहासकार काय म्हणतात अिकडे लक्ष देण्यापेक्षां संतांनीं त्यांच्याविषयीं काय अुद्गार काढले आहेत त्याला मी अधिक महत्त्व देतों. संतपुरुषांनी जर त्यांना प्रमाणपत्र दिलें असेल तर मला तें पुरेसें आहे.'

शिवाजी महाराजांविषयीं संत तुकाराम तसेच रामदास यांनीं जे आदराचे अुद्गार काढले आहेत ते खरोखर बहुमोल आहेत. कारण ते दांघेहि शिवाजीचे समकालीन होते. महाकवी मोरोपंतांनीं शिवाजीची तुलना जनकराजाशीं केली आहे ती अतिशयोक्ति आहे असें समजून आपण सोडून देऊं; पण शिवाज्यामहाराज जेवढे राज्यसंस्थापक होते तेवढेच धर्मरक्षक होते. त्यांनीं ब्राह्मणांना विशेष दान दिल्याचें अुदाहरण आढळत नाही; त्यांनीं, अखादी गोशाळाहि स्थापन केली नव्हती; तरीहि महाराष्ट्राच्या जनतेनें त्यांना ' गोब्राह्मणप्रतिपालक छत्रपति ' अशी पदवी अर्पण केली होती.

अ. स. ७०० मध्ये मुसलमान जेव्हां हिंदुस्थानांत येऊं लागले त्यावेळीं या देशाची स्थिति कांहीं चांगली नव्हती. लोकांमध्ये आपसांत फूट, जातीच्या अुच्चनीचतेचा अभिमान, संशय, आळस आणि बेसावधपणा यांचेंच साम्राज्य सर्वत्र फैलावलेलें होतें. श्रीशंकराचार्यांनीं हिंदुसमाजाला संघटित करण्याकरितां जे प्रयत्न आरंभिला होता तो अ. स. १५०० पर्यंत अनेक संतांनीं पुढें चालविला. वेदांताचा सूर्य आणि भक्तीचें चांदणें या देहांचा परिणाम होऊन हिंदुधर्माचें सनातनत्व पुनः अेकवार अुजळ झालें, तरी राजकीय आणि सामाजिक स्थिति परिपूर्ण सुधारली नव्हती; त्यामुळे पुष्कळ लोक धर्मांतर करूं लागले. यांत जबरदस्तीचा भाग कितीहि असला तरी जबरदस्तीनें अितके लोक खात्रीनें वाटले गेले नसते. अनेक कारागीर जाती निष्का-

रण अस्पृश्य मानल्या गेल्याने कष्टी झाल्या होत्या. त्यांना सामाजिक छळाव्यतिरिक्त सरकारी जुलूमसुद्धा पुष्कळ सहन करावा लागे. इतिहासाचा असा पुरावा आहे की या त्रासाला कंटाळून जाऊन कित्येक जातीच्या जाती दुसऱ्या धर्मात गेल्या, आणि अशा रीतीनेच त्यांना आपली अस्पृश्यता चुकवितां आली.

मुसलमानांचा हल्ला पंजाबापासून जो सुरू झाला तो पूर्वेकडे बंगाल-अटकल-पर्यंत गेला, आणि दक्षिणेकडे पांढ्य, केरल आणि चोल लोकांच्या राज्यांपर्यंत पोचला. शि. स. १३०० पर्यंतच्या काळात हे आक्रमण जवळजवळ पुरे झाले. त्यावेळीं दक्षिणेकडे अनागोदी आणि हम्पीच्या बाजूला होयशळ वंशाने हिंदुसंघटन करण्याचा अेक मोठा जबरदस्त आणि यशस्वी प्रयोन करून विजयनगरचे साम्राज्य स्थापिले. हे साम्राज्य फक्त दोनशे वर्षेपर्यंतच टिकले असले तरी बगदादचा बादशहा आणि चीनचा सम्राट या देशांहूनहि विजयनगरच्या 'तिमुकुटधारो' महाराजाधिराजांचे वैभव मोठे गणले जात होते. विजयनगराने जुन्या हिंदु संस्कृतीचा अुद्धार करण्याचा पुनः अेकदा पुरापुरा प्रयत्न करून पाहिला. त्याने वेदविद्या पुनः सुरू केली; ऋते अुत्सव इत्यादींचा विस्तार केला. शेवटीं ऋति-स्मृति-पुराण आणि तंत्र यांच्या द्वारां विस्तार पावलेला हिंदुधर्म राजमान्य झाला.

पण त्यांच्या या प्रयत्नांत आवश्यक तितक्या आधुनिकतेला आणि मानवतेला स्थान न मिळाल्यामुळे राकसतागडीच्या लढाईत ( जिला तालीकोटचे युद्ध असेहि म्हणतात ) विजयनगरच्या साम्राज्याचा अेकाअेकी नाश झाला आणि हिंदुधर्म त्याचप्रमाणे हिंदुसमाज पुनः अनाथ झाले.

अशा स्थितीत येऊन पडलेल्या हिंदु समाजांत पुनः सजीव होण्याची जी तळमळ होती आणि ज्या तळमळीवर साधुसंतांनी सिंघन केले होते ती तळमळ शिवाजी महाराजांमध्ये प्रगट झाली आणि त्यांनी ' हिंदवी स्वराज्य ' पुनः प्रस्थापित करण्याची प्रतिज्ञा केली.

शिवाजीच्या मनांत मुसलमानी धर्माविषयी, त्यांच्या साधूविषयी किंवा धर्मग्रंथा-विषयी लेशमात्रहि तिरस्कार नव्हता ही नमूद करून ठेवण्याजोगी गोष्ट आहे. मुसलमानांच्या मशिदी, रोजे किंवा कबरस्ताने हिंदु लोकांनी फेडल्याचे अुदाहरण अेकाहि नाहीं. हिंदु लोकांना केवळ आपल्याच धर्माविषयी नव्हे तर

धर्ममात्राविषयी श्रद्धा आणि आदर असतो. माणसाला वर चढवितो तो धर्म. त्याचा नाश होऊं दिला तर मानवतेचाच नाश होवील, अेवढे हिंदूंना चांगले समजूं झालें होतें. त्यांचा जर कांहीं दोष असेल तर तो अेवढाच कीं फुंकणीचा उपयोग करून अग्नि जसा पज्वलित ठेवावा लागतो तसें जीवनाच्या शुद्धीकरणाच्या आणि संस्करणाच्या द्वारां धर्माचेहि संस्करण करण्याची जी आवश्यकता असते त्या बाबतींत ते पुरेसे जागृत नव्हते.

शिवाजीच्या वेळीं समाजावर नंतमताची छाप पुष्कळ पडली होती. संतमताचा प्रसारहि पुष्कळ झाला होता आणि तुकाराम व रामदास हे दोन प्रभावशाली धर्मसुधारक धर्मसेवा करीत होते. तुकारामांनी पंढरपुरच्या 'वारी'ची संस्था चाळून भक्तिसंप्रदायाचें संघटन केलें तर रामदासांनी ठिकठिकाणीं आपले मठ आणि हनुमानाच्या मंदिराबरोबर आखाडे स्थापून वर्णाश्रमधर्माचें संघटन केलें.

याचबरोबर शिवाजीनें प्राचीन काळापासून देशाचें संरक्षण करीत आलेले किल्ले जिंकून घेऊन राज्याचें संघटन केलें. धर्मांतर केलेल्या सरदारांना परत हिंदुधर्मांत घेणें, सैन्यांत हिंदूंच्याबरोबर मुसलमानांनाहि दाखल करून घेणें, राज्यकारभारांत सर्व जातीच्या लोकांना स्थान देणें, जहागिरी आणि अिनामें कोणालांहि न देण्याचा नियम करून राज्य बळकट करणें, चांगल्या लेकांच्या शिफारशीनें आलेल्या निग्रावान् लोकांनाच फौजेत आणि राज्यकारभारांत घेणे-अशा प्रकारच्या मार्गांनी शिवाजीनें आपलें राज्यतंत्र संघटित, बळकट आणि कार्यकुशल (efficient) बनविलें आणि हळूहळू आपलें नौकासैन्यहि अुभे करून व्यापार वाढविण्याचा प्रयत्न केला.

शिवाजी महाराजांचा अितिहास पाहिला असतां ते आपल्या काळाच्या पुष्कळ पुढें होते हें स्पष्ट दिसून येतें. प्रत्येक काम वेळेवर झालेंच पाहिजे, ठरविंलेली योजना ठरलेल्या क्रमाने पार पडलीच पाहिजे, होत असलेला खर्च हिशेबाच्या आणि प्रमाणाच्या बाहेर जातांच कामा नये, हुकुमाच्या अंमलबजावणींत थोडीशीसुद्धां चूक होतां कामा नये, या सर्व बाबतींत शिवाजीची चिकाटी जवळजवळ अंग्रजांसारखी होती. राज्य चालविण्यासाठीं अखंड द्रव्यबळ आणि मनुष्यबळ पाहिजे हें शिवाजीमहाराजांना चांगले माहीन होतें, आणि म्हणून आपलें सगळें बळ खर्चून त्यांनी या दोहोंचा पुष्कळ संग्रह केला होता. शिवाजीचा मुलगा संभाजी

यानें बापाच्या या हरेक प्रकारच्या क्रमाओचा पुष्कळ नाश केला तरीमुद्दां राजारामाच्या वेळीं महाराष्ट्र, जातीनें येथून लहगान्या औरंगजेबाशीं अडरा वर्षे झुंजला, अितकेंच नव्हे तर शेवटीं या सम्राटाचा त्यानें बळी घेतला आणि आपलें समवायतंत्र ( अनेक स्वायत्त समूहांचें ऐकत राज्यतंत्र—फेडरेशन ) त्यानें स्थापन केलें. हीं अेकच गोष्ट शिवाजीच्या योग्यतेचा भरपूर पुरावा आहे.

शिवाजीच्या अंका सरदारानें, त्या वेळच्या रिवाजाप्रमाणें लढाओच्या लुटीन कल्याणच्या सुभेदाराच्या खुबसूरत मुनेला पकडून आणून शिवाजीला नजर म्हणून अर्पण केली. पण तरुण शिवाजीनें मनांत कसलेंहि पाप न आणतां तिला बहिण समजून भावाची भेट म्हणून दोन गांवें अिनाम दिली आणि मन्मानानें परत पाठविली. त्या युवतीचें रुरलावण्य पाहून शिवाजी अेवढेंच म्हणाला, ‘ माझी आओ अितकी खुबसूरत असती तर मीहि खुबसूरत झालों असतों. ’

शिवाजीच्या आओनें रामायण—महाभारतांनील आदर्शांचें शिक्षण आपल्या मुलाला दिलें होतें, आणि धर्मासाठीं जगावें आणि धर्मासाठीं मरवें अशा प्रकारची शिक्षणहि तिनें त्याला दिली होती. शक्ति—अुपासक शिवाजीनें देशाची धर्मशक्ति झळझळीत केली आणि हिंदुस्थानापुढें अेक अुच्च अुज्ज्वल आदर्श ठेवला. अन्यायाशीं झगडणें आणि कोणत्याहि परसंगीं धैर्य खचूं न देणें, हा त्याचा जीवनमंत्र होता.

२५-५-३८.

# शिवाजीजयंती

फाल्गुन वद्य ३

१ दिवस.

[ गुजरातचा आणि महाराष्ट्राचा संबंध तुटण्यासारखा नाही. जसे महाराष्ट्रांत गुजराती वसले आहेत तसे गुजरातांतहि महाराष्ट्रीय कायम झालेले आहेत. महाराष्ट्र हा अतिसुप्रिय आहे. त्यानें गणेशचतुर्थीसारख्या कित्येक सणांना मोठें सामाजिक आणि राष्ट्रीय स्वरूप दिलें आहे. हे सारे सण गुजरातेन चालूं शकणार नाहीत. पण महाराष्ट्रीयामाठीं अेक सण ठेवून तो गुजरातीयांनी आणि महाराष्ट्रीयानीं मिळून साजरा करावा हें अिच्छिण्याजोगें आहे.

शिवाजीजयंती साजरी करण्यांत विशेष अर्थ आहे. अंगरज अितिहासकारांनी शिवाजीला गुजरातेचा वैरी दाखविला आहे, ही छाप धुवून काढण्यामाठीं आणि महाराष्ट्रांतील रामदासासारख्या साधुसंतांचें स्मरण करण्याकरितां फाल्गुन वद्य ३, हा दिवस निश्चित करावा. ज्ञानेश्वर, अेकनाथ, तुकाराम, नामदेव, जनाबाआं मुक्ताबाआं वगैरे महाराष्ट्र संतांचें तर्पण याच दिवशीं करतां येतील. हा सण साजर. करण्यांत महाराष्ट्रीयानांचा सल्ला आणि मदत खुशाल घ्यावी. पण त्याचा पुढाकार गुजराती लोकांनीच घ्यावा हें अुत्तम. रामदासांचा आणि ज्ञानेश्वरांचा परिचय गुजरातींत होअूं शकेल. अितर साधुसंतांविषयी या सणाच्या अनुषंगाने थोडीफार माहिती मिळाली, त्यांच्या कवितांचा गुजरातींत अनुवाद झाला तर साहित्यांत तेवढी भरच पडेल.

या दिवशीं सर्व प्रकारचे मर्दानी खेळ ठेवावेत.

—मूळ गुजरातीवरून. ]

फर्ग्युसन कॉलेजमध्ये महाराष्ट्रीय मंडळी शिवाजी-अुत्सव करीत असत. पुढे १९०६-०७ ची राष्ट्रीय चळवळ सुरू झाली तेव्हां या अुसवाला सर्व प्रांतांच्या विद्यार्थ्यांचा समावेश होअूं शकेल असे राष्ट्रीय स्वरूप आम्ही दिले.

पुढे जेव्हा गुजरातमध्ये वास्तव्य झाले तेव्हा शिवाजीअुत्सवाच्या वेळीं अेक गोष्ट दिसून आली कीं शिवाजीनें सुरत शहर लुटलें आणि पेशव्यांनीं आपल्या सरदारांच्या मार्फत गुजरातवर दरारा बसविला, याचा तेथील लोकांच्या मनावर जो परिणाम झाला आहे त्याचा विचार करूनच तेथील शिवाजीअुत्सव चालविला पाहिजे. या प्रयत्नाला यश येऊन शिवाजी-अुत्सव महाराष्ट्रीयानीं सुरू न करतां गुजरातच्या लोकांनीं सुरू करावा व तो पुढें चालवावा आणि महाराष्ट्रीयानीं त्या अुत्सवांत प्रसन्नतेनें भाग घ्यावा असा रिवाज सुरू केला. त्याला अुद्देशूनच वरील लेख लिहिला होता. आज देशांत जेव्हा हिंदुमुसलमानांची तेढ वाढली आहे अशा वेळीं जर या तेढीच्या दृष्टीनेंच आपण शिवाजी - अुत्सव चालवूं लागले तर शिवाजीचे जीवनकार्य आपण पूर्णपणें ओळखलें नाहीं असेंच म्हणावें लागेल.

शिवाजीला राज्य स्थापन करायचें होतें, स्वतंत्र व्हायचें होतें, अन्यायाचा प्रति-कार करायचा होता, स्वजनांची भरभराट ढाळ्यांनीं पहायची होती; मुसलमानां धर्माचा त्याला द्वेष नव्हता, मुसलमानांना समाजाचा अुच्छेद करण्याचा त्याचा हेतु नव्हता. त्याला हिंदूमधील जातिद्वेष, फूट आणि जहागीर-निष्ठा वगैरे दोष दूर करायचे होते. या दृष्टीनेंच आपणहि शिवाजी-अुत्सव साजरा केला पाहिजे. महाराष्ट्रांतील सर्व जातीच्या लोकांना अेकत्र करून सर्वांचा सामुदायिक अुत्सव करणे व असा सामुदायिक अुत्सव करण्यासाठीं जी कांहीं अुदारता आणि सहिष्णुता दाखवावी लागेल ती दाखविणे हे आपलें मुख्य काम आहे. शिवाजी-अुत्सव हा शिवाजीसाठीं नसून आपल्यासाठीं आहे हे ध्यानांत ठेवून अुत्सव केला पाहिजे. यासाठीं खालील गोष्टी करण्याजोग्या आहेत.

( १ ) शिवकालीन साहित्याचा संग्रह पुष्कळ झाला आहे, आणि पुष्कळ होण्यासारखा आहे. परंतु हे सर्व साहित्य अितिहाससंशोधकांखेरीज अितर लोक फारसे वाचत नाहींत. या साहित्यापैकीं अुद्बोधक भाग अेकत्र करून त्याचीं पारायणे करणे हा अेक सुंदर कार्यक्रम होईल.

( २ ) शिवकालीन घडामोडींचा अितिहास आण नेहमीं वाचतो, पण शिव-

कालीन राज्यव्यवस्थाकशी होती, समाज व्यवस्था कशी होती, शिवाजीचें सैन्य कसे बनलें होतें वगैरे गोष्टी तरुण पिढीपुढें अधिकाधिक आल्या पाहिजेत. याविषयी काल्पनिक वर्णनें न लिहितां ऐतिहासिक पुराव्यानिशीं लिहिलेले निबंध तयार कराविले पाहिजेत.

( ३ ) शिवाजीच्या इतिहासांत प्रसिद्धीस आलेलीं स्थाने, तीर्थक्षेत्रे, किल्ले, देवळे वगैरेची यात्रा करणें हां अेक महत्त्वाचा कार्यक्रम या उत्सवांत असलाच पाहिजे.

( ४ ) शिवाजीप्रमाणेच ज्यांनीं राष्ट्राधाराचें कार्य केलें आहे अशा देशदेशांतरांतील स्वराज्यसंस्थापकांचा इतिहास देऊन असे राष्ट्रपुरुष कसे निर्माण होतात आणि संस्कृतावर त्यांचा काय परिणाम होतो याचा अूढापोढ शिक्षणसंस्थांतून झाला पाहिजे.

( ५ ) शिवाजीच्या वेळीं आणि राजारामाच्या वेळीं आपले जे सामाजिक दोष नजरेस आले आणि धर्माच्या बाबतींतील जी संकुचित वृत्ति आपल्याला नडली त्याचें विवेचनहि या दिवशीं समाजापुढें निर्भयपणें मांडलें पाहिजे.

( ६ ) पोवाडे आणि भालाबोथाटी यांचा कार्यक्रम ठेवून आपण पाहिला, त्याला घायचें तें पोटसाइनहि दिलें; आतां तो कार्यक्रम कालग्रस्त झाला आहे असें समजून त्याच्याऐवजीं संघव्यायाम, कवायत वगैरे नवीन पद्धतीच्या गोष्टी सुरू केल्या पाहिजेत.

शिवाजीच्या जीवनाकार्याचें यथार्थ आकलन करून घेऊन तत्कालीन निरनिराळ्या प्रसंगावर साध्या भारदस्त भाषेत आणि अगदीं नवीन प्रकारच्या चालींत नवे पोवाडे झाले पाहिजेत, कारण पोवाडे म्हणजे जनतेचा दीक्षांमंत्र होय.

( ७ ) शिवकालीं ज्याप्रमाणें अुत्कृष्ट सैनिक तयार करण्याच्या शाखा गांवोगांवीं असत त्याचप्रमाणे बाळ्यांची आणि तट्ट्यांची अवलाद सुधारण्यासाठीं सतत प्रयत्न चालू असे. त्याविषयीचे ऐतिहासिक अुल्लेख शोधून काढीत बसण्यापेक्षां आपल्या अुत्सवांत फेरफटका करण्याचे कार्यक्रम ठेवले तर विशेष फायदा होईल. महाराष्ट्रांत जिकडे तिकडे ' मोटरबशी ' चालवून आपण महाराष्ट्रीय संस्कृतीच.



जितका नाश केला आहे तितका अंगरजी शिक्वणानेंहि झाला नसेल. या डोंगराळ मुलुखांत घोडा हाच मनुष्याचा साथीदार अमावयास पाहिजे होता; त्याच्याऐवजी पुण्याच्या आसपास खेडेगांवांत सायकलींचा सुळसुळाट झालेला पाहून देखील महाराष्ट्रीय संस्कृतीच्या अभिमान्यांचें चित्त अस्वस्थ होत नाहीं यावर अलाज शिवजयंतीच्या द्वारां केला पाहिजे.

( ८ ) शिवाजीसंबंधीं नाटकें लिहून नाट्यप्रयोग करण्याच्या पद्धतींतदेखील फारच मोठा फेरफार केला पाहिजे. मुसलमानांचा द्वेष करणें सोपें आहे, पण तसें करण्यापेक्षां त्यांना ओळखण्याचा प्रयत्न केला तर तो अधिक फायदेशीर होईल. विद्रूप चित्रें रेखाटण्यानें स्वकीयांचें शिक्वण विघडतें. त्यांना सत्यज्ञान नसतें आणि म्हणून सामर्थ्य कपीण होतें.

---

# परमभागवत-ऐका

: : ४६

फाल्गुन व० ६

१ दिवस

अयाचित दानवृत्तीनें राहाणाऱ्या गृहस्थाश्रमी ब्राह्मणसमाजाचे एकनाथ हे अत्कृष्ट प्रतिनिधि होते आणि म्हणूनच या समाजावरुंबी ब्राह्मणाने दाखविलेले सुधारकी नीतिधैर्य लोकोत्तर म्हणावे लागेल.

गुरुचें अुपास्यदैवत निराळे आणि गुरुनिष्ठ शिष्याचें अुपास्यदैवत निराळें असा अद्भुत प्रकार ऐकनाथाच्या जीवनांत सांपडतो. हिंदुधर्मातील साधनाक्रम किती अुदार आहे याचें हें अत्कृष्ट अुदाहरण आहे. जगांतील कोणत्याहि धर्माच्या भित्तिहासांत असलें अुदाहरण क्वचितच सांपडेल. ऐकनाथांच्या जीवनांत काय आणि लेखनांत काय सर्वत्र अत्कटता दिसून येते. जी बाजू रंगवितील तिच्याशीं अगदीं तदाकार होअून रंगवितील, मार्गपुढें पाहाणार नाहीत.

ऐकनाथ गुरुगृही गेलें. गुरूनी त्यांना शिक्याखाली जेवावयाला बसवून त्यांची प्रवेशपरीक्षा घेतली. अुद्देश-प्राप्तीची ऐकाग्रता अथवा साधननिष्ठा ऐकनाथांत आहे असे दिसल्याबरोबर जनार्दनपंतांनी त्याला जवळ केलें आणि त्याला व्यवहाराचीच कामे सांगितलीं. हा मुलगा एक पैची देखील चूक सहन करणार नाही अशी खात्री झाल्यानंतर त्यांनी त्याला अध्यात्मज्ञानाची ओळख करून दिली, अितकेंच नव्हे तर अुपास्यदैवतेचें दर्शनहि करवून दिलें.

हिंदुधर्मांमध्ये अमेदभक्तीचें माहात्म्य सांगितलें आहे. भक्त आणि अीश्वर यांचेमधील अमेद अनेक संतांनी आपलासा केला आहे, पण शिष्याने गुरूशीं अमेद केलेला अशी अुदाहरणे थोडीं आहेत. आपण जें काहीं लिहितों तें गुरूच आपल्या-मार्फत लिहीत आहे, जनार्दन आणि ऐका यांच्यामध्ये अैक्य आहे असें सांगणाऱ्या आणि अनुभवणाऱ्या ऐकनाथाचें अुपास्यदैवत भिन्न असावें आणि जनार्दनांनी त्याला ह्याच्या अमिरुचीप्रमाणे भिन्न अपास्याची दीक्षा द्यावी हें खरोखर आश्चर्यकारक आणि समाधानकारक आहे.

अभेदभक्तीमध्ये मुरलेल्या ऐकनाथाला 'अंत्यजंतो कडे घेतांना' संकोच कां म्हणून वाटावा, आणि शराद्धाचे अन्न भुकेल्या हरिजनांना समर्पण करतांना अधर्म कसा दिसावा? सनातन हिंदु समाजाने हिंदुधर्माचा जितका द्रोह केला आहे तितका तो अितरांनी केला नसेल.

ऐकनाथ हृदयधर्म समजत असत, पाळीत असत, आणि शास्त्रांचा अर्थ हृदयधर्माला विचारूनच करीत असत. जे काम व्यास—वाल्मीकींनी केले—धर्मप्रचारांतील अधिकारवाद काढून टाकला—तेच काम ज्ञानदेव आणि ऐकनाथ यांनी संस्कृत ग्रंथांतील हार्द स्वभाषेत आणून केले. आणि हे दोघे महाराष्ट्र-संत स्वतः ब्राह्मण असल्याने यांच्या कार्याचे महत्त्व विशेष आहे.

संस्कृत विद्येला मराठी पोशाख चढविणाऱ्या या ल्यूथरला काशीच्या पंडितांनी आपल्या धर्मासनापुढे जाव देण्यासाठी बोलाविले. पण शेवटी त्यांना ऐकनाथांचा गौरवच करावा लागला.

महाराष्ट्राच्या धार्मिक शिक्षणांत ऐकनाथी भागवताला चांगलेच महत्त्वाचे स्थान द्यावे लागेल. भाषेच्या दृष्टीने देखील 'नाथभागवत' म्हणजे मराठीच्या साम्राज्यातील एक मोठा समृद्ध प्रांत आहे. रुढीधर्माविषयी अुदासीनता, सदाचार-पालनाचा आग्रह, धर्मप्रचाराची कळकळ आणि अभेदभक्ति हे महाराष्ट्र-संत-धर्माचे खरे स्वरूप आहे. ते ऐकनाथामध्य पूर्णपणे प्रतिबिंबित झालेले दिसून येते.

## नाथषष्टि

फागुन व. ६

नाथषष्टि हा दिवस अनेक रीतींनी महत्त्वाचा झाला आहे. त्या दिवशी श्रीजनार्दनस्वामीचेहि स्मरण केले पाहिजे आणि नाथांच्या शिकवणुकीला देखील अजळा दिला पाहिजे.

बंगालकडे चैतन्यसंप्रदायाची भक्ति, मध्यदेशांतील रामानंद संप्रदायाची भक्ति, पंजाबांतील शीख संप्रदायाची भक्ति, गुजरातमधील वल्लभपंथाची भक्ति महाराष्ट्रांतील पंढरपुरी संतांची भक्ति आणि दक्षिणेकडील अळवारांची भक्ति या सर्वांचा संग्रह करून त्यांची तुलना केली पाहिजे, आणि दरेक प्रकारच्या समाजावर त्यांचा बरावाओट काय परिणाम झाला ते तपासले पाहिजे; आणि मग अेखाद्या नवीन नारदाने नव्या प्रकारची भक्तिसूत्रे लिहून काढली पाहिजेत. नाथपंथाच्या दिवर्शां भागवत धर्माचा झुहापोह केला पाहिजे. न्या. रानड्यांची थोडी बहुत मदत होईलच.

---

## प्रेमवीर ब्रह्मचारी

: : ४७

[ डिसेंबर २५ ]

प्रेममूर्ति भगवद्भक्त ब्रह्मचारी ओशूनें ओश्वराची अेक अद्भुत विभूति प्रगट केली आहे. बुद्ध भगवानाप्रमाणेच ओशूचें जीवनाह करुणगंभीर आणि सुदात्तकोमल आहे. अेक सुताराचा अशिषित्त मुलगा आपल्या काळच्या साधुपुरुषांना आणि धर्माचार्यांना प्रश्न विचारविचारून स्वतंत्रपणें धार्मिकता अंगां आणीत गेला आणि कवळ इरद्धेनें आणि ओश्वरकृपेनें ओश्वरपरायण भक्त बनला. ओश्वर सर्वशक्तिमान आहे असें सर्वचजण बोलत होते, पण ओश्वर कषमावानू आहे अितकेच नव्हे तर सर्वेमह आहे हें ओळखणाऱ्या सत्पुरुषांतमुद्धां ओशूचें स्थान कांहीं निराळेंच आहे. ब्रह्मचर्याचें माहात्म्य अेळखून हें रसायन ( जराव्याधि दूर करण्याचें औषध ) सिद्ध करणारे तपस्वी पुष्कळ झाले आहेत. पण ब्रह्मचर्य ज्यांना सहजसिद्ध होतें अशा सत्पुरुषांतमुद्धां ओशू विशेषत्वानें नजरेपुढें येतां कारण त्या ओश्वरी प्रसादाचा त्याला अहंकार नव्हता. तो म्हणें ब्रह्मचर्य हें ओश्वरानें ज्याला दिलें असेल त्यालाच सहजसिद्ध जाहें. अितरांनीं लोखंडाचे चणेच खावे. कोणा अेखाद्या ब्रह्मचाऱ्यानें स्त्रीजातीच्या अुद्धारासाठीं आपलें हृदय पिळून काढलें असेल तर तें अेक ओशूनेंच. अितकी अुत्तमता त्याच्या युगाला पचवितां आली नाहीं म्हणून ज्या अपराधासाठीं सोंकरेठिसाला देहांतशासन मिळालें त्याच अपराधाबद्दल प्रभुपुत्र ओशूला करूसावर चढावें लागलें. अनेक अवतारी पुरुषांनीं आपापल्या शिष्यांना आणि भक्तांना भाक्नधर्माची दीक्षा दिली आहे. आशूनें आपल्या श्रावकांना आणि अनुयायांना केलेल्या अुपदेशांपैकीं जे चार दोन संग्रहित केले गेले आहेत त्यांचा परिणाम, हजारो वर्षे झालीं, कोठ्यावधि लोकांवर झाला आहे. अशां कारुण्यवीराच्या नांवानें अेक स्वतंत्र धर्म स्थापला जावा हें अेकप्रकारें दुर्दैवच म्हणावचें. त्याच्या अनुयायांनीं स्वतंत्र धर्म स्थापून रिगस्ताच्या अुपदेशाची व्यापकता मर्यादित केली आहे असे वाटल्यावांचून राहात नाहीं. तें कांहींहि असो.

सर्वच धर्माच्या लोकांनी आजच्या ख्रिस्ती म्हटल्या जाणाऱ्या लोकांकडे न पाहतां हिस्ताच्या जीवनाकडे, उपदेशाकडे आणि बलिदानाकडे पहावे, आणि त्या उपदेशाप्रमाणे वागणाऱ्या संतांच्या जीवनाकडे पहावे.

हीच दृष्टि अितर धर्माविषयी ठेवणेहि अिष्ट आहे.

९-६-३८

## नाताळ

डिसेंबर २५

१ दिवस.

हिंदूदेवीच्या दरबारांत प्रत्येक धर्मांश, पंथाला आणि मताला स्थान आहे. हिंदुधर्माचा कोणत्याहि धर्माशी विरोध नाही. 'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः' ही वृत्ति हिंदुधर्माच्या हाडांतच आहे.

त्यागी, ब्रह्मचारी, भगवद्भक्त, निष्ठावीर ओशु ख्रिस्ताची जयंतीहि आपण अवश्य साजरी करावी, अर्थात आपल्या पद्धतीने साजरी करावी. हिंदुधर्मात सद्गुरूच्या उपासनेचा जो मार्ग आहे, 'यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ' \* ची जी वृत्ति आहे, तिचेंच अेक स्वरूप हा ख्रिस्तीधर्म आहे. या दिवशीं ओशूचें गिरिप्रवचन (Sermon on the Mount) वाचावें. आपल्या शेजारी कोणी दीन, दुःखी किंवा आजारी असेल तर त्याची सेवा करावी. ज्याच्याजवळ न्यून असेल त्याला कांहीं आपण द्यावें. ओशूच्या बलिदानाची हक्कित विद्यार्थ्यांना वाचून दाखवावी. ख्रिस्ती मित्रांना भेटली बालवावें. त्यांच्या येथें आपण जावें.

\* देवाच्या ठिकाणीं जितकी भक्ति तितकीच गुरूच्या ठिकाणीं.

## मोहरम

: : ४८

शिया आणि सुन्नी यांच्यांत कोणता मनभेद आहे, अस्लामी धर्मपुरुषांत हसन आणि हुसेन यांचे काय स्थान आहे, या बाबतीत हिंदूंनी अदासीन राहावे वाटले तर, पण आशियाच्या पश्चिम प्रदेशांत, अरबस्तानच्या पुण्यभूमीत धर्मा-प्रीत्यर्थ केवढे अपूर्व बलिदान करण्यांत आले आणि पैगंबरांच्या आज्ञा व उपदेश यांना अिमानदार राहाण्यासाठी धर्मनिष्ठ मुसलमानांनी काय काय सोडून दिले, किती सहन केले आणि संघर्ष झाल्यांत किती वहादुरीने क्वातरधर्माच्या सर्व अंगांचे पालन केले हे सर्व पहाणे आपल्या दृष्टीने महत्त्वाचे आहे. मोहरमचा सण हा अस्लामी बंधूंचा एक श्राद्धाचा दिवस आहे. आणि अस्लामच्या मोठ्यांत मोठ्या शहीदांचे ( हुनात्म्यांचे ) स्मरण करून देण्याची शक्ति या सणांत आहे. आपले अस्लामी बंधू मोहरमांत अका जुन्या प्रसंगामधून धर्मनिष्ठा मिळवितात, आणि तितक्या अंशानी भारतवर्षाच्या धर्मनिष्ठेंत भर टाकतात. हिंदुस्थान ही धर्मभूमि आहे. तिच्यामध्ये प्रत्येक जमात जितक्या अंशानी धर्मनिष्ठा अंगी बाणवून घेतील तितक्या अंशानी या धर्मभूमीचीच शक्ति वाढेल.

३-९-२२

## मोहरम

१ दिवस

धर्मवीरांचा हा सण आहे. तावूनांत आपण जरी भाग घेऊं शकलो नाही तर धर्माच्या नांवाने जे कोणी प्राणार्पण करण्याला तयार होतात त्यांच्या चरित्रांमधून आणि मरणापासून आपल्याला अवश्य प्रेरणा मिळण्याजोगी आहे. अिमाम हुसेनाची कथा, खिलाफतीचा प्राचीन इतिहास आणि करबला येथील भीषण प्रसंग मुलांना आपण समजावून द्यावा. शिया आणि सुन्नी यांमधील भेदही मुलांना माहीत असावा. X

या दिवशी मुसलमान मित्रांना मुद्दाम भेटायला बोलवावे. त्यांच्याकडे त्या दिवशी पशुवध झाला नसेल तर मुद्दाम भेटायला जावे.

X मोहरमसंबंधी माहिती टीपत दिली आहे.

( वकर औद )

औश्वरभक्ति आणि कौटुंबिक मोह या दोहोंमध्ये परापूर्व काळापासून युद्ध चालत आले आहे. प्रत्येक धर्मात धर्मपालनार्थ कौटुंबिक मोहाचा नाश करणाऱ्या भक्तांची अनेक अुदाहरणे आहेत.

ऐकादशी व्रताची ऐक अशी कथा आहे की राजा रुक्मांगदाने आपल्या आवडत्या राणीला ऐक वरदान दिले होते. राजा परमवैष्णव होता आणि तो ऐकादशीव्रत करीत असे. राणीने राजाजवळ वरदान मागितले की व्रत मोडून ऐक भोजन तरी करा, नाहीतर आपल्या आवडत्या पुत्राचा वध करा. व्रत मोडणे राजाला अशक्य होते. पितृभक्त पुत्राने राजाला आग्रह केला की वचन पाळण्यासाठी माझा तुम्ही वध करावा हेच योग्य; मी मरायलातयार आहे. राजा शस्त्र अुगारतो भितक्यांत भक्तवत्सल भगवान विष्णू वरच्यावरच त्याचा हात धरून ठेवतात.

स्त्रीपुत्राला दिकून टाकणारा हरिश्चंद्र आणि मीतेचा त्याग करणारे रामचंद्रहि याच कोटीचीं माणसें होअून गेलीं. धन्याच्या पुत्राचे रक्षण करण्यासाठी स्वतःच्या मुलाचे बलिदान करणारी पन्नाहि याच भक्त कोटीतील होती.

अशाच ऐका भक्तराजाचे स्मारक म्हणून मुसलमान लोकांमध्ये वकरऔदचा सण प्रचलित झाला. हा सण महंमद पैगंबरांनी सुरू केलेला नाही. पैगंबरांच्या पूर्वीच्या धर्मांमधून घेतलेला असल्यामुळे तो पुष्कळ प्राचीन आहे.

औश्वरनिष्ठ अब्राहिमला दोन मुलगे होते. त्यांतल्या लहानाचे नांव अिस्माअिल. पित्याचे अिस्माअिलवर अपलेले विशेष प्रेम पाहून सैतान औश्वराला, म्हणाला, ‘बघितली तुझ्या भक्ताची भक्ति’ ! तुला वाटते की हा आपला भक्त आहे, पण हा आहे मात्र पुत्रभक्त ! बघ, मुलामार्गे किती पागळ झाला आहे. तो ! ‘ अब्राहिमच्या स्वप्नांत येअून औश्वराने त्याला कुरबानी करायला सांगितले. कुरबानीचा कायदा असा आहे की जी वस्तु अपल्याला अत्यंत प्रिय असेल, जी



आपण बहुमोल मानीत असूं तीच कुरबान केली पाहिजे, अब्राहिमने दुसऱ्या दिवशी गायीची कां बकऱ्याची कुरबानी केली. पण पुनः तसेंच स्वप्न पडलें कां कुरबानी कर. त्यानें जास्ती बलिदान केलें तरी पुनः आपलें तेंच स्वप्न ! त्यानें नम्र होऊन ओश्वराची प्रार्थना केली आणि विचारलें, ओ मालिक, तुला कोणाची कुरबानी पाहिजे?, ओश्वरानें सांगितलें ' तुझ्या लाडक्या मुलाची. '

भक्तदृष्टेष्ट अब्राहिमच्या हृदयावर जेवडासामुद्धां आघात झाला नाहीं. त्यानें ओश्वराला सर्वस्व अर्पण केलें होतें. दुसऱ्या दिवशीं मुलाला घेऊन भक्तराज कुरबानीच्या जागीं जायला निघाला. सैन्यानें आलीला आणि मुलाला फुसलावण्याचा प्रयत्न केला, पण या प्रेमळ कुटुंबांत ओश्वरभक्ति अतिकां कांहीं दृढ होती कां तिघांतून एकजणसुद्धां मोहवश झालें नाहीं. बापानें मुलाच्या मानेवर सुरी ठेवली, पण ओश्वरानें त्याला थांबविलें आणि अस्माअिरुच्या बदलीं खेळाया पशूचीच कुरबानी मान्य केली. अब्राहिम, अस्माअिरु आणि अस्माअिरुचा माता तिघांची परीक्षा पुरी झाली आणि सैतान फजित पावला.

या अस्माअिरुच्या वंशांतच अस्लामी धर्माचे देवदूत जे महंमद पैगंबर त्यांचा जन्म झाला.

अशा या अद्भुत परसंगाच्या स्मरणार्थ अस्लामी बंधू बकर-ओदच्या दिवशीं कुरबानी करतात. कौटुंबिक मोह टाकून देऊन शुद्ध ओश्वर-भक्ति करणे, कर्तव्यापुढें मोहाचा नाश करणे हेंच धार्मिक तत्त्व या सणांत अंतर्भूत आहे. तें तत्त्व जितकें अस्लामला प्रिय तितकेंच अितर धर्मांनाहि प्रिय आहे. स्वार्थ, मोह, लोभ या सर्वांचा नाश करण्याकरितां आपली आणि आपल्या गिऱ्या वस्तूची कुरबानी करणे हीच खरी धार्मिकता आहे. हाच महान यज्ञ आहे. त्याचे स्मारकचिह्न म्हणून प्रत्येक धर्मांत बलिदानाची प्रथा प्राचीन काळापासून चालत आलेली आहे. पण जसजशी जीवदया आपल्यांत वाढत गेली तसतशा या बलिदानामधून बाह्य वस्तू ऐक्येक आपण कमी करीत आलों. नरमेघ आपण सोडला, अश्वमेघ सोडला मांसाचा नैवेद्य सोडला, अणि शेवटीं रेडा किंवा बकरा बळी देण्याऐवजीं मुहदाच्या पिठाचा पशु वनवून त्याचे बलिदान आपण करूं लागलों. शेवटीं कोढाळा

आणि नारळ फोडूनच आपण संतोष मानू लागलो. पण बलिदानाची कल्पना आपण जागृत ठेवली आहे. जे मांसाहारी आहेत ते बलिदान देतांना पशु अर्पण करतात. हे आश्चर्यकारक किंवा अयुक्त नाही. आपण पशुहृत्येचे पाप ओळखून मांसाहार सोडला म्हणून पशूंचे बलिदानहि सोडले.

हिंदुस्थानांत दयाधर्म आहे. जैनांत आहे तसा तो अितर हिंदूंतहि आहे; आणि हिंदुलोकांत आहे तसाच मुसलमानांतहि आहे. या दयाधर्मावर आपण विश्वास ठेवला तर त्याचा परिणाम सार्वत्रिक झाल्यावांचून राहाणार नाही. मुसलमान बंधू नेहमी हिंदूंची भावना दुखविण्याकरितां म्हणूनच गोवध करतात ही कल्पना चुकीची आहे. ती जर आपण सोडून दिली तर आपण न सांगतां, कसल्याहि प्रकारच्या अटी न घालतां किंवा कायदे पास न करतां मुसलमान लोक यथाकाळीं गोवध सोडून देतील. मुसलमान समाजांत खानदानी आहे. शेजारधर्माचे पालन करण्याकरितां त्यांनी आजपर्यंत असंख्य वेळां आपला प्राण संकटांत घातला आहे आणि अनेकवेळां सर्वस्व गमावून ते बरबाद झाले आहेत. मुसलमान लोकहि आपल्यापरमाणेंच शेतीवर निर्वाह करतात, आपल्यापरमाणें त्यांचेहि आपल्या ढोरांवर प्रेम असते. गोऱ्या लोकांप्रमाणें गोमांस ही त्यांनी नित्याच्या आहाराची वस्तु बनविलेली नाही. गोरक्षणाच्या बाबतींत मुसलमान हे आपले शत्रू नाहीत, मित्र होण्याची शक्यता आहे. अस्लामवर आपण विश्वास ठेवला तर हिंदुस्तानांतच नव्हे तर अस्लामी जगांतहि त्यांच्या मदतीने आपल्याला गोरक्षण करतां येतील.

बकर-ओद हा सण ऐक्या अिब्राहिमचे आणि त्याच्या स्त्रीपुत्रांचे स्मरण करण्याचाच सण नव्हे. आजपर्यंत धर्माच्या नांवाने ज्यांनी आपलें सर्वस्व अर्पण केले आहे अशा सर्व धर्मवीरांचे या पवित्र दिवशीं आपण स्मरण करावे. हिंदुसुद्धां जर बकर-ओदच्या दिवशीं या भक्तराजाचे स्मरण करतील तर त्यांची धार्मिकता वाढल्याशिवाय राहाणार नाही, आणि बकर-ओदचा सण हा हिंदुस्ता. नांतील राष्ट्रीय ऐक्य नष्ट करण्याऐवजी ते वाढतील. जिल्हेजची दहा तारीख ही जशी अिब्राहिमचे स्मारक म्हणून आहे तशी खिलाफत व स्वराज्य यासाठी हिंदु आणि मुसलमान ऐक झाले याचेहि ती स्मारक होऊन राहिल. अिब्राहिमसारख्या

पवित्र पुरुषाचा स्मारकदिन हिंदुमुसलमानांमधील झगड्याने आपण विटाळू नये अेवढी काळजी धार्मिक वृत्तीचे हिंदुमुसलमान अवश्य घेतील, अशी आपण आशा बाळगू. अेकामेकाच्या खऱ्या हृदयाची ओळख झाल्यानंतर तंट्याचे मूळच राहाणार नाही.

६.८.२२

## बकर ओद

### १ दिवस

आब्राहामच्या प्राचीन धर्मातील हा सण आहे. बलिदानाचा महिमा समजावून देण्यासाठी मुसलमानांच्या नबीसाहेबांनी त्याचे महत्त्व वाढविले. पशूंना मारण्याची दैस म्हणून कांहीं हा सण ठेवलेला नाही ; तर स्वःला अत्यंत प्रिय असणारी वस्तु ओश्वराला अर्पण करण्याअितर्के मन तयार व्हावे यासाठी या सणाचे प्रयोजन आहे या दिवसाची गोष्ट मुलांना सांगण्यांत यावी.

( २६ जानेवारी )

सन १८५७ च्या प्रयत्नानंतर राणी व्हिक्टोरियाने एक गोड ज'हीरनामा प्रसिद्ध केला आणि कंपनी सरकारचे राज्य आपल्या ताब्यांत घेतले. तेव्हापासून सुशिक्षित हिंदुवासीयांमध्ये ब्रिटिश साम्राज्याविषयी आशा उत्पन्न झाली आणि अंगरेजांचे राज्य स्वीकारून त्या कृपाछत्राखाली आपल्या राष्ट्राचा विकास होऊ शकेल अशी श्रद्धा त्यांनी धारण केली. या श्रद्धेच्या पायावरच हिंदी राष्ट्रीय महासभे (काँग्रेस)ची स्थापना झाली. काँग्रेसचा संबंध अतिहास म्हणजे ही धारण केलेली श्रद्धा हळू हळू कशी वितळत गेली या प्रक्रियेचाच अतिहास होय.

या प्रक्रियेच्या समाप्तीचा प्रारंभ गांधीजींनी नागपूर काँग्रेसच्या वेळेला केला. साम्राज्यांतर्गत स्वराज्य ही जुनी शब्दावली त्यांनी काढून टाकली आणि 'स्वराज्य' अश्याच सुटसुटीत शब्द वापरला. पण राज्यकर्त्यांना त्या शब्दांतहि येथे राहावयाला कांही अवकाश होना. पण त्यांच्या चुकांमुळे तोहि अवकाश त्यांनी घालविला. सन १९२९ साली रावी नदीच्या तीरी काँग्रेसने स्वातंत्र्य अथवा पूर्ण स्वराज्य हेच आपले ध्येय आहे असे जाहीर करून स्वतःचे राजकीय मुख उज्ज्वल केले. या ठरावाचे माहात्म्य स्वतंत्रतेच्या प्रतिज्ञेत सामावलेले आहे. हिंदुस्थानचे स्वातंत्र्य कवळ राजकीय नसून ते आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, आणि आध्यात्मिकहि आहे आणि या सर्व बाबतींत ब्रिटिश राज्य शापरूपच ठरले आहे असे त्या प्रतिज्ञेत घोषित करण्यांत आले. हिंदुस्थानाला 'मुकामिल आजादी' मिळवून देण्याचा संकल्प हा आपल्या राष्ट्राचा अत्यंत महत्त्वाचा दस्तऐवज आहे. दरवर्षी २६ जानेवारी दिवशी राष्ट्रातील आपण आबालवृद्ध स्त्रीपुरुष ठिकाठिकाणी जमून त्या संकल्पाची पुनरुक्ति करीत असतो, आणि त्या संकल्पाप्रमाणे अजूनहि आपल्याला पूर्ण स्वातंत्र्य नाही याचा विचार हृदयांत बाळगून प्रयत्नांची मात्रा वाढविण्याचा निश्चय करतो

महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, मौ. आझाद यांसारख्या राष्ट्रपुरुषांनी केलेली ही प्राणवान् प्रतिज्ञा प्रत्येक घरापर्यंत आणि झोपडोपर्यंत पसरल्यास त्यांत काहीं नवल नाही.

कलकत्याच्या काँग्रेसमध्ये राष्ट्रपितामह दादाभाऊ नवरोजींनी राष्ट्राचा सर्व त्वेष अकवटून अुद्गार काढले कीं ब्रिटिश सत्तेविरुद्ध बंड करावें अशी अिच्छा होते. लो. टिळक म्हणाले, कीं स्वराज्याचे हक्क मला देणारे हे लोक कोण ? स्वराज्य माझा जन्मसिद्ध हक्कच आहे आणि मी तो घेणारच. याच संकल्पाची पूर्णता आपल्या स्वातंत्र्याच्या प्रतिज्ञेमध्ये आहे. या संकल्पाच्या द्वारां राष्ट्रीय हृदय बोलत असते. अितिहास तिचा प्रतिध्वनि अुमटवीत अमतो. स्वातंत्र्याची प्रतिज्ञा करून राष्ट्राने कायाकल्प केला आणि त्यामुळे त्याच्या अंगप्रत्यंगामध्ये नवीन जोम आला.

आज स्वातंत्र्याचा अुपभोग घेणारे आपले वंशज एक पवित्र स्मृति म्हणून स्वातंत्र्याचा प्रतिज्ञेचा कितीतरी वर्षे पाठ करीत राहातील. फक्त तशा पाठांत आतां अंगिरजाविषयीचा रोष अुरणार नाही.

ता. २५ २-४७

## स्वातंत्र्यदिन

### २६ जानेवारी

या दिवशीं तिरंगी झेंड्याचे वंदन आणि स्वातंत्र्याच्या प्रतिज्ञेचा पुनरुच्चार हाच मुख्य कार्यक्रम असतो. याखेरीज अितर कार्यक्रम व्यक्तींनी किंवा स्थानिक संस्थोनी ठरवावयाचा नसून आपली राष्ट्रीय सभाच दरवर्षी ठरवीत असते. आपल्या विधायक कार्यक्रमाचा पुनरुच्चार त्या दिवशीं करून पुढल्या वर्षासाठीचा कार्यक्रमहि आंखणे हें या दिवसाचे काम आहे.

# गोखल्यांना श्रद्धांजलि ❀

: : ५१

(फेब्रुवारी ९)

आजचा दिवस हा श्राद्धाचा आहे. श्राद्ध म्हणजे श्रद्धेच्या योगाने भूतकाळाला जिवंत ठेवण्याचा अेक अद्भुत उपाम. गोखले हा लोक सोडून गेले त्याला आज सात वर्षे झाली आहेत, तरी अजून आपण त्यांच्याकडून पेरणा घेतो, स्फूर्ति घेतो, अखंडसेवेची दीक्षा घेतो, आणि अशा रीतीने त्यांना आपण आपल्यामध्ये जिवंत ठेवतो. १९१५ च्या फेब्रुवारीच्या १९ तारखेपर्यंत ते स्वतःच्या चैतन्याने जगत होते, आज ते तुमच्या आमच्या चैतन्याने जगू शकतात. आपल्यांत जेवढे चैतन्य असेल तेवढेच ते जगतील. गोखल्यांच्या जीवनाने आपल्यांत जे जीवन ओतले ते जर आपल्यांत जिवंत राहील तर गोखले हे अजूनहि जगतील ते जीवन आपल्यांत वाढेल तर गोखले चढतील. आणि जेव्हा ते जीवन आपल्यामधून निःशेष होऊन जातील तेव्हाच गोखले मरतील. आज आपण येथे जमून गोखल्यांचे श्राद्ध करीत आहोत. त्यांच्या द्वारां आपण म्हणत आहोत की भाग्यसेवक गोखले चिरंजीव होवोत !

कोणत्याहि माणसाचे जीवन पहा, त्यांत फेरफार होत जातातच. जीवन म्हणजे परिवर्तन. जीवन म्हणजेच प्रगति. प्रतिवर्षी, प्रतिदिवशी आणि प्रतिक्षणीं मनुष्याचा अनुभव वाढत जात असतो, मनुष्याची दृष्टि विशाल होत जाते आणि मनुष्याचे जीवन विकसित जाते. विद्यार्थी गोखल्यांच्यापेक्षां अध्यापक गोखले वाढले, अर्थशास्त्रज्ञ गोखल्यांपेक्षां नामदार गोखले श्रेष्ठ ठरले, नामदार गोखल्यांहून राष्ट्रनायक गोखले श्रेष्ठ झाले. अशा रीतीने गोखल्यांची श्रेष्ठता दिवसेंदिवस वाढतच गेली आहे. सामान्य लोक समजतात की मरणापर्यंतच मनुष्य वाढतो, पण हे चूक आहे. जिवंत गोखल्यांच्यापेक्षां राष्ट्राच्या हृदयांत वसणारे आजचे गोखले अनेक पटींनी श्रेष्ठ आहेत. जिवंत गोखले निजत होते, काम करून थकत होते, कंटाळत होते, वेळीं रागवतहि होते, पण आजचे गोखले-हृदयस्थ गोखले आदर्श आहेत.

❀ १९२२ च्या गोखलेमुन्यतिथीच्या निमित्ताने मुंबई भागिनीसमाजातुडे अर्पिलेली श्रद्धांजलि.

आजची त्यांची देशसेवा अमर्याद आणि अखंड आहे आणि दिवसेदिवस ती चढत जातील व विशुद्ध होत जातील.

ही शक्ति कोणाची आहे ? ही शक्ति श्राद्धाची आहे. श्राद्ध म्हणजे स्मृति नव्हे, श्राद्ध म्हणजे अतिहासाचे अध्ययन नव्हे, श्राद्ध ही अमृतसंजीवनी आहे. स्मृति दुःखरूप असते आणि दुःखाप्रमाणेच ती अल्पजीवी असते. दुःखाला जसा अंत असतो तशी स्मृतीसुद्धा पुसून जाते. दुःख जसे आपल्याला दुर्बल करते तशी स्मृतीहि आपल्याला करणार्ह करून सोडते. अतिहासाचीहि हीच स्थिति आहे. अतिहास चालत नाही, वाढत नाही. अतिहासाची स्थिरता मारक असते अतिहासांत जीवन असत नाही. अतिहास हा पुतळा आहे, तो फोटो आहे. नऊ वर्षांची बालिका जेव्हा प्रसन्नतापूर्वक हसते तेव्हा त्या हास्यांत किती अपूर्व चैतन्य, माधुर्य आणि पावित्य असते बरे ! पण त्याच हास्याचा फोटो काढा किंवा त्याची मूर्ति बनवा आणि पहा. त्याची स्थिरताच सर्व काही मारून टाकते. अतिहासाचेहि असेच आहे. अतिहास हा सत्याचे वर्णन स्थिर करून पहातो आणि त्यांतच तो असत्यरूप बनतो. अतिहास हे सत्याचे प्रेत आहे. अतिहास हा व्यक्तीचे आणि राष्ट्राचे स्वरूप स्थिर करून अक प्रकारे त्याला निर्जीव करून टाकतो.

श्राद्ध याहून वेगळे आहे. श्राद्ध मृत व्यक्तीला अमर करते. रामायण महाभारत हे काही अतिहास नाहीत, ते श्राद्ध स्वरूप आहेत. त्यामुळे हे राष्ट्रीय ग्रंथ युगानुयुगे राष्ट्रांत चैतन्य ओतीत आले आहेत. अतिहासांत ही शक्ति नाही. आपण वार्षिक श्राद्धाच्याद्वारां पूज्य व्यक्तीला दिवसेदिवस अधिकाधिक राष्ट्रीय बनवीत असतो. सन १८६६ पासून १९१५ पर्यंत जिवंत गोखले कसे होते याचे यथार्थ चित्र अतिहास खुशाल काढून ठेवो, आपल्याला त्याची पर्वा नाही. जे गोखले आज आपल्या हृदयांत आहेत त्यांचेच आपण दर्शन घेऊं, त्यांचेच स्मरण करूं, त्यांच्याचकडून देशसेवेची दीक्षा घेऊं. त्यावेळचे गोखले आपल्याला सांगत की जास्त पैसे घाचे लागले तरी स्वदेशी कपडाच वापरा. तेच गोखले आज हृदयांत प्रवेश करून आपल्याला सांगत आहेत की पैशाचा विचारच करू नका, खादीच वापरा. हृदयस्थ गोखले सांगतात की मी अर्थशास्त्राचा अध्यापक होतो, पण आज मी तुम्हांला सांगतो की धर्मशास्त्रापुढे अर्थशास्त्र शून्य आहे. जे धर्मशास्त्राच्या आधीन राहाते तेच खरे अर्थशास्त्र. खादी वापरणाऱ्या हिंदुस्थानाचे कधीहि आर्थिक अकल्याण होणार नाही; कारण खादीत धर्म वाहे.

सरयू नदीच्या कांठी राहाणाऱ्या रामाने काय केले, त्याचे जीवन कसे होते हे आपल्याला समजण्याला मार्ग नाही. आपल्याला त्याची गरजहि नाही. पण वाल्मीकीच्या प्रतिभास्रोतांत जन्माला आलेल्या आणि आर्यावर्ताच्या हृदयावर राज्य करणाऱ्या राजा रामचंद्रालाच आपण ओळखू अर्च्छितो; कारण ऐतिहासिक रामपेवषां वाल्मीकीच्या राष्ट्रीय रामानेच भारतवर्षाचे जास्त कल्याण केले आहे. शकुंतलेचे भावगम्य चित्र रेखाटत असतांना विरही दुष्यंताच्या मनांत शकुंतलेचे ध्यान जसजसे वाढत जाई तसतसा तो 'यद्यत्साधु न चित्रे स्यात्क्रियते तत्तदन्यथा' असे म्हणून त्यांत फेरफार करितच जात होता आणि तरी ते जसे शकुंतलेचेच चित्र राही, त्याचप्रमाणे आपण राष्ट्रीय पुरुषांच्या श्रद्धांत रीत असतो—त्यांची राष्ट्रीय आवृत्ति काढीत असतो.

असे करण्यांत जितका लाभ आहे तितकी जोखीम हि आहे. पवित्र पुरुषाची स्मृति हा अंक वास्सा आहे. त्यांत आपण भर टाकू शकतो तसा तो विघडवूहि शकतो. बहुमोल वारशाबरोबर मोठी जबाबदारीहि आपणांवर येऊन पडते आणि या जबाबदारीची जाणीवच आपल्याला प्रेरक आणि तारक झाली पाहिजे.

आजच्या श्रद्धाच्या दिवशी गोखल्यांच्याविषयी वास्तविक मी कांही सांगितले पाहिजे, पण खरे म्हटले तर मी ऐतिहासिकदृष्ट्या किंवा अभ्यासाच्या दृष्टीने गोखल्यांचे चरित्र पाहिले नाही की वाचलेहि नाही. गोखल्यांना मी फारसे पाहिलेहि नाही, अखाद्या फिरस्त्याचे दर्शन न्हावे तसे त्यांना दोनचार वेळांच मला पहायला मिळाले आहे. त्यावेळची स्मृति श्रद्धेच्या भूमीत मी सांठवून ठेवली आहे—छेः छेः सांठवून ठेवलेली नाही, पेरून टाकली आहे. या बीजाला वरचेवर सिंचन मिळाले असल्यामुळे हे बीज अंकुरित होऊन अनेकपकोरे फुलले—पसरले आहे.

गोखल्यांचे प्रथमदर्शन—अच्यर्कतदर्शन—मला फर्ग्युसन कॉलेजच्या द्वारां झाले. जेव्हां मी त्या कॉलेजांत गेलो तेव्हां गोखले तेथे नव्हते, पण तेथील वातावरण गोखलेमय होते. सर्वत्र गोखल्यांची छाप दिसत होती.

फर्ग्युसन कॉलेज म्हणजे वादविवादाचे कुक्षपेत. खुद्द पुण्यांत जितके पक्ष आहेत तितकेच किंवा त्याहूनहि अधिक पक्ष फर्ग्युसन कॉलेजच्या विद्यार्थी—वसती-



गृहांत दिमून येतात. मां पहिल्याप्रथम जेव्हां फर्ग्युसन कॉलेजांत गेलें तेव्हां माझी दशा पहिल्याच खेपेला शहरांत येणाऱ्या गांवठी विद्यार्थ्यासारखी होती. छात्रालयांत प्रत्येक पक्षाचे अनुयायी माझ्याकडे येत आणि मला माझीं मते निश्चित करण्यांत 'मदत' करीत. पुण्यांत कोणीहि मनुष्य पक्षरहित राहूं शकणार नाहीं. तेथील वातावरण अशा मनुष्याला सहनच करूं शकणार नाहीं. फर्ग्युसन कॉलेजच्या छात्रालयांत मी गोखल्यांची निंदा आणि स्तुति देव्ही अितकी कांहीं ऐकली कीं कसल्याहि निर्णयावर येणें मला अशक्य होतें. माझ्या मनांत अितके मात्र निश्चित झालें कीं गोखले हे कसेहि असोत, पण ओळख करून घेण्याजोगी व्यक्ति मात्र आहेत. खास निंदा आणि स्तुति यांनीं परस्पर-छेदाचें काम केलें त्यामुळे मी मोकळा राहिलों. मनांत मात्र भेवडा भाव राहिला होता कीं गोखले हे मोठे देशसेवक खरे तरी त्यांनीं गोऱ्या शिपायांची जी माफी मागितली तो त्यांना कलंकच आहे. पुरावा मिळाला नाहीं म्हणून काय झाले ? जोवर आपल्या मनाची खात्री आहे तोवर आपण माफी काय म्हणून मागावी ? माझे हें मत पुष्कळ वर्षे राहिलें. आज तें तसें नाहीं. सार्वजनिक जीवनाचें स्मृतिशास्त्र आतां मला अधिक समजू लागलें आहे.

काँग्रेसतर्फें विलायतेंत प्रसिद्ध होणारें 'इंडिया' पत्र मी कॉलेजांत लक्षपूर्वक वाचीत असे; त्यामुळे गोखले विलायतेंत भाषणें देत, मद्यपाननिषेधाची योजना तयार करीत, आपल्या देशाला कॅनडासारखें सेल्फ-गवर्नमेंट मागत या सर्व गोष्टींशीं मी परिचित राहात असे, आणि त्यामुळे गोखल्यांच्याविषयी मनांत हळू हळू श्रद्धा उत्पन्न होत गेली. शेवटीं अेक दिवस अुगवला आणि मी अैकलें कीं आज गोखले कॉलेजनच्यें येणार आहेत. प्रसंग काय होता हे मी आतां विसरून गेलों आहे. गोखल्यांची प्रसन्नगंभीर मूर्ति व्यासपीठावर अुभी राहिली. त्यांच्या भाषेंत किंवा त्यांच्या आवाजांत शास्त्रोक्त वक्त्याचा चमत्कार किंवा चमक नव्हती, पण त्यांच्या भाषेंत संस्कारिता, देशकल्याणाची आणि देशसेवेची तळमळ ही ओतप्रोत होती; त्यांच्या आवाजांत अंतःकरणाच्या अुत्कटतेचें गुंजन होतें. अुदात्त वातावरणांत सदोदित विहरत असणारी ही विभूति आहे असें स्पष्ट दिसत होते. आणि पुनः फर्ग्युसन कॉलेज म्हणजे त्यांच्याच हातांनीं वाढविल्लें गोकुळ; तेव्हां त्यांच्या अुपदेशांत अधिकार आणि वात्सल्य सारखेंच भरलेंलें होतें. त्या

दिवसांचे व्याख्यान मी आतां विसरून गेलें आहे, पण व्याख्यानाची छाप मात्र कायम आहे. अेकच गोष्ट अजून स्पष्ट आठवते. त्यांनी सांगितलें होते : “ तुम्हांला माहीत आहे कीं दरवर्षी प्राप्तीवरील कर घेणारे अंमलदार तुमच्या दाराशीं येतात आणि सरकारचा कर तुमच्याकडून वसूल करून घेऊन जातात. आज देशाच्या नांवानें असाच अेक टॅक्सगॅधरर-कर वसूल करणारा मी तुमच्या दाराशीं येऊन अुभा राहिलें आहे. मला शेंकडा पांच टक्क्याचा कर पाहिजे आहे. पण तें पैशाचा कर नको, युवकांच्या शरद्धावान जीवनाचा पाहिजे. या महाविद्यालयांत शिकणाऱ्या तरुण विद्यार्थ्यांपैकीं पांच टक्के विद्यार्थ्यांनीं देशसेवेप्रीत्यर्थ आपलें आयुष्य अर्पण करावें अशी माझी अिच्छा आहे. असें झालें तरच मला समाधान होईल. ” किती महत्त्वाची मागणी, तरी किती थोडी ! त्या दिवशीं माझ्या हृदयांत नवा प्रकाश पडला, विचारांना अेक नवी दिशा मिळाली आणि थोड्या अंशानी मी द्विज बनलों.

याच सुमारास गोखले बनारस येथें राष्ट्रीय महासभेचे अध्यक्ष झाले. बनारसच्या भाविक लोकांनी ‘ पूने का राजा ’ म्हणून त्यांचें स्वागत केलें. त्यावेळचे भाषण अित्ते कांहीं संपूर्ण होतें कीं पुष्कळ वेळां मी तें वाचलें तरी मला संतोष वाटेना. त्यानंतर वंगभंगाविरुद्ध चळवळ वाढली. स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षण आणि स्वराज्य यांची चतुर्विध चळवळ जेरानें सुरू झाली. त्या चळवळींत मी वाहून गेलों. बिपिनचंद्र पाल आणि अरविंद घोष यांनी हृदयांत स्थान मिळविलें आणि गोखल्यांची छाप पुसून गेली. गोखल्यांनीच माझ्यामध्ये देशसेवेची ज्योत पेटविली होती हेंहि मी विसरून गेलें. त्यानंतर सुरतेंत यादवी झाली. त्यावेळचीं दोन्ही पक्षांचीं वर्तमानपत्रें वाचून निराश झालों. दोन्ही पक्षांच्या वर्तमानपत्रांत अितकी कांहीं वषुद्धता आढळून येथी कीं तिला दुर्गंधाचीच अपुमा देतां येईल. त्यानंतर राजकारण विचित्र रीतीनें वाढूं लागलें. सरकार वेडें झालें आणि देशातील दोन्ही पक्ष और्षा, असूया आणि हिंसा यांनी भरून गेले. त्याचाहि माझ्यावर पुष्कळ परिणाम झाला. राष्ट्रीय पक्षांचीं तत्त्वे मला पसंत होती, अराजक लोकांचा युक्तिवाद मला यथार्थ वाटत असे, तरी नेमस्त पक्षांच्या पुढाऱ्यांविषयीं जे निंदाप्रचुर बीभत्स लेख आणि चित्रे येत त्यांची मात्र मला शिसारी येथी. असूयावृत्ति समाजांत अितकी कांहीं वाढली कीं गोखल्यांना ‘ हिंदु पंच ’ पत्रावर

अब्जनुकसानीची फिर्याद लावावी लागली. महान गोखल्यांनी 'हिंदु पंचा' सारख्या कथुद पत्रावर अब्जनुकसानीची फिर्याद करून माफी मागायला लावावी हे तर मला बिलकुल आवडलें नाहीं. ब्रिटिश सोल्जरांची गोखल्यांनी माफी मागितली यांत त्यांची महत्ता वाढली हे आज मला समजतें आहे. पण 'हिंदु पंचा' ला माफी मागायला लावण्यांत गोखल्यांच्या पेक्षां माझ्यासारख्यांचाच दोष मला अधिक दिसतो. गोखल्यांची अभद्र निंदा ऐकून संतप्त होणारे पुष्कळ असतील. पण आम्ही मूग गिळून बसलों. आम्ही जर त्यावेळीं जाहीर रीतीने अशा निंदाचा निषेध केला असता तर गोखल्यांना आपल्या समाजाविषयी अतिके निराश व्हावे लागले नसतें.

याच सुमारास मुंबर्जीत प्रभुजातीच्या स्त्रियांनी अक कलाप्रदर्शन भरविले होते आणि गोखल्यांच्या इस्ते ते सुघडायचे होते. कलेविषयीहि त्यांनी विचार करून ठेवला होता. त्यांचे ते भाषण ऐकण्यासाठी मी गेलों आणि गोखल्यांना अगदीं पहिल्याप्रथम मराठी बोलतांना मी ऐकलें. त्याचवेळीं मनांत विचार आला कीं हा राष्ट्रपुरुष लेजिस्लेटिव कौन्सिलापेक्षां समाजात आणि अंगरजीपेक्षां मराठींत काम करील तर याची देशसेवा खचित वाढेल आणि कीर्तीहि वाढेल. पण लेजिस्लेटिव कौन्सिलांत भरीव काम करणारे लोक कमी होते म्हणूनच मला वाटतें कीं गोखल्यांना कौन्सिलांत आपला वेळ जास्त द्यावा लागला असेल.

अंत्यजोडधाराविषयीचे त्यांचे अक भाषण याच सुमारास मी मुंबर्जीच्या टाउन हॉलमध्ये ऐकले होते त्यानंतर देशांत क्रांतिकारक प्रवृत्ति वाढली. लोकमान्य हे मंडालेच्या तुरुंगांत 'गीतारहस्य' लिहीत होते आणि देशांत ग्लानि पसरली होती. मी गुजरातमध्ये गेलों आणि थोडे दिवस अध्यापनाच्या कामांत गुंग झालें. गोखले कोठे आहेत, काय करतात हे मला माहीतहि नव्हतें. रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवकानंद, भगिनी निवेदिता वगैरेच्या ग्रंथांतच मला विशेष गोडी वाटत असे. १९११ कीं १२ मध्ये भगिनी निवेदिता विदेह झाल्या त्यावेळीं गोखल्यांची त्यांच्याविषयी श्रद्धांजलि प्रगट झाली होती. ती लहान असूनसुद्धां अतिकी सुंदर होती कीं माझी श्रद्धां फिरून जागृत झाली. न्यायमूर्ति रानडेविषयीची त्यांची भाषणे आणि लेख यांचे मला स्मरण झालें आणि गोखल्यांच्याविषयीचा आदर

माझ्या अंतःकरणांत फिहून जाणून झाला. गोखल्यांचा मी अधिक अभ्यास करून लागलों. विद्यार्थी आणि राजकारण, हिंदुमुस्लीम ऐक्याचा प्रश्न, जगांतील समस्त लोकांच्या काँग्रेसपुढे झालेले त्यांचे भाषण वगैरे वाचून माझी खात्री झाली की गोखले हे दहापांच वर्षांचा विचार करणारे 'पॉलिटिशियन्' नाहीत, तर राष्ट्रहिताचा दीर्घदृष्ट्या विचार करणारे एक राष्ट्रोद्धारक आहेत. विशेषतः हिंदुमुसलमानांच्या ऐक्याविषयी जे धोरण त्यांनी स्वीकारले होतें तें पाहून तर त्यांच्या ध्येयाची आणि त्यांच्या दीर्घदृष्टीची मला खात्री झाली. हिंदुमुसलमानांचे ऐक्य हाच हिंदी राजकारणाचा पाया आहे हें त्यांना दिसलें होतें. या ऐकाच कामासाठीं पुढां हिंदुस्थानानें गोखल्यांविषयी कृतज्ञ राहाणें वाजवी आहे.

देशाचें राजकारण पायाशुद्ध आणि आध्यात्मिक करण्याचा त्यांचा आग्रह होता. देशाची स्थिति पहातां गोखल्यांना असे वाटलें की जोंपर्यंत देशसेवेचें अहर्निश विचार करणाऱ्या आणि आपलें सारें आयुष्य देशसेवेलाच अर्पण करणाऱ्या लोकांचा वर्ग देशांत निर्माण होत नाही तोंपर्यंत देशाचें राजकारण असेच राखडायचें. व्यवहारांतहि मिसळूं आणि फावल्या वेळांत देशसेवाहि करूं या वृत्तीनें देशसेवा व्हायची नाही, ही गोष्ट अनुभवानें त्यांना बरोबर कळली होती. दुसरी एक गोष्ट जी हिंदी स्वभावांत—हिंदी संस्कृतींत अनादिकाळापासून आहे ती त्यांनीं विशेष आग्रहपूर्वक देशसेवेत दाखल केली आणि देशपुढे विशेष रूपानें मांडली. ती गोष्ट म्हणजे गरीबीचें महत्त्व. देशसेवेत पैशाची जरूर आहे, पैशाशिवाय केलेले काम थांबून राहातें, सदुपयोग केला तर अमुक अंशांनीं संपत्ति ही आशीर्वादरूप होऊं शकते हें सर्व खरें आहे. तरी देशसेवेक स्वतः जितक्या अंशांनीं निर्भर राहिल तितक्या अंशांनीं त्याची देशसेवा अधिक ठोस होण्याचा संभव असतो. ही गोष्ट गोखले पुरतेपणीं जाणून होते. पुत्रवैरागी होऊन यात्रा करीत फिरणें हें अकपरी सोरें आहे, पण समाजांत मितव्रते, समाजाला बरोबर घेऊन देशेन्मत्तोचें कार्यें करणें, देशाचें पुढारीपण करणें आणि त्याचबरोबर दारिद्र्याचें न्त घेऊन थोड्यांत निर्वाह चालवून द्रव्यलोभ अफा बाजूला मारून निःस्पृहता अंगी बाणून घेणें ही गोष्ट कठीण आहे. विद्वान असूनहि नम्र, गरीब असूनहि तेजस्वी आणि तपस्वी असूनहि दयाळु असे लोकच समाजावर आणि

विशेषतः हिंदी समाजावर प्रभुत्व मिळवू शकतात. धन मिळविण्याची शक्ति असूनहि जो मनुष्य गरीबी पत्करतो, लाखो रुपये हातांत असूनहि जो मनुष्य पैशान मिळणारी सुखें भोगण्याच्या लोभांत सांपडत नाही त्याच मनुष्याला समाजाची खरी सेवा करतां येते आणि त्याला स्वतःला स्वतंत्र राहातां येतें. गरीबीचा आदर्श नसेल तर देशसेवक हा पहातां पहातां द्रव्यसेवक, धनवंताचा आश्रित आणि देशहिताचा द्रोही होण्याची संशेदित भीति असते.

गरीबीच्या आदर्शाबरोबरच अखंड उद्योगाचें व्रत जर नसेल तर गरीबी हा जडतेचें रूप घेते. तमोगुणी गरीबी कसल्याहि कामाची नाही. मनुष्यानें समाधान ठेवून स्वार्थासाठीं किया. अर्थआरामासाठीं वाटले तर मेहनत न करावी, पण त्यानें मेहनत ही केलीच पाहिजे. सकाम असो किंवा निष्काम असो कर्म हे केलेंच पाहिजे. कर्म नाही तर आपल्याला जगण्याचा हक्कच राहणार नाही. श्रम करण्याची संधि न मिळणें हा अश्वराचा मोठ्यांत मोठा शाप म्हटला पाहिजे. उद्योग हा अदर-निर्वाहाकरितांच आहे असें नाही. उद्योग हा जीवनाचा आनंद आहे, कायिक, वाचिक आणि मानसिक शक्ति वाढविण्याचें ते साधन आहे आणि पवित्रतेची तशीच मोक्षपाती ती साधना आहे असें मी मानतो. देशसेवा म्हणजे रिकामटेकडा वेळ घालविण्याचा अक अपाय किंवा नांव मिळविण्याचा अक प्रकार असें समजून कोणाहि व्यक्तीला वा संस्थेला अखंड देशसेवा करतांच देणार नाही. देखाव्याकरितां केलेलें काम भडक असेल कदाचित् पण तें फार वेळ टिकूं शकत नाही.

देशसेवा करण्याचा मुख्य अपाय अकच आहे, तो हा कीं आपण आपलें जीवन निष्पाप करावें. समाजांत जीं दुःखें आपण पाहातो त्यांपैकीं अर्धी दुःखें आपण स्वतःच उत्पन्न केलेली असतात. प्रत्येकानें जर स्वतःचें जीवन सुधारण्याचा प्रयत्न केला तर समाजसेवकाचें काम पुष्कळ कमी होतील, आणि दुसऱ्या दृष्टीने पाहिलें तर आपण स्वतः जोपर्यंत निष्पाप बनलों नाही तोपर्यंत आपल्याला समाज-सेवकाचा अधिकार अथवा सामर्थ्य प्राप्त होऊंच शकणार नाही. हे पाहूनच गोखल्यांनी भारतसेवकसमाजाच्या योजनेत आणि कार्यपद्धतीत साधेपणा, गरीबी, आहाराधाररूपणा वगैरे व्रतें मुद्दाम ठेवली आहेत.

गोखले दक्षिण आफ्रिकेला गेले होते त्याची हक्कित तर सर्वांनाच माहीत आहे. त्यावेळी जनरल स्मट्स आणि गोखले यांच्यामध्ये ज्या गोष्टी झाल्या त्याविषयी जेव्हा गैरसमज उत्पन्न झाला तेव्हा विलायतेतील पत्रांनासुद्धा आपले गोखलेच अधिक विश्वासपात्र आप्त वाटले हे पाहून माझे हृदय अभिमानाने फुलले आणि गोखल्यांच्या निर्मळ चारित्र्याचाच हा परिणाम आहे अशी माझी खात्री झाली. दक्षिण आफ्रिकेतील काम वाढले. महात्माजींनी तेथे युद्ध पुकारले आणि हिंदुस्थानांत देशभक्त गोखले यांनी या यज्ञासाठी ब्राह्मणोचित भिक्षा मागणे सुरू केले हा अपूर्व प्रसंग आठवणींन अजून ताजाच आहे.

हा यज्ञ पूर्ण झाला. गांधीजी हिंदुस्थानांत परत आले आणि कर्वादांना भेटण्याकरितां शांतिनिकेतनाला आले. गांधीजींचे स्वागत चालले होते अवेढ्यांत तार आली की गोखले मृत्युलाक सोडून गेले. शांतिनिकेतनांतील अेका आंब्याच्या झाडाखाली आम्ही कित्येकजण गांधीजींच्या आसपास बसले होते. गांधीजींच्या डेळ्यांत अशरू नव्हते पण अशरूहूनहि मृदु आणि गंभीर असा श्रद्धेचा सागर त्यांच्या डोळ्यांत झुसळत होता. गोखल्यांच्या जीवनांतील धार्मिकता त्यांनी आम्हांला समजावून दिली. राजकारणासाठीं सुद्धा खानदानी आपण सोडून ये हा गोखल्यांचा आग्रह त्यांनी आम्हांला समजावून दिला. आणि त्याच क्षणीं गोखल्यांची श्रद्धानिर्मित मूर्ति माझ्या हृदयांत सुप्रतिष्ठित झाली. मी गोखल्यांचा अनुयायी नाही, त्यांचा शिष्य नाही, पण त्यांच्या शिष्याचा शिष्य आहे, गोखल्यांचा मी पूजक आहे आणि गोखल्यांना समजून घेण्याचा माझा प्रयत्न आहे. गोखल्यांच्या खऱ्या अनुयायांची देशसेवा, धर्मेनिष्ठा आणि निर्भयपणा पाहून मनांत गोखल्यांची मूर्ति अधिकाधिक स्पष्ट आणि रूढ होत चालली आहे. त्या मूर्तीचेच आज मी श्रद्ध करतो आणि त्या मूर्तीपाशी आशीर्वाद मागतो.

भगिनीसमाज हा या मूर्तीचे अेक मंदिर आहे हें जाणून मी येथें श्रद्धांजलि घेऊन आलो आहे. गोखल्यांची देशभक्ति त्यांच्या देशसेवेपेक्षा मोठी होती. पन्नास वर्षांहूनहि कमी अशा आयुष्यांत त्यांच्या देशभक्तीला संपूर्ण अवकाश कोटून मिळणार ! शिक्षण आणि राजकारण या दोनच दिशांनी त्यांनी कांहीशी देशसेवा

केली. जी कांहीं सेवा केली ती अपूर्व आणि अज्ज्वल रीतीने केली. पण तेवढ्यांतच त्यांना संतोष नव्हता. ते नेहमी म्हणत की कामाचे डोंगर पडले आहेत, अचलण्याला हजारो देशसेवकांची जरूर आहे. स्त्रीशिक्षण या महत्त्वाच्या विभागाची गोखल्यांची देशभक्ति भगिनीसमाजाच्या द्वारां कार्यांत परिणत होत आहे; म्हणूनच मी या मंदिरांत श्राद्ध करण्यासाठी आलों आहे. हा संधि मला दिली हा आपणां सर्वांचा प्रसाद मी मानतो.

१९-२-२२

## गोपाळ कृष्ण गोखले

फेब्र. १९

देशसेवक, अध्यापक, अर्थशास्त्री आणि लोकांचे राजदरबारांतील प्रतिनिधि या नात्याने झालेली गोखल्यांची सेवा विसरण्याजोगी नाही. हिंदुस्थानाच्या आर्थिक स्थितीविषयीची त्यांची मीमांसा अजूनहि ताजी आहे. सक्तीचे आणि मोफत प्राथमिक शिक्षण देशांत सुरू करण्याच्या आणि मिठावरील कर कमी करविण्याच्या त्यांच्या प्रयत्नांमुळे गरीबांशीं असलेले त्यांचे अनुसंधान स्पष्ट होते. भारतसेवकसमाज स्थापन करून राजकीय चळवळीला त्यांनी दीक्षेचे स्वरूप दिले. गरीबीत वाढलेले असूनसुद्धा देशासाठी ते प्रसन्नतापूर्वक गरिबीलाच चिकटून राहिले. या सर्व गोष्टी आजहि विद्यार्थ्यांच्या मनावर ठसविण्यासारख्या आहेत. गांधीजींशीं त्यांचा असलेला संबंधहि विद्यार्थ्यांना समजणे आवश्यक आहे. न्यायमूर्ति रानडे यांची गोखल्यांच्यावर पुष्कळ छाप होती. म्हणून रानडे यांचे चरित्रसुद्धा या दिवशीं सांगावे.

दांडीकूचचा मिठाच्या करावर काय परिणाम झाला त्याविषयीहि सांगतां येतील.

( अप्रिल ६ ते १३ )

व्रत असो की सण असो त्याच्यामागे कांहीं ना कांहीं महान सामाजिक अथवा आध्यात्मिक तत्त्व असते. चैत्री पाडव्यादिवशीं दक्षिण हिंदुस्थानांत मोठा उत्सव केला जातो, कारण त्यादिवशीं श्रीरामचंद्रांनी वालीचा पराभव करून दक्षिण हिंदुस्थानाला स्वतंत्रता आणि निर्भयता मिळवून दिली. त्याच दिवशीं प्रजाबुद्धारक शालिवाहनाने विदेशी हूण आणि शक लोकांच्या तापांतून प्रजेला मुक्त केलें. आणि तें तरी कसें ! मातीच्या बाहुल्यांत संजीवनी ओतून, त्यांना लढवैये बनवून ?

आजचा आपला स्वराज्यसप्ताह हा असाच एक महाव्रताचा दिवस आहे. स्वराज्यस्थापना झाल्यानंतर तो उत्सवाचा दिवस होईल. त्याच्यामागे अनेक तारक तत्त्वे आहेत. या सप्ताहांत मातीच्या बाहुल्यासारख्या बनलेल्या लोकांत सत्याग्रह संजीवनी ओतली गेली, त्यामुळे पोटावर चालणारे राष्ट्र असे झाले. याच सप्ताहाच्या प्रेरणेच्या बळाने शतकानुशतके परस्परांत लढून हाडवैरी बनणारे हिंदुसुसलमान एक झाले आणि याच अक्याच्या योगाने अतिके दिवस अशक्य भासणारे स्वराज्य अकदम प्रगट झाल्यासारखे दिसूं लागले आहे. निराशेतच वाढलेल्या अनेक जणांना तर असेच वाटत राहिले आहे की स्वराज्य अतिक्या लवकर संभवित तरी कसें होणू शकेल ? पण स्वराज्याचे आगमन अतिके कांहीं प्रत्यक्ष आहे की तें मानण्याची तयारी असो नसो, तें मानल्यावांचून गत्यंतरच राहिलेले नाहीं.

जे अतिके दिवस अशक्य अशक्य म्हणत होते ते आज हे सारे क्य भिद्रजाळ पसरले आहे असें म्हणूं लागले आहेत. पण यांत भिद्रजाळ कसले आले



आहे ? ताशीं चाळीस मैलाच्या वेगानें जाणारी आगगाडी जर हवेच्या दावानें अेकदम खुभी करतां येते तर असहकारानें अेका अनुमत्त साम्राज्याला ठिकाणीं आणणें यांत अिंद्रजाळ तें काय ?

आपल्या पायांनीं चालत येणाऱ्या या स्वराज्याचें आपण कशा प्रकारें स्वागत करावें ? आपल्या हृदयमंदिरांत स्वराज्यवेवतनें येऊन बसावें अितकें आपण शुद्ध आणि पावित्र आहां कीं नाहीं हें आपण तपासलें पाहिजे, म्हणून या आठवड्याला आपण ' आत्मशुद्धीचा सप्ताह ' म्हणत असतो.

या सप्ताहांत आपण सर्व व्यक्तींचा त्याग करण्याचा निश्चय करावा. स्वराज्याप्रीत्यर्थ यथाशक्ति द्रव्य द्यावें. हें कांहीं दान नव्हे. स्वराज्याचा हा अंक स्वेच्छेनें भरावयाचा कर समजला पाहिजे. स्वराज्य म्हणजे सक्तीचा अभाव. आणि म्हणून अशा स्थितींत प्रत्येकानें आपापल्या श्रद्धेप्रमाणें जास्तीत जास्त कर भरला पाहिजे. ' रामराज्य, रामराज्य ' म्हणजे निराळें तें काय असणार ? सत्तेचा उपदेश न करतां राष्ट्रीय महासभा आज हिंदुस्थानावर राज्य करीत आहे. रामराज्यांत याहून निराळें तें काय असणार ?

आज आपण हृदयस्थ परमात्म्याची प्रार्थना करावी कीं हे हृदयस्थ देवा ! हे जनतारूपी जनार्दना ! आम्हांला स्वराज्याचे खरे अुपासक बनीव. स्वराज्यावरील आमची श्रद्धा चळण्यापूर्वीच आमच्या शरीरांतून आमचे प्राण निघून जावोत ! आम्हीं आजवर पुष्कळ दुःख भोगलें, म्हणून कोणालाहि दुःख देण्याची आम्हांला बुद्धि न होवो; अमर्याद साम्राज्यपदाला आम्ही बळी पडलों आहोंत, अैहिक साम्राज्य स्थापण्याची लालसा आमच्या हृदयांत कधीहि अुत्पन्न न होवो. साम्राज्य अेक तुझेव व्हावें आणि अितक्या तपश्चर्येनें पुनीत झालेला हा राष्ट्रीय सप्ताह कधीं काळीं कलुषित न होवो. अनंत काळपर्यंत हा सप्ताह सत्य, अहिंसा आणि संयम यांच्या अुत्सवरूपानें जगतीतलावर शाश्वत राहो !

## राष्ट्रीय सप्ताह

एप्रिल ६ ते १३

८ दिवस

या राष्ट्रीय ऐक्याच्या पर्वाच्या परसंगी सुताच्या धाग्यानें सारीं हृदये अेकत्र बांधणें, हाच अेकमेव कार्यक्रम होअूं शकेल. प्रत्येक भारतवासियाच्या माथ्यावर समान संकट लेंबतें आहे, ही गोष्ट विद्यार्थ्यांच्या मनावर ठसवावी; आणि सगळा सप्ताह शक्य तितका कांतण्यांत घालवावा.

अमृतसरपासून आजपर्यंतचा महासभेचा अतिहास आज वाचावा किंवा त्यावर विवेचन करावें.

( जून १६ )

‘ देवांना आपलें अमृत पाजून पाजून कधीण झालेला कृष्णपक्षांतील चंद्रमा हा शुक्लपक्षांतील चंद्रापेक्षा अधिक सुंदर दिसतो ’ असें कालिदासाचें वचन आहे. देशबंधु चित्तरंजन दास हे या सुंदरतेप्रत पोचले होतें. विद्यार्थी-दशा संपवून ते जेव्हां धंद्यांत पडले तेव्हां त्यांच्या डोक्यावर वडिलांच्या वेळचें मोठें कर्ज होतें. अविश्रांत श्रम करून त्यांनी तें फेडलें. या कर्जापायी त्यांना कष्ट सहन करावे लागले होते. सार्वजनिक कामांत ते भाग घेऊं शकत नव्हते. अणुमुक्त झाल्यानंतर शुक्लपक्षांतील चंद्राप्रमाणे त्यांची समृद्धि वाढली. सदोदित दान करीत असून-सुद्धां त्यांची प्राप्ति वाढतच गेली. ज्या दिवशी त्यांनी आपलें भव्य घर पुरे केलें त्या दिवशी त्यांना केवढा बरे आनंद झाला असेल ?

पण देशबंधूंची देशभावना दानानेंच तृप्त होण्याजोगी नव्हती. त्यांना त्याग-धर्माचा रंग लागला. त्यांनी आपली वकिली सोडून दिली; स्वतः गरीब बनले, आणि गरीबांची सेवा करण्याची त्यांनी दीक्षा घेतली. त्यांचें तें घर कोर्टांनै लिलावांत काढलें. देशबंधूंनी कमावी करण्याचा विचार ठेवला असता तर अेका कक्षांत आपली मिळकत त्यांना वांचवितां आली असती. पण त्यांना त्यागधर्माची लज्जत कागले होती. घर बांधतांना त्यांनी जो आनंद अनुभवला होता त्याहून जास्त आनंद घर हातांतून जाऊं देतांना त्यांना झाला असेल.

अशा पुण्यपुरुषांच्या त्यागानें जर हिंदुसमाजाची आत्मशुद्धि झाली नाहीं तर अशा समाजाविषयी काय आशा बाळगतां येणार ? प्राचीन काळापासून शिबि आणि हरिश्चंद्र यांसारख्या त्यागवीरांनी चालविलेली परंपरा हिंदुस्थानांत अजून कायम आहे; पण त्याचबरोबर दानावर परिपुष्ट होण्याची आणि शुद्ध स्वार्थी मनुष्याला किंवा पामराला साजेल अशा मोहासाठीं मलिन जीवन घालविण्याची परंपराहि जर आपण चालूं ठेवूं तर औश्चराची दयाहि संपून जावेल आणि त्याचा महान् कोष मात्र आपण जागृत करूं.

देशबंधूनीं देह सोडल्याबरोबर महात्माजींनी त्यांच्या स्मारकासाठी लाखो रुपये गोळा करून देशबंधूंचा तो भव्य प्रासाद सोडवून घेतला आणि त्यांच्याच नावाने स्त्रियांच्यासाठी एक मोठे रुग्णालय खुषडले.

स्वराज्याची चळवळ चालविण्याच्या पद्धतीविषयी गांधीजींनी मतभेद होऊन देशबंधूंनी मोतीलाल नेहरूंच्या मदतीने आपला निराळा स्वराज्यपक्ष चालविला. पण दोघेहि थोर मनाचे असल्याने मतभेद दूर होताच गांधीजींनी अत्यंत प्रेमाने त्यांनी अक्रोपा केला. गांधीजींनी अर्थातच अगदी पहिल्यापासून त्यांच्याशी अखंड प्रेमादराचे वर्तन ठेवले होते.

जेव्हा शेवटी देशबंधु आणि गांधीजी यांच्यामध्ये कोणताच मतभेद उरला नव्हता. गांधीजींच्या सर्व कार्यक्रमांला त्यांनी आपला कार्यक्रम म्हणून स्वीकारला होता.

२५-१-२३

## देशबंधु पुण्यातिथि

जून १६

समय १

देशबंधु म्हणजे बंगालची खानदानी आणि बंगालचे हृदय. जणू विभवजित् यज्ञ केला असावा असे त्यांचे जीवन होते. देशभक्तांची सेवा आणि भक्ति करणे हा त्यांच्या जीवनाचा सूर होता. अतिका बोध देशबंधूंच्या चरित्रातून विद्यार्थ्यांना द्यावा. ग्रामसंघटन आणि स्त्रियांचा उद्धार यांविषयी यादिवशी विवेचन करावे. त्यांनी रचलेली कित्येक भजने हि या दिवशी गावी. 'सागर-संगीत' हे त्यांचे काव्य वाचावे.

# दादाभाजी नवरोजी

: : ५४

जून ३०

राष्ट्रीय महासभेच्या इतिहासांत दादाभाजींचें नांव हिंदुस्थानचे पितामह म्हणून अमर झालें आहे. हिंदुस्थानचा मुख्य रोग त्याचें वाढतें दारिद्र्य हा आहे, त्याचें कारण अंग्रजाचें राज्य हें आहे आणि त्याचा अुपाय स्वराज्य हा आहे, अितकें सप्रमाण सिद्ध करून दादाभाजींनीं या देशाला जागृत केलें. 'पुष्कळ वेळां बंड करावेंसें वाटतें, असें अध्यक्षपदावरून सांगून देशाची दुर्दशा दूर करण्याचा अुपाय किती लवकर हातीं घेतला पाहिजे हें त्यांनीं दाखविलें. अशा रीतीनें स्वदेशीचा आणि असहकाराचा जणूं त्यांनीं पायाच घातला. याकरितां 'दादाजयंती' साजरी केली पाहिजे. दादाभाजींचें संबंध आयुष्य साधें, निर्मळ आणि विलक्षण अुद्यमी हेतें, याविषयीहि पुष्कळ सांगतां येतील.

---

## स्व. लोकमान्य टिळक.

: : ५५

( आगस्ट १ )

अ. स. १८५७ च्या निष्फळ प्रयत्नानंतर अंग्रजांच्या सत्तेचा या देशात चांगला जम बसला, कारण बेकीमुळे देशाचे शारीरिक बल छिन्नभिन्न झाले होते. शरीरबळाच्या या युद्धांत शिस्त आणि अैक्य यांच्या अभावी देश हरला, पण हिंदी राष्ट्र आणि हिंदी संस्कृति अंग्रजांना वश झाली नाही आणि होणार नाही याचे हिंदी लोकांना त्याचप्रमाणे अंग्रज सरकारला अखंड स्मरण आणि खात्री करून देणाऱ्या ज्या कित्येक व्यक्ती या देशात उत्पन्न झाल्या त्यापैकी अेक विक्रमवीर हा लोक सोडून गेला आहे. सत्तावन सालां स्वतंत्रता मिळविण्याचा महाप्रयत्न झाला त्यावर्षी बाळ गंगाधर हे अेक वर्षांचे लहान मूल होते. ज्या शिक्षणाच्या योगाने अंग्रजांना जय मिळवितां आला ते शिक्षण घेऊन त्यांच्याशींच लढण्याचा विचार बाळगणाऱ्या व्यक्तीत ते अग्रेसर ठरले. सार्वजनिक जीवनांत त्यांचे सहकारी आणि गुरु विष्णुशास्त्री चिपळूणकर अंग्रजी साहित्य म्हणजे 'वाघिणीचे दूध' आहे म्हणत. त्याचे पान करून राज्यकर्त्यांशी प्रजाहितार्थ लढण्याचा त्यांनी निश्चय केला.

पहिल्यापासूनच स्वदेशसेवेच्या स्वप्नांत रमणाऱ्या टिळकांच्या आयुष्यांत, ते विसाव्या वर्षी बी. अ. पास झाले, त्यानंतर अेल्ले. बी. झाले वगैरे हकिकत फारशी महत्त्वाची नाही. सत्तावन सालच्या अनुभवाने अितके निश्चित झाले होते की प्रजाशरीर दुबळे बनले आहे. ते सशक्त करण्याचा--लोकजागृति करण्याचा अेकमेव अुणाय राष्ट्रीय शिक्षण हा आहे असा निर्णय लहानपणींच टिळकांनी विप-  
ळूणकर, नामजोशी, आगरकर वगैरे मित्रांसह केलेला होता. विष्णुशास्त्री म्हणजे स्वाभिमानाची मूर्तीच; स्वधर्म, स्वदेश आणि स्वभाषा यांविषयी त्यांना अत्यंत आदर आणि अभिमान असे. म्हणूनच सरकारी नोकरीचा रस्ता सोडून लोकशिक्षणा-  
च्या कार्यात त्यांनी आपले जीवित अर्पण केले होते. देशांत तेजस्वी शिक्षणाचा

परसार व्हावा, लोकांना निर्दोष साहित्य वाचण्यास मिळावं, देशहिताच्या प्रश्नांची चर्चा व्हावी, अतः केवळ नव्हे तर लोकांची अभिरुचि धर्माला हानिकार न व्हावी या झुडदेशाने 'न्यू इंग्लिश स्कूल' नांवाची शाळा, 'नवीन किताबखाना' नांवाचे, पुस्तकाचे दुकान, 'निबंधमाला' नांवाचे ऐक तेजस्वी मासिक आणि 'चित्रशाळा' नांवाचे पौराणिक आणि हिंदुजीवनाविषयीची चित्रे छापण्याकरितां ऐक कलाग्रह

अतिकी विष्णुशास्त्र्यांनी स्थापन केली. आगरकर तितकेच देशाभिमानी होते, पण त्यांचा कल इंग्रजी साहित्याकडे विशेष असल्यामुळे समाजसुधारणा करण्याकडे त्यांची वृत्ति अधिक तीव्र होती. या लोकांनी लोकशिक्षणाचे कार्य सुरू केले. टिळक हे न्यू इंग्लिश स्कूलमध्ये गणित शिकवीत. नंतर या मित्रमंडळीने ऐक कॉलेज स्थापन केले, त्याचे नांव 'महाराष्ट्र कॉलेज' ठेवण्याचा प्रथम विचार होता, पण गागाहून त्याला 'फर्ग्युसन कॉलेज' हे नांव देण्यांत आले. याबरोबरच टिळक हे ऐक लॉ क्लासहि चालवीत असत. देशभक्तांचे हे युवकमंडळ सर्व प्रश्नांवर चर्चा करीत असे. पण राष्ट्रीय शिक्षणाचे कार्य हाती घेतल्यानंतर शक्य तर अतिर पवृत्तींत पडूं नये ही वृत्ति टिळकांची होती. विद्यार्थीजीवनांत त्यांची अध्ययनांतील ऐकाग्रता आणि अध्यापनाची त्यांची रुचि आणि कला ही पदातां ही वृत्ति त्यांना स्वाभाविक होती; आणि याच कारणानुसार डेक्कन सोसायटी 'जेस्युइट' संस्थेच्या ढबवर चालवावी आणि त्यांत काम करणाऱ्या व्यक्तींनी आपले सर्वस्व संस्थेलाच अर्पण करावे हा आदर्श ठेवण्यासंबंधी त्यांचा आग्रह असे. आगरकर या विचाराशी सहमत होऊं शकले नाहीत. मतभेद वाढला आणि टिळकांनी फर्ग्युसन कॉलेज सोडले. जन्मसिद्ध अशा अध्यापकाच्या जीवनांत परिवर्तन झाले आणि पत्रकार बनून लोकशिक्षणाचे व्यापक कार्य हाती घेऊन ते लोकमान्य झाले.

टिळकांनी 'केसरी' पत्र हातांत घेतले आणि इंग्रजांत 'मराठा' पत्रहि चालू केले. 'केसरी' त मतभेद उत्पन्न झाला त्यामुळे आगरकरांनी 'सुधारक' पत्र सुरू केले. या दोन पत्रांनी समाजसुधारणेविषयी आणि हिंदु समाजव्यवस्थेत सरकारला कितपत हात घालू द्यावा याविषयी अनेक वर्षे चर्चा करून महाराष्ट्रला बरेवाईट पण मोठ्यांत मोठे शिक्षण दिले. 'केसरी' त फूट पडली त्यापूर्वीच या युवकमंडळावर मोठी आपत्ति आली. शिवाजी महाराजांचे वंशज जे कोल्हापूरचे

महाराज त्यांना वेडे ठरवून मद्रासेला पाठविण्यांत आले त्यावेळी या देशाभिमानी नवयुवकांचा पुण्यप्रकोप खवळला. त्यांनी या प्रकरणांत खोल शिरून 'केसरी' त लेख लिहिले, त्याचा परिणाम म्हणून 'केसरी' वर खटला झाला. हा खटला चाळ असतांना विष्णुशास्त्री हे ३२ व्या वर्षी तहण वयांतच मरण पावले, आणि आगराकरांना व टिळकांना १०१ दिवस सरकारचा पाहुणचार भोगावा लागला. पुण्यांत लोकमत तयार करून सरकारपुढे ठेवण्यासाठी म्हणून महामति रानडे सारख्यांनी 'सार्वजनिक सभा' स्थापिली होती. सार्वजनिक सभा ही काँग्रेसची जननी म्हटली जाते. या सभेतहि सरकारशी किनी सहकार करावा याविषयी मतभेद झाला आणि टिळकांचे विचार ज्यांना पसंत नव्हते त्यांनी 'डेक्कन सभा' काढली. अशा रीतीने पुण्यांत तीव्र मतभेद सुरू झाले, पण त्यामुळे पुण्यांतील राजकीय वातावरणाचा पारा चढता राहू लागला; आजपावेतों सुद्धा राजकीय चर्चा करण्यांत आणि अंगरेजांच्या नीतीविषयी जागृत राहण्यांत साऱ्या देशांत पुणे हे अंगरेसर शहर राहिले आहे.

तुरुंगांतून आल्यानंतर टिळकांनी आपला सगळा जीव 'केसरी' त गुंतविला. मराठी भाषा घडवून तिला समृद्ध करावी, आधुनिक काळांतील सर्व विचार आणि राजकीय सिद्धांत मराठी भाषेच्या द्वारां जनसमुदायाला समजावून द्यावे, लोकभावनांच्या सर्व छटा तिच्यांत व्यक्त कराव्या आणि राष्ट्रीय जागृतीचा प्राण भाषेत उत्पन्न करावा या अुद्देशाने दर आठवड्याला त्यांनी लिहावयाला सुरुवात केली. 'केसरी' ने राजकीय महाराष्ट्र घडविला आहे असें जर कोणी म्हटलें तर ते अयोग्य नाही. लोकमान्यांच्या 'केसरी' ची भाषा अवडंबरविहीन, सरळ पण प्रौढ असे. त्यांतील लिखाण विषयावर परिपूर्ण कावू दाखविणारें, मुद्देमूद आणि जोरदार असे. 'केसरी' जेव्हां आखाद्या प्रतिपक्षाविद्भव आखाड्यांत अतरे तेव्हां त्याच्या आर्षेतील तेज साळाहि कलांनी प्रकाशत असे. तेजाबरोबर कटुता किंवा जहर नसे असें नव्हे, पण त्यांतहि गांभीर्य पुष्कळ राखलें जाओ. प्रतिपक्षाचा पराजय करण्यासाठी 'केसरी' ज्या जहराचा उपयोग करी ते जहर पुष्कळ लोकांच्या साम्य अभिरुचीला न क्षेपण्याजोगे वाटे, आणि टिळकांच्या भाषेत विनय नसता, आदर



नसतो अशी टीकाहि पुष्कळांनी केली. टिळकांचें याला अेकच अुत्तर असे: “ लढ-  
क्याला याहून दुसरे कांहीं करतांच येणार नाहीं. मला जर निवृत्तींतच काळ कंठा-  
यचा असता तर मी सर्वे प्रकारची अुदारता दाखविली असती. पण ज्याला कांहीं  
कार्ये करायचें आहे त्यानें प्रसंगीपात्त प्रखर झालेंच पाहिजे. ” ‘ केसरी ’ अितकें  
व्यवस्थित, प्रतिष्ठित आणि लोकप्रिय वर्तमानपत्र हिंदुस्थानांत दुसरें क्वचितच  
असेल. महाराष्ट्राचें सार्वजनिक जीवन, हिंदुस्थानची जागृति, आशियाचीं भवि-  
ष्यता, युरोपचें राजकारण आणि जगाची प्रगति यांविषयीं ‘ केसरी ’ त नेहमीं  
विद्वत्तेनें आणि माहितीनें भरलेले पौढ लेख येत असत. ‘ केसरी ’ हें  
अत्यंत नियमित वर्तमानपत्र आहे. त्याची सर्व घटना आणि व्यवस्था टिळकांनी  
स्वतः केली होती. असें म्हणतात कीं दुनियेंत जेथें म्हणून मराठी भाषा बोलली जाते  
आणि वाचली जाते तेथें तेथे ‘ केसरी ’ जात असतो.

पण ‘ केसरी ’ हेंच कांहीं टिळकांचें कार्यक्षेत्र नव्हतें. अेका बाजूला  
सरकारविद्द आणि दुसऱ्या बाजूला समाजसुधारकांविद्द त्यांना लढावें लागे.  
टिळक हे खरें म्हटलें तर पुराणधिय नव्हते. अनेक समाजसुधारणा त्यांना अगत्या-  
च्या वाटत ; तरी त्यांनी पुष्कळ सुधारणांना विरोध केला आणि त्यामुळें गैरसमज  
अुत्पन्न झाले. लोक त्यांना सुधारक मानूं लागले. त्यांचें मत, समाजसुधारणा हें  
नित्याचें काम आहे आणि तें आस्ते आस्ते झालें पाहिजे, असें होतें. विशेषतः  
विदेशी राज्याच्या अेखडाखालीं प्रजा जेव्हां आत्मविश्वास गमावून बसते तेव्हां  
आणि जेव्हां परधनीं पाद्री लोकांचे रात्रंदिवस आपल्या संस्कृतीवर प्रहार चालूं  
आहेत तेव्हां समाजाला स्वाभिमानशून्य आणि हतोत्साह बनविणे हें चूक आहे.  
शिवाय सुधारणांच्या मार्गे आपण लागलों तर शिक्षित आणि अशिक्षित यांच्यामध्यें  
अंतराय येतील, तट पडतील आणि राजकारणाच्या मामल्यांत आपण अधिकच दुर्बळ  
होअूं. म्हणून समाजावर हल्ला न करतां हळू हळू समाजाला वश करून होतील  
तेवढ्या सुधारणा करणेंच योग्य. सरकारच्या शक्तीनें दिपून जाऊन आपण त्याच्या-  
पुढे नरम बनतो, तर मग इरद्दादरपूर्वक समाजाच्या बाबतीतहि आपण नरम कां  
बनूं नये ? असे त्यांचे विचार असल्यामुळें ‘ केसरी ’ त ते शक्य तोंवर समाजसुधार-  
णेचे प्रश्न छेडतच नसत. अितक्यांत ‘ संमति वयाचें बिल ’ आलें. या बिलाचें तत्त्व

टिळकांना मान्य नव्हते असे नाही. पण त्यांनी या विलास कडक विरोध केला. त्यांचे म्हणणे असे की अंगरेज लोक हे परके आहेत ; ते जाणून बुजून आपल्या सामाजिक बाबतीत मध्ये पडत नाहीत ; अुदासीनपणाचे कां असेना पण धार्मिक आणि सामाजिक बाबतीत आपल्याला स्वराज्य आहे ते आपण आपल्याच हातांनी काय म्हणून गमवावे ? आपण जर आपल्याच हातांनी सरकारला आपल्या घरांत प्रवेश देऊं तर आपला स्वाभिमान आणि स्वातंत्र्य हे कमी होतील आणि आपण अधिकच दुर्बल व पराधीन बनू. टिळक हे सर्वच जुन्या चालीराता पाळीत नव्हते. पंक्तिभेदाच्या बाबतीत आज जी मुभा घेण्यांत येते ती सर्व मुभा ते घेत असत. त्यांचे जीवन अत्यंत साधे आणि पवित्र होते तरी त्यांत धार्मिकपणाचे अवडंबर चिलकुड नव्हते. विलायतेत असतांना त्यांनी खाण्यापिण्यांत संपूर्ण शुद्धि राखली होती तरी तिकडून आल्यानंतर समाजाचा आणि धर्माचा अधिकार मानण्याकरितां म्हणून त्यांनी प्रायश्चित्तहि घेतले होते. राजकीय अुत्सवांत मुसलमान आणि ख्रिश्चन यांच्या पंक्तीला बसून त्यांनी भोजन केले होते. अंत्यज्ञांना अस्पृश्य मानावे अशी शास्त्राज्ञा कोठेहि नाही असे त्यांनी जाहीर केले होते. त्यांचे कित्येक जीव शकंठश्च मित् समाजसुध रणेते अग्रणी होते.

सन १८९६ मध्ये मुंबाईत प्लेग सुरू झाला आणि पुण्यांतहि त्याने प्रवेश केला. ही आपत्ति अनपेक्षित आणि अगदी नवी असल्यामुळे सर्व लोक दाबलून गेले. सरकारलाहि प्लेग हटविण्याला काय उपाय करावेत हे सुचले नाही, आणि त्यामुळे 'सेग्रीगेशन' 'क्वॉरन्टाईन' वगैरे कडक उपाय योजण्यांत आले. शिवाय त्याचा योग्य अंमल करण्याकरितां भावना व सभ्यता यांच्याशी फारकत असलेल्या गांच्या शिपायांची नेमणूक झाली. प्लेगाच्या त्रासापेक्षा या सोलजरांच्या झडतीचा जुलूम लोकांना अधिक असल्या झाला आणि सर्वत्र हाहाकार माजला ! ज्याला जिकडे वाट फुटेल तिकडे तो पळाला. पण टिळकांनी याप्रसंगी पुणे सोडल नाही. गांवांतच राहून अेकीकडून लोकांना ते मदत करूं लागले आणि दुसरीकडून सरकारच्या, उपायापेक्षा अपाय करणाऱ्या विवेकशून्य कडकपणामुळे होणारा लोकक्षोभ 'केसरी' द्वारा व्यक्त करीत गेले. टिळकांनी क्षोभ केवळ व्यक्त केला पण सरकारला वाटले त्यांनी तो निर्माण केला. लोकक्षोभाची पराकाष्ठा प्लेग-

अमलदार रॅन्डसाहेब याचा खून होण्यांत झाली. सरकारने आपली प्लेगनीति बदलली खरी, पण अगूर स्वरूप धारण करून लोकांना दडपून टाकण्यांत कांहीं बाकी ठेवले नाही. पुण्यांतील सरदार नातुबंधूंना सरकारने नजरकैदेत ठेवले व 'केसरी' वर खटला केला. कित्येक मित्रांनी टिळकांना माफी मागा अशी सल्ला दिली. पण टिळकांना सांगितलें. 'सच्च्या दानतीनें मी जें केलें आहे त्याच्यासाठीं माफी कसली मागूं? खलाशाचें काम करणारा जसा केव्हांना केव्हां समुद्रांत बुडूनहि जाओल, त्याच-प्रकारें देशसेवा करायची असेल तर तुरुंगयातरेचा परसंग हा यायचाच. या आमच्या ध्यांतल्या जाखमी आहेत. माफी मागून मला देशाची कसलीहि सेवा करता येणार नाही. शिवाय माझें सत्त्व जाओल, मग माझ्यांत राहिलें काय?' सरकारने त्यांना दीड वर्षांची शिक्षा ठोठावली, अतिरिक्त नव्हे तर मूळ कायद्यांत फेरफार करून राजद्रोहाचें कलम जास्तच कडक केलें. असें म्हणतात कीं तुरुंगांत गेल्यानंतर पहिल्या दिवशीं त्यांना अतिरिक्त कटिण काम देण्यांत आलें होतें कीं चक्की ओढतां ओढतां ते बेशुद्ध झाले. पण शुद्धीवर येतांच लगेच ते कामाला लागले. त्यांनां सूट मागितली नाही; सूट मागणें हें त्यांना नामुष्कीचें वाटे. अेका वर्षाच्या शेवटीं ते सुटले तेव्हां त्यांचें वजन बरेंच घटलें होतें. पण लोकांत त्यांचें वजन तितकेंच वाढलें होतें. घरीं येतांच पुनः 'केसरी' हातीं घेऊन आणि 'पुनश्च हरिः ॐ' म्हणून ते लिहूं लागले.

टिळक जेलमध्ये होते त्या काळांत पाश्चात्त्य संस्कृतपंडित मॅक्समुल्लरच्या हातीं त्यांना लिहिलेलें 'ओरायन' अथवा 'मृगशिरस्' नांवाचें पुस्तक आलें. 'ओरायन' मध्ये ज्योतिषशास्त्राच्या दृष्टीने वैदिक कालनिर्णयाचें विवेचन होतें. हे पुस्तक पाहून मॅक्समुल्लर चकित झाले, मुग्ध झाले आणि असें अगाध पांडित्य असणाऱ्या विद्वानाकडे आपण केलेलें अृग्वेदाचें भाषांतर अभिप्रायाकरितां पाठवावें असें त्यांना वाटलें. पण त्यांना समजलें कीं ग्रंथकर्ता तर तुरुंगांत आहे! त्यांनीं अगोदर टिळकांना तुरुंगांत पुस्तकें मिळावीं, वाचण्याला वेळ आणि दिवाबत्ती मिळावी अशी व्यवस्था सरकारकडून करविली. मग त्यांच्या मध्यस्थीमुळे सरकारला टिळकांना सहा महिने अगाऊ सोडावें लागलें. तुरुंगांत वेदांचें निरीक्षण करीत असतां त्यांना अकदम स्फुरले कीं आर्यांचें मूळ वसतिस्थान अुत्तरध्रुवाकडे असलें पाहिजे; आर्य लोक सुमेरूच्या आसपास राहात होते असा जुल्लेख वेदामध्ये आढळतो असें

त्यांना वाटलें. तुरुंगांतून सुटल्यानंतर तार्कामहाराज कससारखा डेकें खाऊन टाकणार-  
खटला चालू होता ; तरी त्याच काळांत त्यांना आर्कटिक् होम अिन धी वेदाज्  
अर्थात् 'आर्यांचें वेदकाळांतील सुमेकडील वसतिस्थान' या नांवाचा विद्वत्तेने  
आणि संशोधनानें भरलेला ग्रंथ प्रसिद्ध केला. त्या ग्रंथापुढें त्यांची कीर्ति  
युरोपांतील विद्वान मंडळांत पसरली. 'आर्कटिक् होम' हा ग्रंथ लिहितेवेळीं पारशी  
लोकांच्या धर्मग्रंथांचे त्यांना अध्ययन केलें. त्यानंतर अिराण, मेसेपोटेमिया,  
खाल्डिया, सीरिया वगैरे देशांच्या प्राचीन इतिहासाकडे आणि संस्कृतीकडे  
त्यांचें लक्ष वेधलें, आणि वैदिक संस्कृतीशीं त्यांचे किती साम्य आहे तें त्यांनीं  
कित्येक विद्वन्मान्य निबंधांत दाखवून दिलें. कित्येक लोक तर त्यांची विद्वत्ता  
पाहून त्यांना विन्वीत कीं तुम्ही राजकारणाचे झगडे सोडून द्या आणि विद्वत्तेनें जी  
जगाची मोठ्यांत मोठी सेवा तुम्हांला करणें शक्य आहे ती करा. ते म्हणत, 'मला  
असा स्वच्छंद चालवायचा नाही, देशासाठी लढणें हेच माझे कर्तव्य आहे. विद्वत्तेचें  
काम करणारे अगणित पंडित हिंदुस्थानांत निर्माण होनील. आर्यवृद्धि बंध्या  
झालेली नाही.' त्यांच्या अका स्नेहाने त्यांना विचारलें, 'स्वराज्य मिळाल्यावर  
तुम्ही कोणत्या खात्याचे मंत्री व्हाल ?' त्यांना सांगितलें, मला राजकारणाचा  
कंटाळा आहे. स्वराज्य मिळालें कीं मी आपला गणिताचा अध्यापक होआन आणि  
स्वस्थपणें विद्यानंदाचा लाभ लुटेन, '

जोपर्यंत आपल्या देशबंधूंना पोटभर खायला मिळत नाही तोपर्यंत विद्यानंदा  
सारखा सात्त्विक आनंदसुद्धां त्यांना हराम वाटत असे. ते नेहमीं म्हणत,  
'स्वराज्याची चळवळ हा पोटपाण्याचा प्रश्न आहे.' म्हणून सरकारनें जेव्हां  
जमीनमहसुलाच्या कायद्यांत फेरफार केला आणि अनादिकाळापासून वंशपरंपरागत  
चालत आलेल्या जमिनीवरचा मालकी हक्क भूमीच्या लेकरांपासून हिरावून घेऊन  
सात समुद्रापलिकडून आलेल्या सरकारला हिंदुस्थानच्या भूमीचे मालक ठरविण्यांत  
आलें आणि हिंदी शेतकऱ्याला फक्त आपले भाडोत्री बनविले त्यावेळीं टिळकांनीं  
सरकारला महसूल न देण्याची लढाई चालविण्याचा विचार केला होता; पण  
त्यावेळीं लोकांची अितकी तयारी नव्हती.

याच काळांत मुंबईत आणि पुण्यांत हिंदुमुसलमानांत कांहीं क्वदुर कारणांमुळे दंगा झाला आणि मोठी मारामारी झाली. पुण्यांत पुष्कळ वर्षांपासून हिंदू लोक मोहूरमांत भाग घेत होते ते बंद झाले. दंग्याचा दोष दोषांकडेही होता हे टिळकांनी वबूल केलें, पण जास्त दोष मुसलमानांचा होता असें त्यांनी जाहीर केलें. त्यामुळे टिळक हे मुसलमान समाजाविरुद्ध आहेत असा संशय कित्येक मुसलमानांच्या मनांत शिरला, पण तो खोटा असल्यामुळे कालान्तराने निघून गेला. टिळक मुसलमानांच्या विरुद्ध आहेत ही आमची समजूत चुकीची होती असें खिलाफत डेप्युटेशनमधील सेयद हुसेन यांनी जाहीररीत्या कबूल केलें आहे, कारण लखनौच्या काँग्रेसमध्ये हिंदुमुसलमानांत विरोध आणि शंका राहू नये अेवढ्यासाठी, जो अधिकार-विभाग करण्यांत आला त्यांत मुसलमान जेवढे कांहीं मागत होते तेवढे सर्व देण्याचा रुला स्वतः टिळकांनी पढाऱ्यांना दिला, प्रथम देशाचा विचार झाला पाहिजे, 'मी हिंदू आहे की मुसलमान हा भेद देशहिताचा विचार करतांना मनांत येना कामा नये,' हे त्यांचे त्यावेळेचे प्रसिद्ध वाक्य आहे. पुण्यांत हिंदुमुसलमानांमध्ये जो जेवनाच उत्पन्न झाला तो धर्माविषयीच्या संकुचित भावनेमुळे झाला होता हे पाहून, त्याच प्रमाणे हिंदूंनाही मोहूरमाअैवजां उत्सव करण्याचे कांहींतरी साधन मिळावे या हेतूनेहि त्यांनी गणेश-उत्सव सुरू केला. गणपतिउत्सवांत स्वयंसेवकांचे आणि अिनर तहणांचे मेळे भजने गातात ; विद्वान नेते धार्मिक, सामाजिक आणि कित्येक वेळां राजकीय विषयाची चर्चा करतात ; आणि अशा रीतीने लोकांना कालानुरूप शिक्षण मिळते. गणेशउत्सवाने जशी धार्मिक जागृति झाली तशी गणेशोत्सवाच्या अगोदरच देशभिमान आणि स्वाभिमान जागृत करण्यासाठी टिळकांनी जो शिवाजी उत्सव सुरू केला होता त्या शिवाजी-उत्सवानेहि पुष्कळ लोकजागृति झाली. या दोन्ही चळवळीमुळे स्वदेशीचा प्रचार महाराष्ट्रांत पुष्कळ झाला आणि शिक्षित-अशिक्षित यांच्यामधील भेद कमी कमी होत गेला. शिवाजी-उत्सवामुळेच जुना अतिहास परीक्षण्याची वृत्ति वाढली आणि कित्येक विद्वानांचे ' भारत-अतिहाससंशोधक-मंडळ ' तयार झाले.

१९०४ मध्ये युनिव्हर्सिटी ॲक्ट पास झाला आणि सरकारने शिक्षण खाते-अुच्च शिक्षणासुद्धा-आपल्या अंकुशाखाली अधिक आणले. १९०५ मध्ये बंगभंग झाला. बंगाली लोकांनी अर्जविनंत्त्या, सभा समैरे जेवढे कारावयाचे तेवढे केले आणि शेवटी

स्वदेशी आणि बहिष्काराची महाराष्ट्रीय चळवळ चुचलली. स्वाभाविकपणेच बंगाली लोकांना पाहिली सहानुभूति महाराष्ट्रीयानांकडून मिळाली. सरकार तर असेच मानते की अत्याचाराचा उपदेशादि बंगालला पुण्याकडून मिळाला आहे. स्वदेशी, बहिष्कार आणि राष्ट्रीय शिक्षण या तीन अपायांनी स्वराज्य मिळवावयाचे आहे हा राष्ट्रीय मूलमंत्र सर्वत्र पसरला. यालाच 'लोकमान्यांची चतुःसूत्री' म्हणतात.

बंगालचे राष्ट्रीय पुढारी स्वराज्याचा अर्थ 'पूर्ण स्वातंत्र्य' असा करीत आणि बहिष्काराचा अर्थहि 'अंगरेजी राज्याशीच अंगरेजी राष्ट्राशी पूर्ण असहकार' असा करीत. त्यावरून पुष्कळ नेमस्त पुढार्यांना असे वाटले की काँग्रेसकारितां अेक बंधन (Creed) ठेवले पाहिजे. टिळकांना वाटले की तशा तऱ्हेचे बंधन अेकप्रकारे आतांपर्यंत सर्वजण स्वेच्छया मानीतच आले आहेत, तरीपण शपथपूर्वक सही करून ते स्वीकारण्यांत अेकप्रकारची मानहानि आहे आणि देशांतील सर्व पक्षांना काँग्रेसमध्ये स्थान राहू देण्याच्या बाबतींत ते अडचणीचे होतील, म्हणून त्यांनी ते पसंत केले नाही. सुरत येथे काँग्रेसमध्ये फळा पडल्या.

वंगभंगाच्यामुळे स्वावलंबनाचा मार्ग स्वीकारणाऱ्या परजेवरील अेकीकडून काँग्रेसचा अंकुश दूर झाला त्याच वेळी दुसरीकडून सरकारने दंडनोतीचा अवलंब केला. परिणामी बंगालांत युरोपचे आसुरी हत्यार म्हणजेच बॉम्ब अवतीर्ण झाला. या परिस्थितीविषयी 'देशाचे दुदैव' या शीर्षकाखाली लिहिलेल्या अंगरेखांत टिळकांनी सरकारच्या दुष्ट नीतीलाच जबाबदार धरले. महाराष्ट्रांत बंगालविषयी संपूर्ण सहानुभूति होती, पण टिळकांच्या दूरदर्शी धोरणामुळे अत्याचाराची प्रवृत्ति थांबविली गेली होती. याच काळांत स्वदेशी आणि बहिष्काराच्या चळवळीशेबरोबरच मद्यपाननिषेधाच्या चळवळीला जोर देऊन लोकांचे जीवन विमुद्ध करण्याचा त्यांनी प्रयत्न केला. तोहि सरकारला आवडला नाही. दारूच्या गुत्त्यांमुळे अुभे राहून लोकांना उपदेश करणाऱ्या समाजसेवकांना सरकारने दडपून टाकले. टिळकांनी मद्यपाननिषेधाची चळवळ मुंबयीच्या मिलमजुरांतहि चालविली त्यामुळे पुष्कळच लोकजागृति झाली. लोकमान्य मिलमजुरांना सांगत की, 'तुम्ही अज्ञानांत आणि व्यसनांत कां बरे कुजताहांत ? तुमचे जीवन जर तुम्ही सुधारात तर मुंबयीत तुम्ही तीन लाख आहांत, मुंबयी तुमची आहे. जीवन सुधारा, अेकी

करा आणि आजचा स्थिति समजून घ्या.' ही शुद्ध चळवळपुद्धां सरकारला भारी वाटली. टिळकांमुळे महाराष्ट्रांत अत्याचार याप्रचा थांबला होता, पण सरकारला याहून अलटेंच भासलें. देशाच्या त्याचप्रमाणे सरकारच्या दुर्भाग्याने टिळकांच्या 'देशाचें दुदैव' या लेखांत सरकारला राजद्रोह आढळला. 'ज्या देशावर प्रेम करण्याचा दावा तुम्ही करीत आहां त्या देशांतून सहा वर्षे तुम्हांला बाहेर राखण्यांतच त्या देशाचें हित आहे' असे म्हणून हायकोर्टानें त्यांना हद्दपारीची शिक्षा केली ! 'व्यक्तीचें आणि राष्ट्राचें भाग्य या न्यायमंदिरापेक्ष अधिक अच्च व्यक्तींच्या आणि शक्तींच्या हातीं असतें, आणि ज्या सिद्धांतासाठीं मी लढत आहे त्याचा उत्कर्ष मी मोकळें राहाण्यापेक्षां माझ्या बंदिवासानेंच करण्याची त्या जगत्रियेच्याची अिच्छा असेल' असे म्हणून त्या महात्म्याने झालेली शिक्षा स्वीकारली आणि त्याबरोबर लोकमान्यांच्या या तपश्चर्येनें स्वराज्याचा मंत्र प्रत्येक हिंदवासीयाच्या हृदयांत स्फुरूं लागला. सहा वर्षांच्या या तपश्चर्येचें दुसरें फळ 'गीतारहस्य' हें साहित्यरत्न होय.

टिळकांना शिक्षा करून जो परिणाम घडवून आणण्याची अिच्छा सरकारनें बाळगली होती त्याच्या अलट परिणाम झाला. टिळकांची प्रेरणा आणि अंकुश नष्ट होतांच महाराष्ट्रांतील तरुण निरंकुश झाले व जो अत्याचार टिळकांच्यामुळे थांबला होता आणि जो अत्याचार टिळकांना शिक्षा करून सरकार थांबवूं अिच्छित होते तोच अत्याचार महाराष्ट्रांत जेरानें सुरू झाला. नाशीक येथें कट झाला. कलेक्टर जॅक्सन याचा खून झाला आणि अनर्थपरंपरेचा प्रवाह वाहूं लागला. जवळजवळ पुऱ्या सहा वर्षांना वयानें वृद्ध, शरीरानें क्शीण, पण अुत्साहांत तरुण असे लोकमान्य कर्मयोगाचा संदेश घेऊन परत आले. हा संदेश हिंदुस्थानांतील जवळजवळ सर्व भाषांत पसरला. कर्मयोगाच्या आचार्यानें 'स्वराज्य संघा'ची स्थापना केली आणि देशांत स्वराज्याची चळवळ सुरू झाली. राष्ट्रमदानें अंध झालेल्या युरोपियन राष्ट्रांत युद्ध सुरू झालें आणि हिंदुस्थान आणीबाणीच्या प्रसंगी अिमानदार राहील कीं नाहीं याची साम्राज्यसरकारला भीति वाटली. त्यावेळीं ब्रिटिश साम्राज्याच्याबरोबर राहाण्यांत हिंदुस्थानाचें हित आहे असें जाहीर करून टिळकांनी ब्रिटिशसाम्राज्याची मोठ्यांत मोठी सेवा

केली आहे. तरी शंकाखोर सरकारला टिळकांच्या भाषणांत राजद्रोहच दिसून येथी. पुनः अेक वेळां सरकारनें टिळकांना नेटीस काढली, पण यावेळीं हायकोर्टाला टिळकांच्या निर्दोषीपणाची खात्री झाली आणि ते सुटडे.

त्यानंतरचा इतिहास ताजा असल्यासारखा आहे. सैन्यभरतीविषयीचे त्यांचे प्रयत्न, पंजाब दिल्लीकडे जाण्याचा त्यांना झालेला मनाभी, मॉटेग्यूशीं मुलाखत, विलायतेला जाण्याची मनाभी-पण शेवटीं मिळालेली परवानगी, विलायतेत त्यांनीं केलेली कामगिरी वगैरे सर्व गोष्टी अजून लोकांना ताज्या वाटतात. टिळकांचे सर्व आयुष्य लढण्यांतच गेलेलें आहे. अका पत्रकारानें म्हटल्याप्रमाणें ‘मृत्यूनैव त्यांना प्रथम शांति दिली !’ त्यांचें खाजगी जीवन साधें आणि पवित्र होतें. त्यांची राजकीय प्रवृत्ति जोरदार आणि लडाऊ होती. ते आखाड्यांत अुतरले म्हणजे कोणाकडे दयेचो याचना करायचे नाहींत, कोणावर दया करायचे नाहींत; तरी त्यांच्या मनांत द्वेष टिकत नसे. आगरकरांना त्यांनीं विरोध केला, पण त्यांची अंतकाळीं सेवा करण्याकरितां ते स्वतः हजर होते. भांडारकरांवर ते पहरादि करीत, पण भांडारकरांची कदर करून त्यांच्याशीं शिष्यभाव ठेवीत. गोखल्याशीं त्यांचें कधींहि जमलें नाहीं, पण गोखल्यांनी १९०४-५ मध्ये विलायतेत हिंदुस्थानची जी सेवा वजावली त्याची कदर करण्यासाठीं पुणें शहरामार्फत त्यांचें सार्वजनिक अभिनंदन करण्यांत टिळक स्वतःच अग्रेसर होते. टिळकांची राजकीय मते कशीं होती हें परीक्षण्याचें हें स्थळ नव्हे. त्यांच्या मतांशीं हिंदी जग पूर्णपणें परिचित आहे. कोणाला तो माहिन नसतील तर तो टिळकांचा दोष नव्हे. आपल्या मताचा प्रचार करण्याची टिळकांची शक्ति आणि कला खरोखर अलौकिक होती. त्यांच्या विद्वत्तेचा साक्षात्कार जगाला झाला आहे, पण त्यांनी आपली सगळी विद्वत्ता हिंदी लोकांच्या मोक्षसाठीं जन्मभूमीच्या चरणीं अर्पण केली होती. ‘स्वराज्य’ हा त्यांच्या जीवनाचा आधारस्तंभ होता. ते बुद्धीने ब्राह्मण आणि वृत्तीने क्षत्रिय होते. हिंदी जागृतीचे ते जनक, आधुनिक महाराष्ट्राचे पंचप्राण, राष्ट्रीय पक्षाचे अध्वर्यू, स्वराज्यमंत्राचे अृषि, नोकरशाहीचे वैरी आणि हिंददेवीचे अनन्य अुपासक होते. आपण हिंदुस्थानवासी त्यांच्या चरित्रावरून स्वदेशसेवेची दीक्षा घेऊन स्वराज्यसेवेचे अधिकारी होऊं तरच त्यांच्या पराक्रमी आत्म्याला शांति



मिळेल आणि तरच त्यांचे जीवन सकळ होओल. स्वप्नयत्नाने मनुष्य जितके जीवनसाफल्य मिळवू शकतो तितके त्यांनी परिपूर्ण मिळविले होते.

८-८-२०.

## टिळक पुण्यतिथि

ऑगस्ट १ ली

१ दिवस

या दिवशी लोकमान्यांचे चरित्र मुळांना सांगावे. नोकरशाहीचे स्वरूप जनतेला समजून देण्याच्या कामी त्यांनी आपले सारे आयुष्य खर्च करून राष्ट्रीय आचार्यांचे स्थान कसे मिळविले ते समजावून द्यावे. स्वराज्य हा लोकांचा जन्मसिद्ध हक्क आहे आणि तो मिळविण्यासाठी प्रत्येकाने अध्वरनिष्ठापूर्वक निष्काम कर्म केले पाहिजे या टिळक-गीतारहस्यावर विशेष जोर द्यावा. 'गीतारहस्या'तील अुत्कृष्ट अुतारे वाचावेत.

( ता. ८-९ ऑगस्ट )

ब्रिटिश साम्राज्याचा संबंध हिंदुस्थानाला बाधकच झाला असे ठरल्यानंतर आणि अशी जाहीर घोषणा केल्यानंतरहि ब्रिटिश नीति बदलू शकत नाही, असा अनुभव आल्यानंतर अहिंसक वृत्तीच्या लोकांनी पुढे काय करावयाचे? त्यांनी बिग्नरज सरकारला भलेपणाने पण हडतेने सांगितले की 'तुम्ही आतां आमचा देश सोडलेलाच बरा. तुमच्यामार्गे आमचे काय होओल याची चिंता तुम्हांला नको. ती आमची आम्ही पाहून घेऊं. फार तर चार दिवस आमच्या येथे वजबजपुरी माजेल, रक्ताचे पाटहि वाहतील; पण जळवा लागून होणारे रक्तशोषण अधिक भयंकर आहे. ते दूर होऊं या.'

'हिंदुस्थान सोडून जा' या घोषणेच्यामार्गे अंतर्की कांहीं सात्त्विक तपश्चर्या आणि राष्ट्रीय निर्धार होता की या घोषणेचा राष्ट्रावर अगदीं विजेप्रमाणे परिणाम झाला आणि राष्ट्रांत नवेच चैतन्य स्फुरूं लागले. आणि याहून विशेष आश्चर्याची गोष्ट म्हणजे ब्रिटिश शासनकर्त्यांची धृति नाहीशी झाली.

मामुली रिवाजाप्रमाणे त्यांनी धाकदपटशा देऊन पाहिला पण राष्ट्राचा निर्धार वाढतच गेला. या सर्व हृदयमंथनाला निर्वाणीची वाचा फुटली. सन १९४२ च्या ऑगस्टच्या ८ तारखेच्या रात्री : त्या शुभरात्रीच्या मुहूर्तावर राष्ट्रांने ठरविले की ब्रिटिश सत्तेला आपण दिलेला आजवरचा नैतिक पाठिंबा आपण काढून घेत आहों, आजपासून आपण स्वतंत्र आहोंत. आणि आतां तें स्वातंत्र्य शक्य त्या वेगाने स्थापन करित जावयाचें.

८ तारखेच्या रात्री ही जी मानसिक आणि हार्दिक करांति झाली तिचें पहिलें फळ म्हणजे ९ तारखेला सरकारने राष्ट्रांतील बहुतेक सगळ्या पुढाऱ्यांना पकडले. राष्ट्रीय महासभेने ठरविले होतें की शक्य तितक्या वेगाने स्वातंत्र्य स्थापावयाचें. लोकांनी त्याचा अर्थ केला साधतील त्या अपायांनी स्वातंत्र्याची स्थापना करावयाची.

त्या काळीं लोकांनी ज्या अुपायांचा अवलंब केला त्यांपैकी कांहीं अुपाय काँग्रेसला संमत नव्हते, अहिंसेच्या चौकटीत बसत नव्हते. ते अुपाय शेवटीं जनतेवरच शेकले. हे सर्व जरी खरे असले तरी राष्ट्राला आलेल्या अन्यायाच्या चिडीचा आणि सरकारच्या अत्याचाराचा विचार करतां म्हणावे लागते की राष्ट्रांने असाधारण संयम दाखविला आणि कित्येकांनी हिंसेचा अवलंब केला असला तरी ९ ऑगस्टपासून सुरू झालेली क्रांति प्रधानपणे अहिंसकच राहिली. जर राष्ट्राला जवळजवळ पाव शतक महात्माजींकडून अहिंसेचे धडे मिळाले नसते तर देशांत हिंसेचा अवढा प्रचंड वणवा पेटला अश्या कां त्या अग्नीमध्ये साम्राज्य सरकार आणि प्रजा दोन्ही पक्षांची राखरांगोळी झाली असती.

यासाठीं ८-९ ऑगस्टचा क्रांतिदिन अहिंसक क्रांतीचा प्रथम प्रयत्न म्हणूनच ओळखला गेला पाहिजे.

जगभर चाललेल्या महायुद्धाच्या घाभीतच ही स्वदेशी अहिंसक क्रांति घडून आली, म्हणून हिला विशेष महत्त्व आहे. प्रचंड शत्रूंनी वर्षानुवर्षे लहून डबघाईस आलेल्या साम्राज्याने राष्ट्रांतील ही जागृति आमूलाग्र अुपद्रून काढण्यासाठीं निर्दयपणाची कमाल केली; पण त्यांत आश्चर्य कांहींच नव्हते. जीवावर बेतले तेव्हां कधीना नरा निष्करुणा भवन्ति. '

त्या क्रांतीच्या काळानंतर ब्रिटिश साम्राज्याचे डोळे उघडले, पण हृदय स्वच्छ झाले नाही. म्हणून त्यांनी हिंदुस्थानावरील आपला अधिकार सोडून द्यावयाचा निश्चय केला. तरीहि प्रायश्चित्तपर्वातदेखील नवी नवी पापे करीत राहाण्याचा स्वतःचा रिवाज कायप ठेवला आहे. ("Even in penance planning sins anew")

तेजस्वी राष्ट्राला प्रतिपक्षाच्या या सर्व प्रयत्नांकडे अुपेक्षा आणि क्षमा-वृत्तीने पहातां येते. विशेषतः जेव्हां स्वातंत्र्य जवळ येते तेव्हां अुपासकांनी क्षुदारता, नम्रता आणि बंधुता या गुणतरयींचाच आश्रय केला पाहिजे.

ता. २५-२-४७

## कार्यक्रम

क्रांतिदिनाचा प्रारंभ महात्माजींच्या ८ ऑगस्टच्या भाषणापासून झाला पाहिजे.

त्यानंतर, ४२ सालच्या क्रांतीमध्ये जे जे राष्ट्रसेवक कामी आले त्या सर्वोच्च स्मरण करणे हे आपले मुख्य कर्तव्य आहे. नामनिर्देशपूर्वक असे हे वाङ्मयीन श्राद्ध झाल्यानंतर यापुढे त्या क्रांतीचे फळ पदरांत पाहून घेण्यासाठी ऐकी, परस्परसहकार आणि परस्परस्वीकार यांचा रचनात्मक कार्यक्रम चालू ठेवण्याचा संकल्प केला पाहिजे. ऐकीचे सर्वोत्कृष्ट साधन राष्ट्रभाषा हिंदुस्थानी हे होय.

झेंडावंदन तर असणारच.

## जिवंत अितिहास

: : ५७

हिंदुस्थानचा अितिहास हिंदुस्थानच्या लोकांनी लिहिलेला नाही. या विधानाला आपण कितीही विरोध केला, तरी प्राचीन काळाचा आपला अितिहास आपल्या हातांनी लिहिला गेला आहे असे सिद्ध होत नाही. रामायण महाभारत हे कांही अितिहास म्हणतां येणार नाहीत. आधुनिक दृष्टीने तर ते अितिहास नव्हेतच. रामायणमहाभारतांत त्याचप्रमाणे पुराणांत अितिहास आहे, पण तो धर्मनिश्चय करण्याकरितां योजलेले दृष्टांत म्हणून आहे. महावंश आणि दीपवंश हे अितिहास म्हणतां येतील. पण ते सीलोनचे आहेत, आणि त्यांत असलेल्या अितिहास फारच थोडा आहे. काश्मीरच्या राजतरंगिणीविषयीहि अतेंच म्हणावें लागेल. तर मग आपला अितिहास कां नाही ? जीवनांतील कोणतेहि अंग घ्या, त्यांत आपल्या लोकांनी असाधारण प्राविण्य मिळविले आहे ; तरी आपल्यांत अितिहास कां नाही ?

अितिहास म्हणजे मनुष्यजातीपुढे उत्पन्न झालेल्या प्रश्नांची नोंद. यांपैकी कित्येक प्रश्नांचें निराकरण झालेलें असतें आणि कित्येक प्रश्न अजून अनिर्णीत असतात. ज्या प्रश्नांचा निर्णय होऊ शकला आहे ते आतां प्रश्न राहिले नाहीत. त्यांचे निराकरण झाले आहे आणि ते समाजांत-सामाजिक जीवनांत संस्काररूपांने येऊन चुकले आहेत. पचलेल्या अन्नाचे जसे रक्त बनतें तसे हे प्रश्न राष्ट्रीय समजुतीचे अथवा सामाजिक संस्कारांचे रूप पावले आहेत. अन्न पचन झालेलें असलें म्हणजे काल मी काय खाल्लें याचा जसा मनुष्य विचार करीत नाही, तसे जे प्रश्न सुटले आहेत त्याविषयीहि तो बुद्धासीन राहातो.

आतां राहिले अनिर्णीत पडून. आपले लोक परमार्थी ( serious ) आहेत. ते अनिर्णीत पडून कागदावर अतर्कून सोडून देऊं अिच्छीत नाहीत. अनिर्णीत पडनांत मतभेद अयतो. जितके मतभेद तितके संप्रदाय आपण अुभे करतो. वेदाच्या अुच्चारणांत मतभेद झाले, आपण भिन्न भिन्न शाखा काढल्या. ज्योतिषांत मतभेद झाला तेथेहि आपण स्मृति आणि भागवत अेकादशी वेगवेगळी मानली. दार्शनिक तत्त्वभेद आढळला तर आपण द्वैतवादी आणि अद्वैतवादी असे ंथ अुत्पन्न केले. आहारभेद झाला किंवा धंद्यांत भेद पडला तेव्हां आपण निरनिराळ्या जाती बांधल्या सामाजिक रीतीरिवाजांत जेथे मतभेद पडले तेथे आपण जातींत पोटजाती काढल्या. चुकून माणसानें चाल मोडली किंवा मोठें थारलें पाप केलें तर त्याकरितां मुद्धां त्याला प्रायश्चित्त आहे ; त्यासाठीं नवीं जात अुत्पन्न करीत नाहीत. महान ऐतिहासिक आणि राष्ट्रीय महत्त्वाच्या घटनांचा अितिहास आपण सणांच्याद्वारा जागृत ठेवतो. प्रत्येक सामाजिक चळवळीच्या केंद्राला तीर्थांचें रूप देऊन आपणती जिवंत ठेवली आहे. अशा रीतीने अितिहास लिहून ठेवण्यापेक्षा अितिहास जगणें आणि जगविणें म्हणजेच जीवनांत जगवून दाखविणें ही आपल्या समाजाची खुबी आहे. विंध्यांच्या वनलेल्या कागदावर अितिहास जतन करून ठेवणें चांगलें कीं जीवनांतच अितिहास जतन करणें हें चांगलें ! कोणता मार्ग अधिक सुधारलेला आहे हें सांगणें काय कठीण आहे ! जेवर परंपरा तुटली नव्हती तेवर आपला अितिहास आपल्या जीवनांत जिवंत होता. अजूनहि लोकांच्या चालीरीती, लोकांच्या समजुती, ज्ञातिबंधना, सण वगैरे आपण तपासून पाहिले तर त्यांतून पुष्कळ अितिहास मिळण्याजोगा आहे. मात्र हा अितिहास बवंडरी राजकीय नसेल, राजनैतिक नसेल, तो सामाजिक आणि राष्ट्रीय असेल. अितिहाससंशोधक या दिशेनें कांहीं परिश्रम घेणार नाहीत काय ?

## टीपा व स्पष्टीकरण

[ ज्या टीपेच्या वा स्पष्टीकरणाच्या खाली ' का. का ' असे लिहिले आहे ते लिखाण खुद्द श्री. काकासाहेब कालेलकरांचे आहे. इतर टीपा अनुवाद-काच्या आहेत. ]

### परकरण १ लें—

पृष्ठ ३—‘ श्रीविष्णूच्या आज्ञेने... अतिहासकर्म ’ : कोणतेहि धार्मिक कार्य करण्यापूर्वी देशकालाचा अुच्चार करून संकल्प बोलण्याची पद्धति फार प्राचीन आहे. त्या संकल्पांत पुढील शब्द आहेत :— श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ” अि. त्या संकल्पाचाच अुल्लेख येथे आहे.

### परकरण २ रें—

पृष्ठ ६—दोन ओद : ( १ ) ओद-अे-सरवतन; आणि ( २ ) बकर-ओद. पहिला ओद मुहूर्तमच्या चाळीसाव्या दिवशी हजरत हुसेन यांच्या स्मृत्यर्थ साजरा केला जातो. या दिवशी हजरत हुसेन यांचे शिर व धड आपोआप जुळले म्हणतात. म्हणून त्यास ‘ ओद-अे-सरवतन ’ म्हणतात.

दुसरा ओद हा सण हजरत महंमद पैगंबरांचे पूर्वज महाभगवद्भक्त हजरत अब्राहिम हे आपल्या लाडक्या मुलाची अीश्वराला ुर्बानी करण्यास तयार झाले तत्प्रीत्यर्थ साजरा केला जातो. हा सण अिस्लाम धर्माची स्थापना होण्यापूर्वीपासून चालत आलेला आहे.

पृष्ठ ६—मोहरम ( मुहर्रम ) : हा मुसलमानांत पहिला महिना सप्तजला जातो. या महिन्याच्या सुरुवातीपूर्वी दहा दिवस मुहर्रम सण साजरा केला जातो. हजरत महंमद पैगंबरांच्या मुलीचा मुलगा हुतात्मा हजरत हुसेन यांच्या स्मरणार्थ हा सण योजिलेला आहे. त्याविषयीचा अतिहास असा आहे:-

हजरत हुसेन हे अत्यंत सत्यवादी आणि सदाचारी होते. त्याचप्रमाणे ते दृढ विचाराचे आणि सहनशीलहि होते. यांचे थोरले बंधू हजरत हसन हे पैगंबरांच्या गादीवर लोकानियुक्त खलीफा म्हणून बसले होते. पण शामदेशचा शासक मआविया याला खलीफा होण्याची अिच्छा झाली आणि त्याने हजरत हसनवर चढाओढी केली. हजरत हसन यांना आपसांत लढाई करून अकमेकांचे गळे कापण्यापेक्षा आपण गादी सोडणेच बरे असे वाटले. पण त्यांनी काहीं अटीवर राज्य सोडण्याचे कबूल केले. त्या अटी अशा की, मआवियाने आपल्या (हसन यांच्या) परिवाराला कसलाहि त्रास देऊ नये, मआवियानंतर खलिफाची गादी आपल्याकडे यावी आणि मआवियाने हजरत अलींच्या वट्टल अपशब्द वोलू नये. पण मआवियाने या अटी पाळल्या नाहीत. खिलाफत (खलिफाची गादी) हजरत हसनकडे जाऊ नये म्हणून त्याने त्यांच्यावर विप्रयोग केला.

मआवियाच्या मरणानंतर उरल्याप्रमाणे हजरत हुसेन हे खलीफा व्हावयाचे, पण मआवियाने ही गादी आपला मुलगा यजिद याच्याकडे सोंपविली ही गोष्ट हजरत हुसेन यांना, त्याचप्रमाणे कूफा शहरच्या लोकांनाहि मान्य झाली नाही. कूफाच्या लोकांनी हजरत हुसेन यांना खलीफा म्हणून आपल्या हट्टांत येण्यास सुचविले. त्याप्रमाणे हजरत हुसेन आपल्या परिवारासह कूफाकडे जावयास निघाले. पण ही बातमी यजिद यास कळतांच त्याने आपले सैन्य पाठवून कूफा शहरच आपल्या ताब्यांत घेतले. वाटेत हजरत हुसेन यांना हे कळले. करबलाच्या मैदानांत कूफा-अधिपतीच्या सैन्याने त्यांना वेढा दिला. हजरत हुसेन यांच्या परिवारांत त्यांचे बंधू व बायकामुलेहि होती. तहानेने सर्वजण व्याकुळ झाले होते. नदीकडील रस्ता-सुद्धां शत्रूसैन्याने रोखला होता. जोवर हजरत हुसेन यजिदला खलीफा म्हणून कबूल करणार नाहीत तोवर ते असेच कैदेत राहतील असे सेनापतीने त्यांना कळविले. ती रात्र हजरत हुसेननी व त्यांच्या परिवाराने परमेश्वराची प्रार्थना करण्यांत घालविली. नंतर दुसरे दिवशी चांगले चांगले कपडे घालून व शरीर सुगंधित करून सर्वजण मरणाला सिद्ध झाले. हजरत हुसेनांच्या तहानलेल्या परिवारांतील प्रत्येक योद्धा अनेक शत्रूसैनिकांना मारून मरु लागला. शेवटी हजरत हुसेन लहू लागले आणि त्यांनी शत्रूसैन्याला थोडे मागे हटवून नदीची वाट मोकळी करून घेतली. पाणी पिण्याकरितां म्हणून हजरत हुसेन नदीकडे धांवले; पण त्याच वेळीं शिमेर नांवाच्या एका सेनापतीने त्यांचा वध केला.

हजरत हुसेन यांच्या या क्रूर वधामुळे सारे मुसलमान खवळून गेले. करवला येथे घडलेल्या याच हत्याकांडाच्या स्मृतिप्रीत्यर्थ मुसलमान लोक मुहूर्तमच्या दिवसांत ' ताजिये ' ( डोले ) काढतात.

—अनु.

धर्माकरितां प्राण अर्पण करणाऱ्या ' शहीदा '( हुतात्म्या )माठीं शोक करणे धर्माच्या दृष्टीनें कितपत योग्य आहे हा प्रश्न या बाबतीत उग्रविला जातो. या बाबतीत आपला अभिप्राय स्पष्ट आहे.

—का. का.

## प्रकरण ११वें—

पृष्ठ ३८ —शंकराचार्यांनी स्थापन केलेले संन्याशांचे दहा पंथः— तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वति, भारती आणि पुरी.

—का. का.

पृष्ठ ४० — “ ब्राह्मणा.....न दधृषुः । ” ( वृहदारण्यकोपनिषत् )  
' तुम्हां ब्राह्मणांमधून ज्याची अिच्छा असेल त्यानें मला विचारावें, अथवा वाटेत तर सर्वजण मला विचारा ; ज्याची अिच्छा असेल त्याला मी विचारतो, अथवा सर्वांना मी विचारतो, ' पण ब्राह्मणांना हिंमत झाली नाही.

पृष्ठ ४०—देवांचें पंचायतन : शिव, विष्णु, गणपति, देवी, सूर्य.

पृष्ठ ४१ —मोहमुद्गर स्तोत्राचा प्रसंग : अद्वैतज्ञान झालें असूनहि शंकराचार्यांच्या मनांतून ब्राह्मण आणि चांडाळ असा भेद गेला नव्हता ; म्हणून भगवान् शंकरांनी चांडाळाचे रूप धारण करून रस्त्यांत आचार्यांना स्पर्श केला. आचार्य रागावले, तेव्हा चांडाळाने ' सर्वांचा शरीरें सारखीं आणि आत्म्यांत भेद नाही, तर अस्पृश्यता उरली कोठे ? ' असा बोध करून आचार्यांच्या अुरल्या-सुरल्या मोहाच्या डोक्यांत मुद्गर हाणला व त्यांचें अद्वैत-ज्ञान कृतार्थ केलें.

## प्रकरण १२वें—

पृष्ठ ४५—महाभिनिष्क्रमण : वैराग्य अंगी बाणल्यामुळे राज्यवैभवाचा आणि गृहसुखाचा सर्वस्वी त्याग करून सिद्धार्थ बाहेर पडला. त्या बाहेर पडण्याला हे नांव दिलें आहे.



**पान ५४—गूढवादी धर्म :** साक्षात्काराच्या मार्गे लागलेल्या लोकांना जो अनुभव होतो तो शब्दांत मांडतां येत नाहीं आणि जगाच्या रूढीशी त्याचा मेळ बसत नाही. म्हणून असे अनुभवी लोक गूढ भाषेमध्ये स्वतःचा अनुभव 'व्यक्त करतात आणि स्वतःच्या साधनेचा प्रकारहि गुप्त ठेवतात.

—का. का.

**पृष्ठ ५४—'अतिवादी' धर्म :** जो मनुष्य मर्यादा सोडून वोलतो त्याला उपनिषदांत 'अतिवादी' म्हणतात. पण तेथें अंके ठिकाणी 'अतिवादी' शब्दाचा अर्थ गूढवादी अशासारखा होतो, आणि तेथें स्पष्ट म्हटलें आहे कीं, अतिवाद्याने आपण अतिवादी असल्याचें लपवूं नये. जर कोणी त्याला म्हटलें कीं तूं अतिवादी आहेस तर त्यानें कबूल करावें कीं मी अतिवादी आहे. येथें 'अतिवादी' याचा 'गूढवादी' असाच अर्थ होवूं शकतो. Mystic ला अतिवादी हा चांगला शब्द दिसता.

—का. का.

**पृष्ठ ५४—सरस्वतीचंद्र :** याच नांवाच्या प्रख्यात गुजराती कादंबरीतील कथानायक. याच्या मनामध्ये नेहमीं धर्माधर्माची 'भवति न भवति' चालत असे. जे योग्य आहे असें पटलें त्याप्रमाणें त्याच्या हातून आचरण घडत नसे. कांदीं अंशी हॅम्लेटसारखी वृत्ति म्हणतां येतील.

—का. का.

**परकरण २०वें—**

**पृष्ठ ७९—उत्सर्जन आणि उपाकर्म :** जुनें यज्ञोपवीत काढून टाकण्याचा आणि नवे धारण करण्याचा विधि. या विधीप्रमाणें वेदाध्ययनाचा परांभ होत असे आणि ठरलेले दिवस पुरे झाले म्हणजे वेदाध्ययनाची सांगता करीत असत.

—का. का.

**परकरण २३वें—**

**पृष्ठ १०५—पर्युषण :** जैन लोकांच्या उपासाचे दिवस.

## प्रकरण ३२वें—

पृष्ठ १४०—यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति : जे ब्रह्मचर्य पद अभिच्छताती ।

पृष्ठ १४०—तेऽपि यान्ति परां गतिम् : तेहि मोक्षास पावती ।

पृष्ठ १४०—महेंद्र आणि संघमित्रा : असें सांगताना कीं अशोकान्या मुलगा 'महिंद्र' (महेन्द्र) आपल्या बहिणीला वरोवर घेऊन लंकेमध्ये बुद्ध-धर्माचा प्रचार करण्यासाठीं गेला. जातांना त्यानें गया येथील बोधिवृक्षाची अक फांदी लंकेमध्ये नेली आणि अनुराधापूर येथे तिची स्थापना केली. तो बोधिवृक्ष अजूनहि जिवंत आहे. अशोकान्या बहिणीनें लंकेत जे धर्मप्रचार केला त्यावरून तिचें नांव 'संघमित्रा' (संघमित्रा) पडलें असावें. या भाष्यबहिणींनीं नामराज्य-वैभव सोडून संन्यासदीक्षा घेतली आणि लंकेचा बुद्धार केला 'दीपवंश' या पालीग्रंथांत यांचा अतिहास विस्तारानें दिला आहे.

—का. का.

पृष्ठ १४१—शांता : राजा दशरथाला राम, लक्ष्मण, भरत आणि शत्रुघ्न या प्रसिद्ध चार पुत्रांव्यतिरिक्त शांता नांवाची अक मुलगी अमल्याचा अुल्लेख वाल्मीकि-रामायणांत आहे.

## प्रकरण ३३वें—

पृष्ठ १४३—देवशयन आणि प्रबोधन : पावसाळ्याला सुरुवात आषाढ महिन्यापासून होते. पावसाळा सुरू होतांच देव-निजतान म्हणजेच ढगांची चादर ओढून घेऊन तारे अदृश्य होतात. पावसाळा कार्तिकांत संपतो, आकाश पुन्हां स्वच्छ होतें, शरदृतंत आपल्या संपूर्ण वैभवानें तारे प्रकाश लागताना, तेव्हां देव उठतात अशी रूपकात्मक कथा पुराणांत आहे.

## प्रकरण ३५वें—

पृष्ठ १५०—अयनचलन : पृथ्वीचा आंस नेहमी अुत्तरध्रुवाकडे रोखलेला असतो हें जरी स्थूलमानानें खरें आहे तरी भोंवरा डुलावा त्याप्रमाणें पृथ्वी हलून या आंसाची दिशा हळूहळू बदलते आणि २५०० वर्षांत ती मूळपदाला येते.

पृथ्वीचा आंस बदलल्यामुळे उत्तरायण आणि दक्षिणायन यांच्यामधील संपातबिंदूहि बदलू लागतात—मागे मागे सुरू लागतात. या गतीला ‘अयनचलन’ असे म्हणतात.

या अयनचलनामुळे वेदकाळी आकाशाची जी स्थिति होती ती आता राहिलेली नाही. कधी वर्षारंभ श्रवण नक्षत्रांत असावा, कधी भाद्रपदांत येत असावा, कधी रेवतीत, कधी मृगामध्ये, अशा तऱ्हेने स्थिति बदलत असल्याने त्या त्या काळच्या वर्णनावरून ते वर्णन किती जुने आहे हे ठरविता येते. मार्गशीर्ष महिन्यात जेव्हा वर्षारंभ होत होता तो काळ किती जुना असावा हे गणिताने ठरवून लोकमान्यांनी वेदकाल—निर्णय होण्यास मदत केली.

—का. का.

## एकरण ३८वें—

**पृष्ठ १५६—घोडापूर :** गुजरातमध्ये डोंगरांच्या अनेक खिंडीतून येणाऱ्या लेंढ्यांनी नदीचे पाणी अकाअकीं फुगले म्हणजे नद्यांना केव्हां केव्हां असा कांहीं वेगाचा पूर येतो कीं नदीच्या पात्रांत जणू पाण्याच्या दोन पायऱ्याच झाल्या आहेत असे दिसू लागते. जेथे गुडघाभरदेखील पाणी नाही असे दृश्य असावे तेथे अकाअकी नदी दुथडी भरून वेगाने वाहू लागते. या वेगाची कल्पना येण्यासाठी असे सांगतात कीं जर अखादा मनुष्य नदीला पाणी नाही म्हणून वाळावंटांतून घोड्यावर वसून जात असला आणि अध्यावर गेला असला तर वरून लेंढा दिसतांच घोड्याला टांच मारून देखील तो सुरक्षितपणे पैलतीरी पोचू शकत नाही. घोडा आणि घोडेस्वार दोघांना बुडवून लेंढा पार पुढे जातो अशीं अुदाहरणे अनेक-वेळां घडली आहेत. म्हणून अशा वेगाच्या पुराला ‘घोडापूर’ म्हणतात. या पुरापुढे होव्यासुद्धां वाचू शकत नाहीत. पाणी हळूहळू वाढले तर होव्या तरंगू लागतात. पण अकाअकी लेंढ्याची पायरी आली म्हणजे होव्यांचा त्या पायरीखाली बळी घेतला जातो. ‘घोडापूर’ हा शब्द मराठीत घेण्यासारखा आहे. याचीच अतिशयोक्ति करून ‘हाथीपूर’ ( हत्तीपूर ) हाहि शब्द गुजरातीत वापरला जातो.

—का. का.

## प्रकरण ४६वें—

**पृष्ठ १९८—जें काम व्यास-वाल्मीकींनीं केलें:...**आणून केलें: वेदधर्म आणि वेद फक्त द्विजांसाठीं आहेत असें ठरल्यानंतर ज्या मार्गांत अधिकार भेदाची पीडा नाही. असा मार्ग अतिहास-पुराणें लिहून व्यासवाल्मीकींनीं चालविला पौराणधर्मांत ब्राह्मण-ब्राह्मणनर, आर्य-दस्यू सर्वांनाच सारखा प्रवेश होता. वर्णाश्रमाला यत्किंचित् विरोध न करतां, किंयहुना, वर्णाश्रमाला अचलून धरूनहि व्यास-वाल्मीकींनीं सामान्य जनतेच्या अुद्धाराचा मार्ग दाखविला. अधिकारभेद आणि वर्णजातीचा अुच्चनीच भाव हे सर्व ब्राह्मणी दृष्टीचे प्रकार आहेत. त्यांना पौराण्य आणण्याचें काम पूर्वी जसें व्यास-वाल्मीकींनीं केलें, तसें अर्वाचीन काळीं महागुण्यांमध्ये ज्ञानदेव आणि ऐकनाथ यांनीं केलें. व्यास-वाल्मीकी कृपी होते. पण ब्राह्मण नव्हते. त्यांना ब्राह्मणांच्या मक्त्याविषयी थोडासा असंतोष असणें शक्य होतें. ज्ञानेश्वर आणि ऐकनाथ ब्राह्मण असून संत होते. त्यांना ब्राह्मणांच्या अधिकाराचें वैपम्य वाटण्याचें कारणच नव्हतें; तरीहि त्यांनीं वर्णधर्माला विरोध करून संतमताचाच प्रचार केला, हें विशेष आहे.

—काः काः

## प्रकरण ४८वें—

**पृष्ठ २०२—शिया आणि सुन्नी :**मुसलमानांतील हे दोन प्रमुख 'फिर्के' (संप्रदाय) आहेत. ते विशेषेंकरून खलीफा कोणाला मानावयाचें या प्रश्नावरून पडले आहेत.

**शिया—**हे हजरत अबूबकर, अुमर आणि अुस्मान यांना खलीफा मानीत नाहीत. ते हजरत आलीना पहिला खलीफा माननात आणि त्यांच्यामागून त्यांच्या वंशांतील दुसऱ्या अकरा लोकांना खिलाफतीचे हक्कदार व अिमाम<sup>म्ह</sup> (धार्मिक नेते) समजतात. खुदानें हजरत महंमदसाहेबांमध्ये जें आपलें तेज आनलें होतें तेच तेज हजरत अली आणि त्यांचे वंशज यांच्यांत प्रविष्ट झालें, अशी त्यांची श्रद्धा आहे. म्हणून त्यांनाच अिमाम होण्याचा हक्क आहे असें ते म्हणनात. हजरत आली हे पहिले व त्यांच्याच वंशांतील चारवे हजरत अबुल कामास एक मेहरी असे चार

अिमाम झाले असे शिया लोक मानतात. शेवटचे अिमाम अजून जिवंत आहेत असा त्यांचा समज आहे.

**सुन्नी**—बहुतेक मुसलमान या संप्रदायाचे आहेत. हे लोक कुराणशरीफ, पुत्रत व अजमा ( महाजनमंडलाचा निर्णय ) यांना धर्माचा पाया समजतात. हजरत महंमदसाहेबांच्या मागून हजरत अबूबकर, अुमर, अुस्मान आणि अली यांना ते खलीफा मानतात. हजरत अली आणि त्यांचे वंशज यांच्याविषयी सुन्नी लोक आदर बाळगतात ; पण त्यांना ते ' अिमाम ' समजत नाहीत.

### प्रकरण ५२वे—

**पृष्ठ २६९—पोटावर...उभें झालें.**: जनरल डायरने अमृतसरला जे अत्याचार केला त्यावेळची गोष्ट आहे. लोकांनीं अेका मिशनरी बाबीला रस्त्यांत तरास दिला म्हणून त्या रस्त्यानें जाणाऱ्या लोकांनीं अुभ्यानें न चालतां पोटांनें सरपटत गेलें पाहिजे असा सरकारी अंमलदारांनीं हुकूम काढला होता आणि लोकांनीं हि असहाय्य होऊन त्याचें पालन केलें. पण पुढें सत्याग्रहाच्या चञ्चळीनें ही मनोवृत्ति मावळली आणि लोकांत तेजस्विता आली.

—का. का.











